Ph.D THESIS

“भारत का स्त्रीवादी रंगमंच : हिन्दी और मलयालम के विशेष सन्दर्भ में”

BHARAT KA STREEVADI RANGMANCH: HINDI AUR MALAYALAM KE VISHESH SANDARBH MEIN

Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

in

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

अपर्णा वेणु

APARNA VENU

Dr. K. AJITHA

Supervising Teacher

Professor and Head of the Department

Department of Hindi

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

KOCHI-682 022

JANUARY -2019

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **"BHARAT KA STREEVADI RANGMANCH : HINDI AUR MALAYALAM KE VISHESH SANDARBH MEIN"** is a bonafide record of work carried out by APARNA VENU under my supervision for Ph.D. (Doctor of philosophy) Degree and no part of this has either to been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral committee of the candidate has been incorporated in the thesis.

Prof. K. AJITHA

(Supervising Teacher)

Professor & Head of the Department

Department of Hindi

Cochin University of Science

And Technology

Kochi – 682 022

Place:
Date:

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is entitled **"BHARAT KA STREEVADI RANGMANCH : HINDI AUR MALAYALAM KE VISHESH SANDARBH MEIN"** based on the original work done by me under the guidance of Dr. K Ajitha, Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin-682022 and no part of this dissertation has been included in any other thesis submitted Previously for the award of any degree in any University.

APARNA VENU

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE
AND TECHNOLOGY

KOCHI- 682022.

Place : Kochi

Date :

पूर्वरंग

साहित्य, कला तथा अभिव्यक्ति के इतर माध्यमों में स्त्री की अस्मिता एवं मानवीय संस्कृति के निर्माण में उसकी रचनात्मक भूमिका आज चर्चा के केंद्र में है। नाटक और रंगमंच का क्षेत्र भी इस स्त्री-उपस्थिति से वंचित नहीं रह गया है । दूसरे शब्दों में स्त्रीवादी कला-चर्या में नाट्य व रंगमंचीय-कला की अद्वितीय भूमिका अवश्य रही है । स्त्रीवादी कला-चिंतकों तथा नाट्य-विचारकों ने रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व को चुनौती देते हुए रंगमंच के एकांगी, लिंग-भेदक प्रतिमानों की तीखी आलोचना की तथा स्त्री-पक्षीय रंगकर्म की सार्थकता पर विचार भी किया है । इस स्त्रीपक्षीय दृष्टि ने व्यावहारिक स्तर पर रंगमंच के स्वरूप को ही बदल डाला तथा सैद्धांतिक व वैचारिक स्तर पर 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी विशेष परिकल्पना को स्थापित भी किया । बीसवीं सदी के अंतिम तीन दशक पूरे विश्व के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण समय रहा है जबकि स्त्रीवादी रंगमंच जैसी अर्थपूर्ण परिकल्पना प्रबल रूप से प्रतिष्ठित हुई । भारत में स्त्रीवादी रंगमंच की गतिविधियों का सही आकलन सन् 1970 के बाद ही हुआ, जिसमें हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच का अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है । किन्तु यह सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि इस विषय पर आलोचकों व शोधार्थियों की दृष्टि बहुत कम ही पडी है । अतः **'भारत का स्त्रीवादी रंगमंच : हिन्दी और मलयालम के विशेष सन्दर्भ में'** शीर्षक प्रस्तुत शोध-कार्य इस दृष्टि से किया जाने वाला एक विनम्र प्रयास होगा ।

सैद्धान्तिकों व प्रयोक्ताओं की ओर से स्त्रीवादी रंगमंच को अपने-अपने विचारों के अनुसार विभिन्न ढ़ंग से निर्धारित व व्याख्यायित करने की प्रयास हुआ है । उनमें प्रत्येक का अपना विशेष महत्व है । परन्तु इस शोध-प्रबंध में अध्ययन की सुविधा के लिए हिन्दी तथा मलयालम की ऐसी बहुचर्चित एवं बहुमंचित नाट्य-प्रस्तुतियों को लिया गया है, जो निम्नलिखित विशेषताओं पर निर्भर हैं ।

1.स्त्रीपक्षीय बोध एवं अंतर्दृष्टि के साथ रूपायित रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ, जिनका निर्देशन मात्र महिला रंगकर्मियों के द्वारा हुए हैं, तथा जिनमें मुख्य रूप से स्त्री-पात्रों की प्रधानता हो ।

2.अंतर्वस्तु तथा रूप-विधान इन दोनों स्तरों पर रूढ़िवादी अवधारणाओं तथा पुरुष-वर्चस्व को तोड़ने वाले स्त्रीवादी हस्तक्षेपों से युक्त रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ ।

3.स्त्री के स्वत्व तथा अस्मिता को उसकी स्वाभाविकता, सहजता एवं गहराई के साथ अभिव्यक्त करने वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ ।

4.ऐसी रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ जिनमें प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से स्त्रीवादी विचारों के तत्व पाए जा सकते हैं ।

5.रंगकर्म वाली सृजनात्मक प्रक्रिया की मूल-चेतना के रूप में स्त्री की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ, जिनमें महिलाओं की सजीव उपस्थिति विद्यमान हो ।

पूर्व-प्रस्तावित विशेषताओं से संपन्न रंगमंचीय प्रस्तुतियों के सन्दर्भ में विचार किया जाय तो यह बात अवश्य देख सकते हैं कि भारत में स्त्रीवादी रंगमंच की दो विशिष्ट शैलियाँ प्रचलित हैं –

1.पारंपरिक रंगमंच का समकालीन स्त्रीवादी पुनर्रूपायन ।

2.समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच ।

मात्र भारतीय रंगमंच की अपनी एक अनन्य विशेषता यह है कि यहाँ सदियों से परंपरा के रूप में चले आ रहे रंगमंचीय कला-रूपों की कुछ विशिष्ट शैलियाँ वर्तमान समय में स्त्रीवादी पुनर्रूपायन की सृजनात्मक प्रक्रिया से गुज़रती जा रही हैं । अर्थात् सदियों से पुरुष-सत्ता के दायरे के भीतर घूमती रही कुछ पारंपरिक रंगमंचीय शैलियाँ वर्तमान समय में अपने में निहित रूढ़िवादिता एवं पुरुष-वर्चस्व की संरचना को तोडती हुई ऐसे सृजनात्मक माध्यम बन गयी हैं, जो स्त्री के स्वत्व

और उसकी संवेदनाओं को गहराई से द्योतित करने वाली हैं । रंगकर्म की इस विशिष्ट प्रक्रिया की ओर ध्यान दिए बिना भारत के स्त्रीवादी रंगमंच का अध्ययन-विश्लेषण करना बिलकुल असंगत होगा । इसके साथ-साथ पारंपर्येतर समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच की एक सजीव एवं सशक्त धारा, आधुनिक रंगमंच पर सालों से परिव्याप्त पुरुष-सत्ता की जड़ों को तोडती हुई नवीन रूप-संरचना वाली रंगमंचीय-प्रस्तुतियों का रूपायन करती आ रही है, जो अंतर्वस्तु एवं रूप-विधान दोनों दृष्टियों से स्त्रीवादी विचारों को आत्मसात करने वाली हैं । अतः '**भारत का स्त्रीवादी रंगमंच : हिन्दी और मलयालम के विशेष सन्दर्भ में**' शीर्षक प्रस्तुत शोध-कार्य में स्त्रीवादी रंगमंच के इन दो परस्पर भिन्न आयामों को आधार बनाकर विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है । प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पांच अध्यायों में विभक्त करके अध्ययन किया गया है ।

पहला अध्याय : भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की भूमिका : जड़ों की खोज

दूसरा अध्याय : स्त्रीवादी रंगमंच : संकल्पना, स्वरूप एवं सौंदर्यशास्त्र

तीसरा अध्याय : स्त्रीवादी रंगमंच का भारतीय परिपार्श्व : हिन्दी तथा मलयालम के विशेष सन्दर्भ में

चौथा अध्याय : पारंपरिक रंगमंच के समकालीन पुनर्रूपायन का स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

पाँचवां अध्याय : अंतर्वस्तु, रूप एवं दर्शकीय अनुभूति : हिन्दी तथा मलयालम के समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच का विश्लेषण

गायन, वादन, चित्र-कला, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य आदि अन्यान्य विषयों पर स्त्री की अभिव्यक्ति अपनी विशेष कल्पना शक्ति के परों को तोलती नज़र आती है । इस अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण माध्यम है उसका प्रदर्शनकारी पक्ष, जिसे बृहद रूप से हम उसके रंगमंचीय पक्ष का नाम दे सकते हैं । भारत में प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ

रंगमंच के विभिन्न पहलुओं से किसी न किसी रूप में अवश्य जुडी हुई हैं । किन्तु हमारे तथाकथित पुरुष-प्रधान रंगमंचीय इतिहासों में महिलाओं के योगदान को प्रायः अनदेखा ही किया गया है । अतः पहले अध्याय में भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति एवं रंगमंच के विकास में उनकी रचनात्मक भूमिका को ढूँढने का प्रयास किया गया है ।

पुरुष-सत्ता द्वारा सदियों से नियंत्रित एवं संचालित रंगमंच में स्त्री का प्रतिनिधित्व हमेशा पुरुष के परिशिष्ट अथवा अनुबद्ध के रूप में ही होता है । सामान्य रूप से कहे तो पुरुष क्रियात्मक होता है तथा स्त्री प्रतीति मात्र । पुरुष स्त्री को देखता है तथा स्त्री इस दृष्टिपात की शिकार हो जाती है । यहाँ स्त्री खुद वस्तु बन जाती है अर्थात् एक प्रदर्शनीय वस्तु । एक प्रदर्शनीय वस्तु के सीमित रूप से प्रदर्शन-कर्ता के मौलिक और व्यापक रूप में महिलाओं के परिवर्तन का जो प्रयाण है उसी के प्रेरणा स्वरूप 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी संकल्पना का सूत्रपात हुआ । अतः दूसरे अध्याय के अंतर्गत 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी विशेष परिकल्पना को परिभाषित करते हुए उसकी प्रवृत्तियाँ, उसकी सौन्दर्यशास्त्रीय विशेषताएं तथा उसके स्वरूप को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है ।

सन् 1970 के आसपास भारत में परिव्याप्त विभिन्न प्रयोगधर्मी रंगकर्म तथा उसी समय में प्रचलित अनेक स्त्रीवादी संगठनों के संयुक्त परिश्रम का परिणाम है भारत के स्त्रीवादी रंगमंच । हिन्दी तथा मलयालम का स्त्रीवादी रंगमंच स्त्रीवादी विचारों के प्रचार तथा स्त्री समस्याओं के प्रति जनता में चेतना जागृत करने के विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम के रूप में रंगमंच की प्रयुक्ति होने के साथ-साथ रंगमंच संबंधी परंपरागत अवधारणाओं तथा उस पर निहित पुरुष वर्चस्व को तोड़कर पूरे रंगमंच की संरचना को स्त्रीवादी दृष्टि से पुनर्निर्मित करने का प्रयास भी है । अतः तीसरे अध्याय के अंतर्गत भारतीय सन्दर्भ में विशेषकर हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी विशेष

परिकल्पना का उदय, उसका विकास, उसकी अनन्यता एवं विशेषताओं को समझने का प्रयास किया गया है ।

कलात्मक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय संकल्पनाओं को प्रभावित करनेवाले भारतीय स्त्रीवादी चिंतन में भारत के पारंपरिक प्रदर्शनधर्मी कलाओं को वर्तमान जीवन के विविध व व्यापक परिदृश्यों से जुडनेवाले एक नवीन परिप्रेक्ष्य से देखने व पुनर्रूपायित करने की दृष्टि प्रदान की है । स्त्रीवादी चिंतन के प्रभाव ने पारंपरिक दृश्य-कलाओं को अपने में निहित रूढ़िवादी एवं पुरुष-सत्तात्मक तत्वों को तोड़कर स्वतंत्र व समसामयिक होने का अवसर भी प्रदान किया है । अतः चौथे अध्याय के अंतर्गत हिन्दी तथा मलयालम भाषी प्रदेशों में प्रचलित ऐसे पारंपरिक नाट्य-रूपों का अध्ययन किया गया है जिनका वर्तमान समय में स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य के साथ पुनर्रूपायन हुए हैं ।

किसी भी रंगमंचीय प्रस्तुति का सबसे तीन प्रमुख तत्व होते हैं – अंतर्वस्तु, रूप एवं दर्शकीय अनुभूति । हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच से जुडी रंगकर्मियों ने इन तीनों रंगकर्मीय तत्वों पर निहित पुरुष की प्रभुता को तोड़ने का प्रयास किया है । स्त्रीवादी विचारों से प्रेरित अन्तर्वस्तुओं का चयन, पुरुष-केन्द्रित रंगमंचीय संरचना को तोड़ने वाले नवीन रूप-विधान का विन्यास तथा एक प्रति-दर्शकीय अनुभूति की स्थापना आदि विशेषताओं से संपन्न हिन्दी तथा मलयालम का स्त्रीवादी रंगमंच अपने में अद्वितीय रहा है । अतः पाँचवे अध्याय के अंतर्गत पूर्व-प्रस्तावित तीन रंगमंचीय तत्वों के आधार पर हिन्दी तथा मलयालम के समकालीन महिला निर्देशित, बहुचर्चित नाट्य-प्रस्तुतियों का विश्लेषण करते हुए हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच की विशेषताओं उसके अनन्य स्वभाव आदि को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है ।

उपसंहार के रूप में भारत के स्त्रीवादी रंगमंच की चुनौतियों एवं संभावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-कार्य कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की वर्तमान आचार्या एवं अध्यक्षा डॉ. के.अजिता जी के कुशल एवं विद्वत्तापूर्ण निर्देशन में संपन्न हुआ है । शोध कार्य के आरंभ से लेकर प्रबंध प्रस्तुतितीकरण तक समय-समय पर उनका बहुमूल्य निर्देश, निरंतर आत्मीय एवं स्नेहपूर्ण प्रेरणा, प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद शोधार्थी को प्राप्त होते आये हैं । इन्हीं का, वास्तव में यह सुपरिणाम है कि सर्वधा नए एवं अछूते विषय पर तैयार किया गया यह शोध-प्रबंध इस रूप में प्रस्तुत किया जा सका है । इनके प्रति शोधार्थी की अपार कृतज्ञता सचमुच वागतीत है । इसी तरह शोधार्थी की डॉक्टरल कम्मिटी के विषय विशेषज्ञ एवं विभाग के पूर्व अध्यक्ष तथा विश्वविद्यालय के प्रभारी उपकुलपति आचार्य डॉ. आर. शशिधरन के प्रति भी शोधार्थी अत्यंत आभारी है । इनका बहुमूल्य सहयोग एवं असीम आशीर्वाद शोध-कार्य के विषय-चयन से लेकर अंत तक निरंतर प्राप्त होते रहे हैं । उनके प्रति भी शोधार्थी हृदय से आभार प्रकट करती है । विभाग की पूर्व अध्यक्षा आचार्या डॉ. के. वनजा जी, पूर्व-अध्यक्ष आचार्य डॉ. मोहनन जी, पूर्व-अध्यक्षा आचार्या डॉ. शमीम अलियार जी, स्वर्गीय डॉ. षनमुखन जी आदि गुरुजनों के प्रति भी शोधार्थी अत्यंत आभारी है । इसी तरह विभाग के अन्य गुरुजनों, शोधार्थियों तथा अन्य मित्रों के प्रति भी शोधार्थी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है । विभागीय पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी शोधार्थी कृतज्ञ है ।

प्रस्तुत शोधकार्य के आरंभ से लेकर प्रबंध प्रस्तुतीकरण तक की सुदीर्घ अवधि में समय-समय पर शोधार्थी को हिन्दी एवं केरलीय नाट्य-जगत् से संबंधित अनेक-अनेक प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध रंगकर्मियों, लेखकों, आलोचकों, विद्वानों, कलाकारों एवं सहृदयों की बहुविध सहायता एवं सहयोग प्राप्त होते रहे हैं । राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, दिल्ली, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, संगीत नाटक अकादमी, दिल्ली, केरल संगीत नाटक अकादमी, निरीक्षा महिला नाट्य-संघ, तिरुवनंतपुरम आदि-आदि से प्राप्त सहायता एवं सहयोग भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । कालिकट विश्वविद्यालय के आचार्य डॉ. के.एम. अनिल जी एवं मलयालम के प्रसिद्ध रंगकर्मी

एवं नाट्य-मर्मज्ञ प्रोफ. चंद्रदासन जी जैसे विद्वानों के नाम शोधार्थी कभी भूल नहीं सकती । पद्मश्री, गुरु पी.के. नारायणन नंबियार, स्वर्गीया श्रीमती मार्गी सती, श्रीमती उषा नंङियार, श्रीमती वासंती नारायणन, श्रीमती रंजिनी सुरेश जैसे पारंपरिक कलाकारों से प्राप्त सहयोग भी शोधार्थी के लिए बहुमूल्य रहा है । इनके प्रति भी शोधार्थी आभार व्यक्त करती है । और भी अनेक व्यक्ति एवं संस्थाएं हैं जिनका नामोल्लेख यहाँ संभव नहीं है । अपने उन सारे के सारे हितैषियों, लेखकों, कलाकारों, रंगकर्मियों एवं सहृदयों के प्रति भी शोधार्थी अपनी हृदयगत कृतज्ञता ज्ञापित करती है जिनकी प्रबंध-प्रणयन में शोधार्थी को प्रत्यक्ष या परोक्ष सहायता प्राप्त हुई है । अपने पूज्य पिताजी डॉ. पी. के. वेणु, जो स्वयं हिन्दी और मलयालम के लेखक, अनुवादक और एक मौलिक कवि है, के प्रति भी शोधार्थी ह्रदय से आभारी है जिनके अभाव में इस शोध प्रबंध को इस रूप में प्रस्तुत करना शोधार्थी के लिए संभव ही नहीं था । उनका स्नेह और वात्सल्य ही शोधार्थी का संबल है ।

भारत के स्त्रीवादी रंगमंच एवं महिला सशक्तीकरण के वर्तमान दौर के विशेष सन्दर्भ की दिशा में प्रस्तुत शोध-कार्य, यत्किञ्चित ही सही यदि उपादेय एवं मूल्यवान सिद्ध होगा तो शोधार्थी के लिए अपने इस विनम्र प्रयास को चरितार्थ मानने के लिए वहीं अलम है ।

यह शोध प्रबंध विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करती हूँ ।

सविनय,

अपर्णा वेणु

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग

कोच्चिन विज्ञान व

प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,

कोच्चिन- 22

तारीख :

अध्याय एक

भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति : जड़ों की खोज 1-57

1.1 विषय प्रवेश

1.2 भारतीय रंगमंच में स्त्री उपस्थिति

1.2.1 ज्ञान स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं

1.2.1.1 प्रागैतिहासिक अवशेष

1.2.1.2 वेदों में

1.2.1.3 पुराण एवं इतर साहित्यिक ग्रंथों में

1.2.1.4 अर्थ-शास्त्र में

1.2.1.5 नाट्य-शास्त्र में

1.2.1.5.1 कैशिकी वृत्ति

1.2.1.5.2 लास्य

1.2.1.5.3 सुकुमार और आबिद्ध प्रयोग

1.2.1.5.4 नायिका-भेद

1.2.1.5.5 नर्तकी और नाटकीया

1.2.1.6 परवर्ती आचार्यों के नायिका भेद

1.2.1.7 विपरीत भूमिका

1.2.1.8 प्राचीन समय की महिला रंगकर्मी

1.2.1.8.1 अप्सरा

1.2.1.8.2 गणिका

1.2.1.8.3 नटी

1.2.1.9 देवदासी नृत्य

1.2.1.10 संस्कृत की महिला नाटककार

1.2.2 महिला रंग-अभिव्यक्ति की जीवित परंपरा

1.2.2.1 पारंपरिक महिला रंगमंच : लोक धारा

1.2.2.1.1 स्त्री लोक नृत्य

1.2.2.1.2 स्त्री लोक नाट्य

1.2.2.1.2.1 टूंटिया-टूंटकी

1.2.2.1.2.2 खोडिया

1.2.2.1.2.3 सामा-चकेवा

1.2.2.1.2.4 झिझिया

1.2.2.1.2.5 जट-जटिन

1.2.2.1.2.6 रली

1.2.2.1.2.7 कुरवंजी

1.2.2.2 पारंपरिक महिला रंगमंच : क्लासिकी धारा

1.2.2.2.1 क्लासिकी स्त्री नृत्य

1.2.2.2.1.1 मोहिनियाट्टम

1.2.2.2.1.2 भरतनाट्यम

1.2.2.2.1.3 ओडीसी

1.2.2.2.1.4 कथक

1.2.2.2.1.5 सत्रिय नृत्य

1.2.2.2.2 क्लासिकी स्त्री नाट्य

1.2.2.2.2.1 कूटियाट्टम और नंङियारकूत्त्

1.2.3 आधुनिक रंगमंच में महिलाओं की उपस्थिति

1.2.3.1 स्त्री की भूमिका में पुरुष

1.2.3.2 रंगमंच में महिलाओं का प्रवेश

1.2.3.3 पारसी रंगमंच और स्त्रियां

1.2.3.4 अन्य नाट्य-मंडलियों में स्त्री उपस्थिति

1.3 निष्कर्ष

अध्याय दो

स्त्रीवादी रंगमंच : संकल्पना, स्वरुप एवं सौंदर्यशास्त्र 58-91

2.1 विषय प्रवेश

2.2 स्त्रीवाद

2.3 स्त्रीवाद और रंगमंच

2.4 महिला रंगमंच और स्त्रीवादी रंगमंच

2.5 स्त्रीवादी रंगमंच : संकल्पना एवं परिभाषाएं

2.6 स्त्रीवादी रंगमंच : अन्वेषण कार्य एवं प्रवृत्तियां

2.7 प्रदर्शनकारी स्त्री-देह की भाषा

2.8 स्त्रीवादी रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र

2.9 स्त्रीवादी रंगमंच का स्वरुप

2.9.1 वैश्विक परिदृश्य

2.9.2 भारतीय परिदृश्य

2.10 निष्कर्ष

अध्याय तीन

स्त्रीवादी रंगमंच का भारतीय परिपार्श्व : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

92-148

3.1 विषय प्रवेश

3.2 १९४० के पश्चात का रंगमंचीय आंदोलन एवं स्त्री चेतना

3.2.1 इप्टा एवं महिलाएं

3.2.2 पृथ्वी थियेटर एवं महिलाएं

3.2.3 के पि ए सी एवं स्त्रियां

3.2.4 अंतर्जनसमाजम और उसकी प्रस्तुति 'तोषिलकेन्द्रत्तिलेक्क'

3.3 नया रंग आंदोलन और स्त्रियाँ

3.4 स्त्रीवादी रंगमंच : विशेष संकल्पना का उदय एवं विकास

3.4.1 पहला चरण : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

3.4.2 दूसरा चरण : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

3.4.2.1 पारंपरिक रंगमंच का समकालीन स्त्रीवादी पुनर्रूपायन : हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में

3.4.2.2 समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच : हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में

3.4.2.2.1 महिला निर्देशकों का योगदान

3.4.2.2.2 अन्य महिला रंगकर्मियों की देन

3.4.2.2.3 नाट्य-मंडलियों की देन

3.4.2.2.4 महिला एकल रंगकर्मियों की देन

3.5 निष्कर्ष

अध्याय चार

पारंपरिक रंगमंच के समकालीन पुनर्रूपायन का स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में 149-232

4.1 विषय प्रवेश

4.2 पारंपरिक कलाओं का आधुनिक स्वरुप : लोक तथा क्लासिकी के सन्दर्भ में

4.3 पारंपरिक रंगमंच का पुनर्रूपायन : स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य

4.3.1 नंङियारकूत्त्

4.3.1.1 नाट्याभिनय और निर्वाहणम

4.3.1.2 नंङियारकूत्त् की उत्पत्ति : प्रचलित दंतकथा

4.3.1.3 नंङियारकूत्त् की कथावस्तु

4.3.1.4 नंङियारकूत्त् का रंग्मंड़प

4.3.1.5 प्रस्तुतीकरण के अधिकारी

4.3.1.6 अनुष्ठान

4.3.1.7 अभिनय शैली

4.3.1.8 नंङियारकूत्त् का पुनर्रूपायन (समकालीन सन्दर्भ)

4.3.1.9 स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप

4.3.2 पंडवानी

4.3.2.1 स्वरूप और विकास

4.3.2.2 प्रदर्शन शैली

4.3.2.3 विषय वस्तु

4.3.2.4 स्त्रीपक्षीय पुनर्रूपायन

4.3.2.4.1 स्त्रियों का प्रवेश

4.3.2.4.2 स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप

4.3.3 कथकलि

4.3.3.1 स्वरूप और विकास

4.3.3.2 विषयवस्तु

4.3.3.3 अभिनय शैली

4.3.3.4 स्त्रीपक्षीय पुनर्रूपायन

4.3.3.4.1 स्त्रियों का प्रवेश

4.3.3.4.2 महिला कथकलि संघ

4.3.3.4.3 स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप

4.4 निष्कर्ष

अध्याय चार

अंतर्वस्तु, रूप, एवं दर्शकीय अनुभूति : हिन्दी तथा मलयालम के समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच का विश्लेषण 233-288

5.1 विषय वस्तु

5.2 रंग-प्रस्तुति की अंतर्वस्तु एवं स्त्री

5.2.1 स्त्रीवादी रंगमंच की अंतर्वस्तु

5.2.2 अंतर्वस्तु : स्त्री जीवन के विभिन्न आयाम

5.2.2.1 शारीरिक शोषण

5.2.2.2 मजदूर औरत

5.2.2.3 दलित स्त्री

5.2.2.4 मध्यवर्गीय स्त्री

5.2.2.5 विधवा जीवन

5.2.2.6 स्त्री कलाकार

5.2.2.7 सशक्त स्त्री पात्र

5.2.2.8 स्त्रीत्वपरक अनुभव

5.2.2.9 मिथकीय स्त्री चरित्र

5.3 रंग-प्रस्तुति का रूप एवं स्त्री

5.3.1 प्रदर्शन-स्थल

5.3.2 प्रदर्शनकारी-देह

5.3.3 मंच-व्यवस्था एवं रंग-सामग्री

5.3.4 वेश-भूषा एवं श्रृंगार

5.3.5 प्रकाश एवं ध्वनि-विन्यास

5.4 दर्शक एवं दर्शकीय अनुभूति

5.4.1 स्त्रीवादी रंगमंच एवं दर्शकीय अनुभूति

5.4.2 दर्शकीय अनुभूति के विभिन्न आयाम : स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य

5.5 निष्कर्ष

उपसंहार **289-298**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची **299-312**

परिशिष्ट-1 **313-314**

परिशिष्ट-2 **315-326**

अध्याय एक

भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति : जड़ों की खोज

1.1 विषय-प्रवेश

सृजनात्मक अभिव्यक्ति से संबंधित हर कोई विधा चाहे वह कला, साहित्य अथवा रंगमंच ही क्यों न हो, अपने वर्तमान में जिस किसी रूप में विद्यमान रहती है उसके पीछे अपने समय और समाज की एक निजी पृष्ठभूमि और परंपरा अवश्य रहती है । इससे सर्वथा कटकर अथवा अलग होकर किसी भी विधा का अध्ययन करना किसी भी विधा का अध्ययन करना न तो संभव होता है और न ही समीचीन । ठीक इसी प्रकार भारत के स्त्रीवादी रंगमंच का अध्ययन करने के लिए भी इस विषय का अन्वेषण ऐतिहासिक दृष्टि से करना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी होता है कि भारतीय रंगमंच के सदियों पुराने इतिहास में स्त्रियों की क्या भूमिका एवं किस प्रकार की उपस्थिति रही है ।

1.2 भारतीय रंगमंच में स्त्री उपस्थिति

मानवीय सृजनशीलता की उत्कृष्टतम उपलब्धियों को सूचित करनेवाली भारतीय रंगमंच की गरिमामयी परंपरा अति प्राचीन एवं अत्यंत समृद्ध रही है । प्राचीन काल से ही भारत में नृत्त, नृत्य, नाट्य एवं इतर प्रदर्शनकारी कलाओं का किसी न किसी रूप में प्रचार अवश्य होता रहा है, जो निरंतर विकास की दिशा में अग्रसर होते हुए समय-समय पर अपना परिष्कार करता रहा है । इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत में अति प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ रंगमंच एवं रंगकर्म से अवश्य जुडी रही थीं । किन्तु इसके साथ-साथ, इस दुखद स्थिति से भी कभी इनकार नहीं किया जा सकता है कि हमारे समृद्ध रंगमंचीय अतीत में महिलाओं की जो महनीय भूमिका रही है उसको इतिहासबद्ध तरीके से अंकित करने का कार्य हमारे तथाकथित रंगमंचीय इतिहासकारों ने नहीं के बराबर ही किया है । चाहे नाट्य-कृतियों का साहित्यिक इतिहास हो या नाट्य-प्रदर्शन का रंगमंचीय इतिहास, महिला कलाकारों के योगदान को प्रायः हाशिये पर डाला दिया गया दिखाई देता है । उस पर विस्तृत तथा सूक्ष्म दृष्टि डालने का प्रयास नहीं के बराबर ही हुआ है ।

पुरुष-प्रधान समाज में रचित इतिहासों में महिलाओं के जीवन, कर्म और मानवीय मामलों में भागीदारी का सही मूल्यांकन न होना स्वाभाविक ही है । क्योंकि इतिहास रचने वालों की अपनी विशेष रुचि और दृष्टि अवश्य होती है । साथ ही उसमें अपने समय की सामाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ व नैतिक मूल्यों का प्रभाव भी मिश्रित होता है । इनके सबके आधार पर ही अतीत के विविध पक्षों को क्रमबद्ध एवं लिपिबद्ध किया जाता है । दूसरे शब्दों में इतिहास लेखन का कार्य किस व्यवस्था में होता है व किस उद्देश्य से किया जाता है, उसका प्रभाव अवश्य ही वस्तु चयन में दिखाई देता है।

भारतीय रंगमंच संबंधी इतिहास लेखन में भी स्त्रियों के योगदान को प्रायः अनदेखा ही किया गया है । अतः यहाँ भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति को ढूँढने का प्रयास किया गया है । इसके लिए तीन परस्पर भिन्न आधारों को लिया गया है । वे हैं -

1. विभिन्न ज्ञान स्रोतों की पाठगत सामग्रियों से मिलने वाली सूचना ।
2. पारंपरिक महिला प्रदर्शनधर्मी कलाओं की जीवित परंपराएं ।
3. आधुनिक रंगमंच के विकास के प्रारंभिक चरण ।

1.2.1 ज्ञान स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं

महिला रंगकर्म की बीती हुई कहानी के साधन-सामग्री एवं प्रमाण वेद, पुराण, उपनिषद्, भास, कालिदास प्रभृति रचनाकारों के नाटक, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, भित्तियों तथा गुफाओं में अंकित चित्रकला एवं मूर्तिकला आदि विभिन्न प्राचीन ज्ञान स्रोतों में लिखित व अंकित रूप में प्राप्त है ।

1.2.1.1 प्रागैतिहासिक अवशेष

प्रागैतिहासिक युग की गुफाओं और चट्टानों से जो कला-सामग्री पुरातत्व विशेषज्ञों को प्राप्त हुई है, उससे असंदिग्ध रूप से यह प्रामाणित किया जा सकता है

कि रंगमंच या प्रदर्शनधर्मी कलाओं में स्त्रियों की उपस्थिति आरंभ से ही अवश्य रही थी । भारत के प्रागैतिहासिक स्थानों में मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के नाम सबसे प्राचीन माने गए हैं । यहाँ से प्राप्त जो कला-वस्तुएं हैं, उनमें एक मूर्ति ऐसी है जो नृत्य करने वाली हसीन युवती की है । इससे यह बात सिद्ध की जा सकती है कि प्रागैतिहासिक काल से ही स्त्रियाँ नृत्य का शिक्षण लेती थीं और प्रदर्शन करती थीं । मोहनजोदड़ो से प्राप्त नृत्य करनेवाली युवती की इस मूर्ति को भारतीय कला-इतिहास की प्रथम मूल्यवान उपलब्धि मानी जा सकती है ।

उडीसा के समीप उदयगिरी या खण्डगिरि की गुफाएं जो है उनका निर्माण 200 ई. पूर्व माना जाता है । यहाँ की हाथी-गुफा के प्रकोष्ठ में बने एक भित्ति चित्र में नृत्य-संगीत रत स्त्री का सुन्दर चित्र बना हुआ है । दक्षिण भारत में अमरावती (22 वीं 21 ई.) की प्रसिद्ध कला-कृतियों में ऐसी अप्सराओं का अंकन पाया जा सकता है जो नृत्य-वाद्य में तल्लीन है । इसी प्रकार अजन्ता, बाघ, सित्रनवासल, एलोरा, एलीफैंटा और बादामी आदि की गुफाओं में बने चित्रों तथा मूर्तियों में नृत्य करनेवाली स्त्रियाँ विभिन्न मुद्राएं धारण किए हुए दिखाई देती हैं । अजन्ता की चित्रावली में भी नृत्य करनेवाली अप्सराओं का सजीव चित्र देखने को मिलता है । इसके और भी कई प्रमाण उपलब्ध हैं ।

सित्तनवासल के गुफा चित्रों में दिव्य नायिका विद्याधारियों को मेघों के बीच नृत्य करती हुई चित्रित किया गया है । इसी प्रकार मेघों के बीच उड़ती हुई एवं नृत्य करती अप्सराओं का अंकन एलाश की कला में देखने को मिलता है, जिनका निर्माण 8वीं से 10वीं सदी के बीच हुआ । बाघ की गुफाओं में सौन्दर्य-प्रसाधनों से अलंकृत नर्तकियों को नर्तकों के साथ सामूहिक रूप से 'हल्लीस' नृत्य करते हुए दिखाए गए है । सामान्यतः देश के विभिन्न अंचलों में और विशेष रूप से दक्षिण के मंदिरों में देवमूर्तियों के सम्मुख भक्ति भाव में विलीन होकर नृत्य करती हुई देवदासियों का चित्रण देखने को मिलता है ।

उत्तरमध्यकाल में निर्मित कोणार्क, भुवनेश्वर और खजुराहो के मंदिरों पर नृत्य करनेवाली अप्सराओं एवं गणिकाओं का चित्रण भावाभिव्यंजन, कलात्मक सौष्ठव एवं साज-सज्जा की दृष्टि से हुआ है । जमसोत की मूर्ति शिल्पों में अभिनय की विभिन्न भाव-मुद्राओं को धारण किये भव्य नारी छवियाँ देखने को मिलती हैं ।

1.2.1.2 वेदों में

वैदिक युग के यज्ञों से संबंधित कर्मकाण्डों में कई ऐसी क्रियाएं मौजूद थीं, जो आज के रंगकर्म के निकट पड़ते हैं । इनमें कई ऐसी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जो रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति को स्पष्ट रूप से प्रामाणित करने वाली हैं । वेदों में सर्वप्रथम इस प्रकार का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है । "ऋग्वेद में प्रातःकालीन उषा की समता मंच के ऊपर अपने नग्न स्तनों को हिलाती हुई उल्लासमय नृत्त करनेवाली नर्तकी के साथ की गयी है ।"[1] इससे यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि नृत्य करनेवाली स्त्रियाँ वेदों के समय में अवश्य मौजूद थीं तथा मंच पर प्रस्तुत होनेवाले स्त्री-नृत्य को एक ऐसी कलात्मक क्रिया मानी जाती थी जो मनमोहक चाक्षुष सौन्दर्य से संपन्न थी ।

इसी प्रकार ऋग्वेद में 'समन' नामक एक ऐसे तत्कालीन मेले का उल्लेख मिलता है, जिसमें तरुणों के साथ तरुणियाँ भी मिलकर नाचती हैं । "यजुर्वेद तथा आपस्तम्भ स्रौत सूत्रों में ऐसे नृत्य का उल्लेख मिलता है, जिसमें आठ दासी कन्याएं सिर पर जल के घड़े रखकर वाद्य-संगीत के साथ माजीली गीत गाती हुई घूम-घूमकर नाचती है ।"[2] अथर्ववेद में भी ऐसे उल्लेख पाए जा सकते हैं । "अथर्ववेद में भी गन्धर्वों के साथ जीवन बिताने वाली रंगकर्मी स्त्रियों के बारे में उल्लेख है ।"[3]

---

[1] Iravati – Performing Artists in Ancient India, P.66

[2] वहीं, पृ.66

[3] वहीं, पृ.65

1.2.1.3 पुराण एवं इतर साहित्यिक ग्रंथों में

नृत्त-नृत्य, अभिनय आदि रंगमंच के अन्यान्य पहलुओं में प्रवीण महिलाओं से संबंधित सूचनाएं अन्यान्य पुराण एवं इतर साहित्यिक ग्रंथों में उपलब्ध होती हैं । महाकवि कालिदास का विख्यात नाटक 'मालविकाग्निमित्र' की नायिका मालविका नृत्य तथा अभिनय कला में अत्यंत निपुण है । उसे नाट्य-विद्या का शिक्षण आचार्य गणदास के द्वारा दिया जाता है, जो राजा अग्निमित्र का सदस्य एवं नाट्याचार्य है । आचार्य गणदास मालविका को 'पंचांगाभिनय' का शिक्षण देते हैं, जो स्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त अभिनय का सर्वश्रेष्ठ रूप है । आचार्य गणदास मालविका की अभिनय प्रतिभा की प्रशंसा भी करते हैं मालविका की अभिनय निपुणता को देखकर आचार्य में ऐसा संदेह उत्पन्न होता है कि उन्होंने उसे अभिनय के जो पाठ पढ़ाए उन सबका प्रयोग अतिसुन्दरता से करती हुई क्या वह उन्हें अभिनय सिखा रही है कि नहीं । जब राजा अग्निमित्र छलिक शैली का अभिनय, जो अत्यंत कठिन एवं दुष्कर है, देखने का आग्रह प्रकट करते हैं तब उस चुनौती को स्वीकार करती हुई मालविका शर्मिष्ठा की कहानी को आधार बनाकर मध्यलय सहित गति से छलिक शैली में रूपायित अभिनय को प्रदर्शित करके राजा के मन को बहलाती है । अंगाभिनय का सामंजस्य, तालबोध से युक्त, रसनीयता तथा हस्तमुद्राभिनय की चारुता से संपन्न मालविका की अभिनय शैली की प्रशंसा परिव्राजिका भी करती है । श्रृंगार एवं लास्य के सभी तत्वों का समावेश मालविका के अभिनय में सजीव रूप से विद्यमान है । 'मालविकाग्निमित्र' से प्राप्त ये सूचनाएं रंगमंच तथा महिलाओं के बीच के सुदृढ़ संबंध को प्रमाणित करती है ।

रंगमंचीय कलाओं से जुडी महिलाओं का परिचय चारुदत्त, हरिवंश पुराण, प्रतिमानाटक, विक्रमोर्वशीय, उभयसारिका, वाल्मीकी रामायण, उत्तररामचरित, प्रियदर्शिका, कुट्टनीमत आदि रचनाओं में भी मिलता है । महाकवि भास के द्वारा रचित 'चारुदत्त' नामक नाटक की नायिका वसंतसेना रंगमंचीय कलाओं में अत्यंत

कुशल एक गणिका है । नाटक के प्रथम अंक में वसंतसेना का विशेषण इस प्रकार दिया गया है कि "रंगप्रवेशन कलानां चैव शिक्षया ।"[1] दरिद्र चारुदत्त और गणिका वसंतसेना के बीच का गूढ़-प्रेम इस नाटक की कथावस्तु है । नाटक के प्रथम अंक का एक विशेष प्रसंग यहाँ द्रष्टव्य है । रात के समय अपना पीछा करनेवाले शकार और विट नामक व्यक्तियों को देखकर वसंतसेना भयचकित हो जाती है । उनसे बचने के लिए वह किसी घर के दीवार के पीछे छिपती है । इस समय उस घर से बाहर आने वाली दासी को देखकर उसे वसंतसेना समझकर शकार और विट उसे पकड़ लेते हैं दासी के चिल्लाने पर उसकी आवाज़ को सुनकर शकार को पता चलता है कि वह वसंतसेना नहीं है । लेकिन विट यह संदेह प्रकट करता हुआ कहता है कि-

"एषा रंगप्रवेशनकलानां चैव शिक्षया ।
स्वरांतरेण दक्षहि वयाहर्तुं तन्नुमुच्चताम् । ।"[2]

अर्थात् नाट्य तथा अभिनय कलाओं में सुशिक्षित होने के कारण वसंतसेना अपनी आवाज़ बदलकर बोलने में समर्थ होगी । इसलिए वह हमें धोखा दे रही होगी । इस प्रसंग से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय में स्त्रियाँ अभिनय कला के सूक्ष्म पक्षों में भी अत्यंत प्रवीण थी ।

ईस्वीं 5वीं शती में रचित इलंकोवटिकल् के 'चिलप्पतिकारम्' नामक तमिल महाकाव्य की प्रमुख पात्र है माधवी, जो एक नर्तकी है । अपने सातवें साल से लेकर नृत्य, अभिनय आदि में शिक्षण प्राप्त करने वाली माधवी मंच पर जो गंभीर नृत्य प्रस्तुत करती है उस का वर्णन 'चिलप्पतिकारम्' में प्राप्त है ।

हरिवंश पुराण में भी ऐसे अनेक प्रसंग पाए जाते हैं जिनमें, ऐसी अभिनेत्रियों का उल्लेख प्राप्त होते हैं जो मंच पर श्रीकृष्ण की कथाओं का प्रदर्शन प्रस्तुत करती

---

[1] डॉ. प्रिया नायर - रंगवेदियिले स्त्री : चरित्रवुम् पाठ-संदर्भङ्ङलुम्, पेन्नरंङ : कालान्तरयात्रकल्, सं. डॉ. आर.बी. राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.32

[2] वहीं, पृ.32

हैं । असुरराज वज्रनाभ की देख-रेख में आयोजित कला समारोह में प्रदर्शित ‘रंभाभिसार’ नामक नाटक में नायिका रंभा की भूमिका द्वारका की मनोवती नामक एक गणिका द्वारा की जाती है । बाणभट्ट की ‘कादम्बरी’ में वर्णित संगीतगृहों में महिलाओं के अभिनय प्रदर्शन हुआ करते थे । दसवीं सदी की बयणरेखाओं में अभिनेत्रियों के रूपलावण्य का वर्णन मिलता है । ऐसा कहा गया है कि जयदेव कवि के ‘गीत गोविन्द’ का नृत्य रूप में प्रदर्शन कवि की पत्नी पद्मावती ने भोगवेला नामक त्योहार के अवसर पर किया था ।

आठवीं सदी में रचित भवभूति के ‘उत्तररामचरित’ नाटक के तृतीय अंक में महिला रंगमंच की सूचना मिलती है । वाल्मीकी के आश्रम में रहने वाले लव और कुश जब श्रीराम की कथा सुनने का आग्रह प्रकट करते हैं तब महर्षि वाल्मीकी नाट्य रूप में प्रदर्शित करने के लिए राम कथा के एक अंश को भरतमुनि तक पहुँचा देते हैं । भरतमुनि उस नाटक की प्रस्तुति अप्सराओं से कराते हैं ।

कश्मीर के कवि दामोदर गुप्त के ‘कुट्टनीमत’ नामक काव्य में महिला नाट्य संघ का उल्लेख मिलता है । प्राचीन महाराष्ट्र के राजा समरभट जब वारणासी में विश्वेश्वर मंदिर देखने के लिए आते हैं तब उनके सामने श्रीहर्ष द्वारा रचित नाटक ‘रत्नावली’ के प्रथम अंक की प्रस्तुति गणिकाओं के द्वारा होती है । नायिका रत्नावली की भूमिका के साथ-साथ राजा उदयन, विदूषक, वसंतक आदि पुरुष पात्रों की भूमिकाएं भी गणिका स्त्रियों के द्वारा ही अभिनीत होती है । उसी प्रकार वाल्मीकी रामायण के बालकाण्ड के 5वीं सर्ग के अयोध्या वर्णन में वधू नाटक संघों के बारे में बताया गया है । इन दोनों से यह सूचना अवश्य मिलती है कि प्राचीन समय में ऐसी महिला नाट्य मंडलियाँ अवश्य विद्यमान थीं जिनके सदस्य मात्र महिलाएं ही होती थीं ।

अभिनय के अलावा नाट्य-रचना, नेपथ्य का कार्यव्यापार आदि रंगमंच के अन्य पहलुओं में भी महिलाओं की उपस्थिति अवश्य रहती थी । इसके प्रमाण

महाकवि कालिदास कृत नाटक 'विक्रमोर्वशीय' तथा भास कृत 'प्रतिमा नाटक' आदि में मिलते हैं । विक्रमोर्वशीय के तृतीय अंक के मिश्रविष्कंभक में गालव तथा पल्लव नामक भरतमुनि के शिष्यों के बीच के संवादों में महिला रंगमंच की सूचना देखने को मिलती है । इंद्र की सभा में महिला नाट्य संघ के द्वारा प्रदर्शित 'लक्ष्मी स्वयंवर' नाटक का उल्लेख मिलता है, जिसकी रचना देवी सरस्वती के द्वारा बतायी गयी है । प्रतिमा नाटक के प्रथम अंक में श्रीरामचन्द्र के अभिषेक के समय जो नाट्य-प्रस्तुति का आयोजन होता है उसमें नेपथ्य का संचालन रेवा नामक स्त्री के द्वारा होता है ।

महाभारत के हरिवंश पर्व, विराट पर्व, उद्वेग पर्व आदि में नृत्त, नृत्य, नाट्य तथा संगीत आदि का उल्लेख मिलता है । हरिवंश पर्व में वज्रनाथ वध तथा प्रघुम्नविवाह के प्रसंग में 'रामायण नाटक' खेले जाने का प्रसंग मिलता है । यह अभिनय अत्यंत ही सफल रहा तथा स्त्री-दर्शकों ने अपने आभूषण उतार कर अभिनेताओं को उपहारस्वरुप भेंट किये । अतः स्पष्ट है कि महाभारत काल में नाटक सभी वर्गों के लोगों के लिए खेले जाते थे तथा स्त्रियाँ अभिनय देखने जाती थीं ।

1.2.1.4 अर्थ-शास्त्र में

कौटिल्य का अर्थशास्त्र रंगमंच संबंधी सूचनाओं से युक्त एक ऐसा शास्त्र ग्रन्थ है जिसमें सामाजिक एवं राजनीतिक स्तरों में रंगकलाओं के अर्थशास्त्रीय तत्वों को प्रस्तावित किया गया है । इसमें कलाओं के प्रति जो दृष्टि अपनाई गयी है वह सौन्दर्यशास्त्रीय नहीं है बल्कि कलाओं के प्रयोजनमूलक मूल्यों पर बल देने वाली है । अर्थात् समाज के लिए कलाएं किन-किन प्रकारों से लाभदायक हैं इसका अन्वेषण किया गया है । अतः अपने देश के या राजा के प्रति कलाकार को जिन-जिन कर्तव्यों एवं धर्मों का पालन करना है, उन सबका विवरण विस्तृत रूप से कौटिल्य ने किया है । उसमें अभिनय, नृत्य, गीत इत्यादि कर्मों से जुडी गणिकाओं, दासियों तथा अभिनेत्रियों के बारे में बताया गया है । "अर्थशास्त्र के 'अध्यक्षप्रचार' नामक द्वितीय अधिकरण के 'गणिकाध्यक्षप्रकरण' नामक अध्याय में ऐसा बताया गया है कि नृत्य

एवं अभिनय कलाओं में निपुण यौवनयुक्त रूपवती गणिका को हज़ार रुपये का वेतन देकर नियुक्त करना चाहिए ।"[1] ऐसा भी सूचित किया गया है कि जब इन "गणिकाओं का कला संघ अपनी कलाओं का प्रदर्शन करता है, तब उसे 'प्रेक्षा वेतन' के रूप में पांच रुपये देने चाहिए । जो व्यक्ति 'रंगोपजीवी' (जिसकी आजीविका रंगमंचीय प्रदर्शन से हो) गणिकाओं को नृत्य, अभिनय, गीत, वाद्य आदि का शिक्षण देता है उसको अपनी आजीविका केलिए राजकीय धन से वेतन देना चाहिए ।"[2]

विभिन्न प्रकार के करों पर चर्चा करने वाले अधिकरण में कौटिल्य ने ऐसा सूचित किया है कि "जो स्त्री अपने पति की अनुमति के बिना दिन के समय में 'स्त्री प्रेक्षा' (मात्र स्त्रियों के द्वारा प्रदर्शित रंगाविष्कार) देखने जाती है, उससे 6 रुपये वसूल करना चाहिए । अगर वह 'पुरुष प्रेक्षा' देखने जाती है तो उससे 6 रुपये के स्थान पर 12 रुपये वसूल करना चाहिए ।"[3] इससे दो तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं कि-

1. प्राचीन समय में नृत्य, अभिनय, संगीत आदि के सहारे अपनी आजीविका चलाने वाली स्त्रियाँ रहती थीं ।
2. मात्र स्त्रियों के द्वारा किये जाने वाले नाट्य प्रदर्शन उस समय के समाज में विद्यमान थे, जो 'स्त्री प्रेक्षा' के नाम से जाने जाते थे ।

1.2.1.5 नाट्यशास्त्र में

मुनि भरत प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' विश्व का एकमात्र ऐसा प्राचीन ग्रन्थ है, जिसमे नाट्यकला के ऐतिहासिक, रचनात्मक, अभिनयात्मक और रसात्मक पक्षों पर समग्र रूप से विशद एवं वैविध्यपूर्ण विचार किया गया है । संसार के अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ में नाट्य कला का इतना सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन नहीं मिलता, जितना नाट्यशास्त्र

---

[1] डॉ. प्रिया नायर - रंगवेदियिले स्त्री : चरित्रवुम् पाठ-संदर्भंङलुम्, पेन्नरंङ : कालान्तरयात्रकल्, सं. डॉ. आर.बी. राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.30

[2] वहीं, पृ.30

[3] वहीं, पृ.30

में उपलब्ध है । हमारे धर्म-प्राण देश में प्रत्येक वस्तु की दिव्य-उत्पत्ति सिद्ध करने की एक परंपरा रही है । नाट्य में स्त्री के प्रवेश के संबंध में भी ऐसी एक दन्त कथा नाट्यशास्त्र में उल्लिखित है ।

ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत और अथर्ववेद से रस का संग्रह कर पंचमवेद के रूप में 'नाट्यवेद' का सृजन किया । उन्होंने आचार्य भरतमुनि को नाट्यवेद की शिक्षा दी तथा आदेश दिया कि अपने शत पुत्रों के सहयोग से इस नाट्यवेद का प्रयोग करें । इस क्रम में नाट्य की मातृरूपा भारती, आरभटी और सात्वती आदि वृत्तियों का प्रयोग तो भरतमुनि कर सकें । किन्तु कैशिकी वृत्ति का प्रयोग वे नहीं कर पाए । क्योंकि नाट्य-प्रयोग के लिए स्त्रियाँ उपलब्ध न थीं । भरतमुनि के निवेदन करने पर ब्रह्मा ने 24 अप्सराओं की सृष्टि की जो नाट्यकला में अत्यंत निपुण थीं । वे हैं मञ्जुकेशी, सुकेशी, मिश्रकेशी, सुलोचना, सौदामिनी, देवदत्ता, देवसेना, मनोरमा, सुदती, सुन्दरी, विदग्धा, विपुला, सुमाला, संतती, सुनंदा, सुमुखी, मागधी, अर्जुनी, सरला, केरला, धृति, नंदा, पुष्कला और कलभा । इन अप्सराओं को साथ लेकर ही भरतमुनि ने नाट्य का प्रयोग किया था ।

1.2.1.5.1 कैशिकी वृत्ति

भरतमुनि के अनुसार कैशिकी वृत्ति का लक्षण इस प्रकार है-

"या शलक्ष्णनेपथ्यविशेषयित्रा स्त्रीसंयुता या बहुनृत्रगीता

कामोपभोगप्रभवोपचारा तां कैशिकीं वृत्तिमुदाहरन्ति ।।"[1]

अर्थात् उसी को कैशिकी वृत्ति समझना चाहिए जो आकर्षक वेश-भूषा के कारण विशेष सुरुचिपूर्ण हो, जिसमें स्त्री-पात्र तथा अनेक प्रकार के नृत्यों, गीतों तथा वाद्यों का समावेश हो, जिसमें प्रणय व्यापार तथा विलास आमोद बहुल प्रसंगों का प्रदर्शन हो । कैशिकी को सौन्दर्योपयोगी व्यापार के रूप में अभिनवगुप्त स्वीकारते

---

[1] सुरेन्द्रनाथ दीक्षित- भरत और भारतीय नाट्यकला, पृ.432

हैं । जैसे केशों का काम शरीर की शोभा बढ़ाना है उसी प्रकार, नृत्य, संगीत एवं श्रृंगारमय तत्वों से नाट्य की शोभा बढ़ती है ।

1.2.1.5.2 लास्य

भरतमुनि के "नाट्यशास्त्र में दो प्रकार के नृत्यों का विवरण प्राप्त होता है । उद्धत नृत्र 'ताण्डव' और सुकुमार नृत्र 'लास्य' के नाम से प्रसिद्ध है । ताण्डव का पुरुष (शिव) से तथा लास्य का संबंध स्त्री (पार्वती) की भाव-भंगिमाओं से है । शिव और पार्वती दोनों के द्वारा उद्भावित नाट्य के दो रूपों के संबंध में महाकवि कालिदास ने भी सूचित किया है । - रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा ।"[1]

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में लास्य के दस अंगों का उल्लेख पाया जा सकता है

1. गेयपद, जिसमें तंत्री और भाण्ड की सहाय शुष्क गायन होता है ।
2. स्थित पाठ्य, जिसमें कामपीड़ित विरहिणी स्त्री प्राकृत भाषा में गायन करती है ।
3. आसीन, जिसमें स्त्री चिन्ताशोक समन्वित होती है तथा उसमें वाद्य का प्रयोग नहीं होता ।
4. पुष्पगंधिका में स्त्री नर-वेश में होती है । वह सखियों के विनोद के लिए ललित संस्कृत का पाठ करती है ।
5. प्रच्छेदक में ऐसी स्त्रियाँ जो चन्द्रज्योत्सना-पीड़ित मानिनी होती है अपने विप्रियकारी पति का भी आलिंगन करती हैं तथा उनके अपराधों की क्षमा भी करती हैं ।
6. त्रिगूढक लास्य ऐसा नृत्य है जो पुरुष-प्रयोज्य है । इसके पद सुकुमार और नृत्त सम होते हैं ।

[1] सुरेन्द्रनाथ दीक्षित- भरत और भारतीय नाट्यकला, पृ.472

7. सैधंवक लास्य में पात्र विस्मृत-संकेत प्रिय (अथवा प्रिया) को न पाकर संकेत भ्रष्ट होता है तथा प्राकृत भाषण में गायन करती है ।
8. द्विमूढ़क लास्य में चौरस पद, मंगलार्थक गीत और अभिनय तथा भाव एवं रस का समावेश होता है।
9. उत्तमोत्तम लास्य अनेक रस, हेला-भाव तथा विचित्र श्लोक-बंधों से संबद्ध होता है ।

10. उक्त प्रयुक्त लास्य में कोप-प्रसाद जनित अधिक्षेपपूर्ण उक्त भावों का प्रयोग उक्ति प्रयुक्ति शैली में होता है । इसमें गीतार्थ की योजना भी रहती है ।

इन दस लास्यांगों के अतिरिक्त भरत ने दो और लास्यांगों का भी उल्लेख किया है- भावित और विचित्रपदा । "भावित में कामाग्नि संतप्त स्त्री प्रिय को स्वप्न में देखकर विविध भावों का प्रकाशन करती है । विचित्रपद नामक लास्य में विरहिणी नारी प्रिय की प्रतिकृति को देखकर अपना मनोविक्षेप करती है ।"[1]

1.2.1.5.3 सुकुमार और आबिद्ध प्रयोग

स्त्री और पुरुष की अन्यान्य प्रकृति को दृष्टि में रखकर नाट्यशास्त्रकार ने दो प्रकार के नाट्य-प्रयोग की कल्पना की हैं- सुकुमार और आबिद्ध । सुकुमार प्रयोग में नारी-पात्रों की प्रधानता रहती है और आबिद्ध प्रयोग में पुरुष की । सुकुमार प्रयोग में युद्ध, मार-काट, ह्त्या और उसी प्रकार के अन्य भयावह दृश्यों का समावेश नहीं के बराबर है क्योंकि ऐसा विशवास था कि इनका प्रयोग नारी के द्वारा संभव नहीं है । नाटक, प्रकरण, भाण और वीथि आदि श्रृंगार-प्रधान सुकुमार रूपक को स्त्रियों के लिए उपयुक्त माना गया है । इनमें सुकुमार प्रकृति की महिलाएँ भूमिका में रहती हैं । इन रूपक-भेदों में श्रृंगार की प्रधानता होने के कारण स्त्री की सुकुमार प्रवृत्ति और ललित के प्रसार अवश्य पाया जा सकता है ।

---

[1] सुरेन्द्रनाथ दीक्षित- भरत और भारतीय नाट्यकला, पृ.474

1.2.1.5.4 नायिका-भेद

आचार्यों ने नायिका भेद के विवेचन-विश्लेषण के लिए कई प्रकार के आधारों को स्वीकार किया है । परन्तु भरतमुनि की दृष्टि नाट्य के लिए उपयुक्त नायिका की ओर थी । उन्होंने स्त्री को सुख का मूल, काम-भाव का आलंबन और काम को सब भावों का स्रोत मानकर नायिका भेद पर विस्तार से विचार किया है ।

भरतमुनि ने नायिका-भेद के विवेचन के लिए चार प्रकार के आधारों को स्वीकार किया है । उनमें स्थूल और सूक्ष्म विचार-तत्वों का समावेश है । स्त्री के अंग-सौन्दर्य, शील-सौजन्य, आचरण की पवित्रता, अंग-सौन्दर्य, जीवन की प्रकृति तथा अवस्था को विशेष महत्त्व दिया गया है । नायिका-भेद के निम्नलिखित कुछ आधार हैं-

1. प्रकृति-भेद : उत्तमा, मध्यमा
2. आचरण की शुद्धता या अशुद्धता : बाह्या, अभ्यन्तरा और बाह्याभ्यंतरा
3. सामाजिक प्रतिष्ठा :दिव्या, नृपत्नी, कुलस्त्री, गणिका
4. कामदशा की अवस्था : वासवकसज्जा, विरहोत्कंठिता, कलहान्तरिता, विप्रलंभा आदि
5. शील : ललिता, उदात्ता, निभृता
6. अंग-रचना और अंत : प्रकृति : दिव्या सत्वा, मनुष्य सत्वा आदि

भरत के इन आधारों पर ध्यान देने से यह तथ्य नितांत स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने विचार का आधार मुख्यतः स्त्री की काम-प्रवृत्ति, शालीनता, सौजन्य, सामाजिक प्रतिष्ठा और कठोरता आदि को बनाया था । इनमें सामाजिक-प्रतिष्ठा के आधार पर विभक्त नायिका-भेद सबसे प्रमुख है । "रूपक के विभिन्न भेड़ों में जिस प्रकार नायक विभिन्न वर्ग और सामाजिक स्तर के होते हैं, उसी प्रकार नाटक, प्रकरण, भाण और प्रहसन आदि में विभिन्न वर्ग और सामाजिक स्तर की नायिकाएं होती हैं । अतः उनको दृष्टि में रखकर यह भेद-विवेचन प्रस्तुत किया गया है- दिव्या, नृपत्नी, कुलस्त्री और गणिका । इन भेड़ों के नामकरण से उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा

का बोध हो जाता है । पुनश्च इन चारों नायिकाओं की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है इसलिए इन चारों के भी ललिता, उदात्ता, धीरा और निभृता आदि चार भेद हैं । दिव्या और नृपत्नी तो उपर्युक्त चारों गुणों से सुशोभित होती हैं । परन्तु कुलांगना तो उदात्त और निभृत ही होती है । गणिका और शिल्पकारिका तो ललित और उदात्त होती है । गुणों के क्रम से दिव्या और नृपत्नी समान है ।“[1]

1.2.1.5.5 नर्तकी और नाटकीया

नाटकीया से मतलब रस-भाव-विभाविका, दुसरे का संकेत जानने वाली, चतुरा, अभिनयज्ञा, भाण्ड-वाद्य-लय तालज्ञा, रसानुविद्ध और सर्वांग सुन्दरी नटी होती है । यहाँ लगता है कि मुनि भरत ने नटी के स्थान पर ही नाटकीया का प्रयोग किया हो । महाकवि भास कृत नाटक चारुदत्त में वसंतसेना नामक गणिका के लिए खलनायक शकार ने ‘नाटक स्त्री’ का प्रयोग किया है । हो सकता है, अभिनय एवं नृत्य में प्रवीण यह स्त्री वेश्या भी होती है । अथवा यह नर्तकी के निकट का शब्द भी हो सकता है । नर्तकी की परिभाषा और व्याख्या करते हुए उसकी मनोमुग्धकारिणी सुन्दरता-आकर्षक भाव-भंगिमा और शिल्पविज्ञान की बहुत प्रशंसा की गयी है ।

1.2.1.6 परवर्ती आचार्यों के नायिका-भेद

धनञ्जय, शारदातनय, रामचंद्र-गुणचन्द्र, शिंगभूपाल और विश्वनाथ जैसे भरत के परवर्ती आचार्यों ने भी नायिका भेद पर विचार किया है । आचार्यों ने नायिका-भेद के विवेचन के लिए अन्यान्य किस्मों के आधारों को स्वीकार किया है और उन आधार भूमियों पर विविध भेदों का विस्तार भी किया है । स्त्री की सामाजिक प्रतिष्ठा, आचरण की पवित्रता या अपवित्रता, काम दशा की विभिन्न अवस्था, वयः की विशेषता, अंग रचना और विभिन्न प्रकृतियाँ आधार भूमि के रूप में प्रस्तुत की गयी है । रामचंद्र-गुणचन्द्र को छोड़कर शेष सभी आचार्यों की एतत्संबंधी विचार-प्रणाली सामान्य रूप

[1] सुरेन्द्रनाथ दीक्षित- भरत और भारतीय नाट्यकला, पृ.198

से एक-सी है । दशरूपककार आचार्य धनञ्जय ने 'नववयोमुग्धा' और 'काममुग्धा' आदि भेदों की परिकल्पना की है तो साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने 'प्रथमावतीर्ण मदन विकारा' और 'प्रथमावतीर्ण यौवना' आदि दो और भेदों का उल्लेख किया है । परन्तु स्वीया, अन्या और साधारणी आदि तीनों प्रधान भेदों के संबंध में आचार्यों में मतभेद नहीं हैं । इनमें स्वीया नायक की विधिवत् विवाहित पत्नी होती है । वह शीलावती, सलज्ज, पतिव्रता, अकुटिल, पति-प्रेम-परायण और व्यवहार निपुण होती है । आचार्यों द्वारा कल्पित नायिका का दूसरा भेद है अन्या अथवा परकीया । परकीया जैसा कि नाम से स्पष्ट है, नायक की अपनी पत्नी नहीं होती बल्कि किसी अन्य व्यक्ति की पत्नी या अविवाहित (कन्या) होती है । तीसरा नायिका-भेद है साधारणी या वेश्या । नाट्यशास्त्रकार ने भी इस तीसरे प्रकार को स्वीकार किया है । रामायण काल के पूर्व से ही वेश्या की परंपरा प्रचलित थी । साधारणी सामान्यतः वेश्या होती है और प्रकरण के विशेष सन्दर्भ में नायिका होती है । साहित्य-दर्पण की कारिका में (3/56) कहा गया है कि रस के आलंबन रूप में काव्य-नाटक में प्रयुक्त नायिका में नायक के उक्त त्याग, आर्जव आदि सभी सद्गुण मौजूद होने चाहिए । आचार्य महर्षि वात्स्यायन ने भी अवस्था, आकृति और स्वभाव आदि को आधार बनाकर नायिकाओं के अन्यान्य वर्गों का विस्तार से विवेचन किया है ।

1.2.1.7 विपरीत भूमिका

पुरुष-पात्र द्वारा स्त्री-पात्र एवं स्त्री-पात्र द्वारा पुरुष-पात्र की भूमिका में प्रस्तुत होने के उल्लेख कतिपय ग्रंथों में प्राप्त होते हैं । रूपानुरूपा प्रकृति की यह परंपरा भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित है । आचार्य मुनि भरत ने तो इस अभिनय परंपरा के लिए निश्चित सिद्धांतों का निर्धारण किया है । इससे यह बात इसी ओर इशारा करती है कि भरत के पूर्व रंग-प्रयोगों में ऐसी परंपरा प्रचलित थी । पतंजली ने इसी के लिए 'भ्रूकुंस' शब्द का प्रयोग किया है । यह शब्द स्त्री-वेषधारी नर्तक के अर्थ में प्रयुक्त होता आया है । यह भी बताया गया है कि भौहों द्वारा भाषण या शोभा (कुंस)

होने के कारण ही वह स्त्री-वेषधारी नर्तक (पुरुष) भ्रूकुंस होता है । महर्षि पतंजली ने इस बात की ओर भी इशारा किया है कि भौहों और हाथ की विविध मुद्राओं द्वारा शब्द प्रयोग के बिना ही अनेक अर्थों की प्रतीति होती है । हर्षवर्धन का नाटक प्रियदर्शिका में वत्सराज-वासवदत्ता की प्रेमकथा पर आधारित नाट्य-प्रयोग का आयोजन देखने को मिलता है । उसमें पहले नायिका वासवदत्ता की भूमिका में आरणीका (प्रियदर्शिका) और वत्सराज की भूमिका में मनोरमा प्रस्तुत होने वाली है । परन्तु विदूषक और मनोहर की कुशल योजना से स्वयं उदयन ही नायक की भूमिका में (मनोरमा के स्थान पर) प्रस्तुत होता है । प्रियदर्शिका के इस नाट्य-प्रयोग से पुरुष की भूमिका में स्त्री और स्त्री की भूमिका में पुरुष दोनों प्रकार की प्रयोग-परंपराओं का स्पष्ट प्रमाण अवश्य पाया जा सकता है ।

1.2.1.8 प्राचीन समय की महिला रंगकर्मी

जहां तक प्राचीन समय की महिला रंगकर्मियों की बात है, रंगकर्म की अधिष्ठात्री स्त्रियों में अप्सरा, गणिका, नटी आदि तीन प्रमुख नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । नाट्यशास्त्री एवं परवर्ती ग्रंथों में इनकी विशेष योग्यता, विदग्धता, सामाजिक स्थिति आदि के संबंध में अनेक प्रकार के उल्लेख उपलब्ध होते हैं ।

1.2.1.8.1 अप्सरा

स्वर्ग की अप्सराओं को अप्रतिम सौन्दर्य से युक्त माना गया है । ये नृत्य, अभिनय और संगीत की अधिष्ठात्री बतायी गयी हैं । वेदों, पुराणों, शास्त्रीय ग्रंथों और परवर्ती काव्य-नाटकों में सर्वत्र इनके अस्तित्व की सजीव चर्चाएँ देखने को मिलती हैं । भरत का नाट्यशास्त्र, नंदिकेश्वर का अभिनयदर्पण आदि शास्त्रीय ग्रंथों में ब्रह्मा की आज्ञा से नृत्य-प्रयोग में लगी अप्सराओं के योगदान का उल्लेख हुआ है । उर्वशी, धृतायी, रम्भा, तिलोत्तमा और मेनका जैसी अप्सराएं देवेन्द्र की सभा की शोभा मानी गयी है, जिनके संबंध में कई रोचक कथाएँ उपलब्ध हैं ।

1.2.1.8.2 गणिका

प्राचीन समय में अभिनयकला की उन्नति और ख्याति में जिन महिला रंगकर्मियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है उनमें गणिकाओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । देवलोक एवं गन्धर्वलोक में जो स्थिति दिव्यांगना अप्सराओं की रही है, मनुष्य लोक में वहीं स्थिति गणिकाओं की रही । अप्सराओं द्वारा प्रवर्तित नृत्य-संगीत की परंपरा को गणिकाओं ने अपने कुलधर्म के रूप में स्वीकार किया । प्राचीन भारत के गणतंत्रों में गण की सार्वजनिक संपत्ति होने के कारण वे गणिका नाम से अभिहित की गयी है । एक सभ्य, सुशिक्षित एवं संस्कृत महिला के रूप में समाज में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता था । संस्कृत नाटकों में अन्य नारी पात्रों को प्राकृत में, किन्तु गणिका को संस्कृत में संवाद करते हुए दिखाया गया है । उनकी अपनी स्वतंत्र संस्थाएं हुआ करती थी ।

1.2.1.8.3 नटी

संस्कृत नाटकों की प्रस्तावना में सूत्रधार के साथ नटी भी प्रायः विद्यमान रहती है । भास के नाटकों में वह सूत्रधार की पत्नी के रूप में प्रयुक्त है । नटी के प्रति प्रयुक्त संबोधन 'आर्ये' है । 'आर्य' संबोधन पत्नियों के लिए भी प्रयुक्त होता है । उत्तरवर्ती, मृच्छकटिक, रत्नावली और मुद्राराक्षस नाटकों की नटी सूत्रधार की पत्नी के रूप में प्रस्तुत होती है । इनमें सूत्रधार नटी को 'प्रिये' शब्द से संबोधित करते हैं । इससे अनुमान किया जा सकता है कि सूत्रधार और नटी (एक ही जाति की) नाट्य व्यवसाय करने वाली विशिष्ट जाति के लोग प्राचीन समय में मौजूद थे । पति और पत्नी दोनों ही नाट्य-प्रयोग में एक-दूसरे के सहायक होते थे । नटी गीत, नृत्य तथा अभिनय कलाओं में निपुण होती थी । अभिज्ञान शाकुंतल तथा चारुदत्त नाटक में भी गीत की योजना उसी के द्वारा होती है । इन सूचनाओं के आधार पर यह तो प्रामाणित हो जाता है कि नटी सूत्रधार की सहानुगा है और उपलब्ध भारतीय नाटकों में सूत्रधार के साथ विद्यमान रहती है ।

1.2.1.9 देवदासी-नृत्य

इतिहास से हमें पता चलता है कि आठवीं सदी तक पहुंचते-पहुंचते समूचे दक्षिण भारत में आर्यों का प्रभाव जम गया था । यहाँ बड़े-बड़े मंदिर बनवाए गए और नृत्य तथा नृत्यांगनाएँ मंदिर की पूजा विधि के अभिन्न अंग बन गई । मंदिरों में लडकियां समर्पित की जाने लगीं और धीरे-धीरे अपने परिवारों से इनका नाता टूटने लगा । ये देवदासी नाम से जानी जाती थीं तथा इनका नृत्य 'दासियाट्टम' नाम से जाना जाता था । नृत्य और संगीत के माध्यम से भगवान की सेवा करना ही इन देवदासियों का धर्म था । इनके नृत्य का आतंरिक तत्व श्रृंगार-भक्ति से अनुप्रेरित था ।

देवदासियों से संबंधित कई सूचनाएं विभिन्न ग्रंथों में पायी जाती हैं । "ऋग्वेद में उल्लेख है कि उषमै या देवदासी फूलों से सुसज्जित वस्त्र पहनकर नृत्य करती है । अथर्ववेद में यह बात लिखी गयी है कि गन्धर्वों के साथ जीवन बिताने वाली स्त्रियाँ अक्सर मंदिरों में पायी जाती है । तमिल साहित्य एवं अन्य पौराणिक आधारों के अनुसार देवदासी 'मणिक्कम' यानी रत्नों के बीच मणि मानी जाती थी । मरीची संहिता के अनुसार कणिहै को समाज में उच्च कोटी का स्थान है । कणिहै का लक्षण यहीं है कि उसे ज़्यादा पवित्र एवं सहनशील तथा यौवन व मृदुलता से भरपूर होना चाहिए, साथ ही वह अपने लिए कोई इच्छा न करे या उसको महत्त्व न दे । उसे नाट्यकला में निपुण भी होना चाहिए । वह दोनों समय स्नान करें, शुद्ध व सुन्दर वस्त्र धारण करें, ये भी नियम है । भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में अध्याय 35 में कणिहै के उत्तम गुणों का वर्णन है ।"[1]

इन देवदासियों को समाज में मान-सम्मान प्राप्त था । लेकिन जब मंदिरों का शासन समाज के उच्च वर्ग के हाथों में आ गया तब देवदासियाँ उनके सुख-भोग की वस्तुएं मात्र बनने लगीं । दासी शब्द वेश्या का पर्यायवाची बन गया और दासियाट्टम् भी पतित माना जाने लगा । उन्नीसवीं सदी के समय में विक्टोरियन नैतिक मूल्यों का

[1] एन.ललिता- देवदासी प्रथा, धर्म के आर पार औरत, सं. नीलम कुलश्रेष्ठ, पृ.38

प्रभाव एवं समाज-सुधारवादी कार्यक्रमों के प्रचलन के कारण देवदासी प्रथा वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहित करनेवाली एक प्रणाली के रूप में देखा जाने लगा तथा उस पर रोक लगाने की कोशिशें भी सामने आयीं । मगर देवदासियों की कलात्मक उपलब्धियां एवं उनकी नृत्य शैली कायम रही तथा वे विभिन्न शास्त्रीय नृत्य शैलियों के रूप में विकास की दशा को प्राप्त की ।

1.2.1.10 संस्कृत में महिला नाटककार

भास-कालिदास प्रभृति नाट्यकारों के समान महिला नाटककारों की भी परंपरा अति प्राचीन काल से ही संस्कृत में रही है जो नाट्य सर्जना में अपना चिरंतन योगदान देती रही है । इतिहास के पन्नों में प्रायः इन लेखिकाओं का नाम उल्लिखित नहीं है, फिर भी संस्कृत नाट्य साहित्य को समृद्ध करने में इनका जो योगदान रहा है वह निश्चय ही अत्यंत महत्वपूर्ण है ।

संस्कृत नाट्य क्षेत्र में सर्वाधिक प्राचीन ज्ञात महिला नाटककार विजयभट्टारिका हैं, जिन्होंने 'कौमुदी-महोत्सव' नामक नाटक की रचना की है ।[1] संस्कृत साहित्येतिहास में विज्जका, विजयंका, विज्जा तथा विद्या आदि अनेक नामों से इनका उल्लेख हुआ है । मुकुल भट्ट, धनिक तथा मम्मट आदि आचार्यों ने विजया के पद्यों को अपने लक्षण ग्रंथों में उद्धृत किया है । अतः विज्जा का काल इनसे पूर्व, किन्तु दंडी के कुछ पश्चात् माना गया है । दंडी के द्वारा रचित 'काव्यादर्श' के मंगलश्लोक में वर्णित 'सर्वशुक्लासरस्वती' का अपने साथ समानता बतलाकर नीलवर्णा कहती यह दंडी का उपहास करती है ।[2] अतः विज्जका का काल 710 ई. से 860 ई. के मध्य माना जा सकता है । 'कौमुदी महोत्सव' के नाट्य-वैशिष्ट्य से प्रभावित विश्वनाथ भट्टाचार्य तो विजया को भवभूति से अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं ।

---

[1] श्याम शर्मा- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक, पृ.389-391

[2] डॉ.मीरा द्विवेदी- आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार, पृ.3

विक्रमपुर के धानुका ग्राम के सुप्रसिद्ध पण्डितवंश में उत्पन्न मुराभट्ट की पुत्री जयन्ती देवी ने 'आनंदलतिका' नामक रूपक की रचना अपने पति श्रीकृष्णनाथ के साथ मिलकर की थी ।[1] इनका काल 17वीं शती का उत्तरार्द्ध माना जा सकता है । 'आनंदलतिका' पद्य-प्रधान रचना है फिर भी इसमें नाटक की भांति नांदीपाठ, स्थापना, ग्रन्थ एवं ग्रंथकार का परिचय, पात्रों के परस्पर संवाद आदि के होने से इसे पद्य-प्रधान नाटक की कोटि में रखा जा सकता है ।

डॉ. कृष्णमाचार्य ने 'रामाभ्युदय' नाटक का उल्लेख किया है जिसकी रचना शारदादेवी के द्वारा हुई है । कहा जाता है कि उन्होंने 18 अन्य रूपकों की रचना भी की थी किन्तु इनका समय एवं परिचय अज्ञात है ।[2] उपेंद्रपुर निवासी विद्वान् अनंताचार्य की पुत्री त्रिवेणी ने अपने वैधत्य प्राप्ति के पश्चात् अनेक नाटकों की रचना की थी । इनमें प्रमुख हैं रंगाभ्युदय, सम्पत्कुमारविजयम्, रंगराट्समुदयम् तथा तत्वमुद्राभद्रोदयम् आदि । इन सभी सूचनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि संस्कृत नाट्य साहित्य की रचना के क्षेत्र में भी स्त्रियाँ अवश्य उपस्थित थीं ।

1.2.2 महिला रंग-अभिव्यक्ति की जीवित परंपरा

जो प्रदर्शनधर्मी कलाएँ पारंपरिक रूप से सुरक्षित एवं पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती है, उनमें स्त्रियों की उपस्थिति सजीव रूप से विद्यमान थी । स्त्री और पारंपरिक रंगमंचीय कलाओं के संबंध में चित्रा मोहन ने जो बताया है, वह उल्लेखनीय है । चित्रा जी के शब्दों में- "स्त्रियाँ ही एक ऐसा माध्यम है जो अपने प्रकृतिदत्त व्यवहार एवं जिजीविषा के कारण संस्कृति के सभी पक्षों को अपने भीतर समेटे, पीढी-दर-पीढ़ी परंपरा में ढालती चली आयी । ये भी प्रागैतिहासिक साक्ष्य है कि पुरानी भाषा, रीति-रिवाज़, संस्कार अनुष्ठान पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में काफी हद तक जीवित रहे । ऐसा इसलिए हुआ कि सामान्यतः स्त्रियों के जीवन में ही

---

[1] वहीं, पृ.3

[2] M. Krishnamachariar- History of classical Sanskrit Literature, P.394

'आदिम तत्व' अधिक मात्रा में मौजूद रहे हैं जबकि पुरुष अपने कबीले या अपनी जाति के बाहर के समुदाय से अधिकाधिक संपर्क में आने के कारण बाह्य जगत से अधिक प्रभावित होता रहा है । और तो और प्रागैतिहासिक काल के 'मातृसत्ता' युग का प्रभाव आज भी व्याप्त है । आरंभिक अनुष्ठानों और उत्सवों पर स्त्रियों का ही एकाधिकार था जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण आज भी यदा-कदा देखने को मिलता है । सांस्कृतिक जीवन की सहज अभिव्यक्ति के इन रंगमंचीय रूपों को जीवित रखने में महिलाओं की जो भूमिका रही है, वह निश्चित रूप से ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाली है ।"[1]

आधुनिक रंगमंच के विकास एवं वर्तमान स्त्रीवादी विचारों के प्रचार-प्रसार के बहुत पूर्व ही हमारे देश में ऐसी अनेक प्रदर्शनधर्मी कलाएं प्रचलित थीं, जिनमें स्त्रियों की निजी व सजीव उपस्थिति विद्यमान थी । मध्यकाल तक आते-आते बदलती सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और नैतिक धारणाओं के कारण मुख्यधारा के रंगमंच से महिलाएं काफी दूर हो गयी । फिर भी हमारे देश के अन्यान्य प्रदेशों में अपनी स्थानीय विशेषताओं से युक्त ऐसी अनेक स्त्री-प्रस्तुतिपरक लोक-कलाओं की जीवंत परंपरा अक्षुण्ण रहीं, जो मध्यकाल के पुरुष-प्रधान रंगमंच के समानांतर महिला समूहों की अपनी निजी 'स्पेस' में काफी प्रचलित एवं सुरक्षित रही हैं । इसके साथ-साथ कुछ ऐसी शास्त्रधर्मी महिला रंगकलाएं भी हमारे देश में प्रचलित हैं जो मुख्यधारा में काफी लोकप्रिय रही हैं । वास्तव में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक परंपरा के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आने वाली महिला प्रदर्शनधर्मी कलाएं रंगमंच में महिलाओं की सजीव उपस्थिति के तथा उनकी सृजनात्मकता, मौलिकता एवं कला-संस्कार के स्पष्ट प्रमाण हैं ।

[1] डॉ.मीरा द्विवेदी- आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार, पृ.4

पारंपरिक महिला प्रदर्शनधर्मी कलाओं की जीवित परंपरा को अलग-अलग दो धाराओं में विभक्त करके देखा जा सकता है । वे हैं लोकधारा एवं क्लासिकी धारा ।

1.2.2.1 पारंपरिक महिला रंगमंच : लोक धारा

विशिष्ट जनपदीय विश्वास, धर्म, संस्कृति तथा सामूहिक जीवन की संवेदनाओं, भावनाओं एवं रूढ़ियों-परंपराओं की सहज व स्वाभाविक अभिव्यक्ति को सामान्यतः लोक रंगमंच कहा जाता है । वरिष्ठ नाट्यालोचक डॉ.जयदेव तनेजा के शब्दों में "लोक रंगमंच एक नैसर्गिक धारा है जो किसी शास्त्र या नियमों से आबद्ध न होकर, जनसाधारण के जीवन की सहज एवं सृजनात्मक अभिव्यक्ति का संपूर्ण द्योतक होता है । लोक रंगमंच के रंग-रूप और आस्वाद का प्रत्यक्ष संबंध भौगोलिक स्थिति और प्रत्येक क्षेत्र में प्रचलित कथा-प्रसंगों, संस्कारों-व्यवहारों, रुचियों और नृत्त, नृत्य, गीत तथा संगीत के विविध रूपों से होता है । आभिजात्य सौन्दर्य-बोधयुक्त नाट्यधर्मी नाटकों के नाट्य-प्रणेता भरतमुनि ने भी नाट्य की मूल प्रेरणा और उसकी प्रामाणिकता की अंतिम कसौटी लोक-जीवन, लोक-मानस और लोक-धर्म को स्वीकार करके 'लोक' के ही बुनियादी महत्त्व को रेखांकित किया है । वस्तुतः लोक रंगमंच सामान्य जन द्वारा, सामान्य जन के लिए अभिनय-नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत सामान्य जीवन की सहज, स्वाभाविक, अनौपचारिक, नृत्य, गीत और संगीतमय जीवन एवं लोकरंजक अभिव्यक्ति का नाम है ।"[1]

भारत के विभिन्न प्रदेशों में ऐसे अनेक स्त्री-लोक नृत्य तथा स्त्री-लोक-नाट्य प्रचलित हैं जो उत्सवों-त्योहारों में मनोरंजन के रूप में एवं धार्मिक कार्य कलापों में अनुष्ठानों के रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं । इनमें से कुछ प्रमुख नृत्य-रूपों तथा नाट्य-रूपों का परिचय देते हुए उन पर विचार किया जाएगा ।

[1] जयदेव तनेजा- आधुनिक भारतीय नाट्य-विमर्श, पृ.65

1.2.2.1.1 स्त्री लोक-नृत्य

रंगमंच की पहली कलात्मक विधा[1] माने जाने वाला नृत्य हमारे लोक-समाज की रीति-रिवाजों का आवश्यक अंग है। किसान भरी फसल के समय में नृत्त करते हैं, शिकारी अच्छा शिकार पाकर भी नृत्त करते हैं और मछुआरे भरपूर जाल देखकर। प्राचीन काल में नृत्य धर्मानुष्ठान का ही एक रूप था। अभिनय, भावभंगिमाओं, पाद-नृत्त तथा ताल-लय के माध्यम से की जाने वाली आराधना के रूप में नृत्य का प्रचलन रहा था। भारतीय संस्कृति सदैव से नृत्य कला की पोषक रही है तथा अतिप्राचीन काल से ही यहाँ नृत्यों के प्रस्तुतीकरण एवं आस्वादन दोनों ही में स्त्रियों की सजीव उपस्थिति रही। भारत के प्रत्येक प्रदेश में अपनी-अपनी अलग शैलियों में प्रचलित ऐसे अनेक स्त्री-प्रस्तुतिपरक लोक-नृत्यों के चमत्कार से संपन्न धारा शताब्दियों से प्रवाहित होकर विकसित हुई है जो सामान्य वर्ग की स्त्रियों के सामूहिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन से पर्याप्त मात्रा में संबद्ध है।

काश्मीर में प्रचलित लोक-नृत्यों में हफीज़ा तथा राउफ काफी लोकप्रिय है, जिसका प्रस्तुतीकरण मात्र स्त्रियों द्वारा होता है। ब्याह-शादियों में स्त्रियाँ सूफियाना गीत गाती हुई हफीज़ा नृत्य करती हैं। जिसमें वे हल्का-हल्का मुडती और झूमती हैं। राउफ भी एक ऐसा नृत्य है जो निकाहों, मेलों और धान की कटाई के समय किया जाता है। स्त्रियाँ गहरे रंग के भारी फिरन पहनती है और कानों में चांदी के बाले और मुकरियाँ। वे एक दुसरे के गले में बांह डालकर दो पंक्तियाँ बना लेती है और नृत्त करती हैं।

हिमाचल प्रदेश के गाँवों में प्रचलित नृत्य है वाकायंङ्, जोमे तथा घुरैही, जिनका प्रदर्शन मात्र स्त्रियों के द्वारा होता है। वाकायंङ् शब्द में 'वा' का अर्थ है दो। अतः इस नृत्य में महिलाएं दो पंक्तियों में खडी होकर अलग-अलग रूप से नाचती

[1] Kenneth Macgowan, William Metlenitz, Danie- First Art of The Theatre-Stage : A History of the world Theatre, P.8

हैं। एक पंक्ति की स्त्रियाँ नृत्य करती हुई आगे बढ़ती है तो दूसरी पंक्ति की स्त्रियाँ पीछे हटती हैं। इसमें गीत तथा लोक-वाद्यों का प्रयोग भी होता है। इसमें मंद गति का गीत चलता है और उसी मंद गति से यह नृत्य किया जाता है। जोमा एक ऐसा नृत्त है जिसमें स्त्रियाँ घेरा बनाकर नाचती हैं। लोक वाद्यों की लय के साथ एक दूसरे का हाथ थामे नृत्य करती हैं। घुरैही महिलाएं गोल दायरा बनाकर नृत्त करती हैं। दो तीन स्त्रियाँ घुरैही गीत गाती हैं शेष उसे दोहराती हैं। ये गीत धार्मिक, प्रेम विरह से संबंधित होते हैं।

अवध में तल्लुकेदारों, ज़मींदारों एवं रईसों के यहाँ विभिन्न अवसरों पर वेश्याओं के द्वारा नृत्य करने की प्रथा देखने को मिलती है। "पुत्र-जन्म, विवाह व अन्य सामाजिक अवसरों पर पतुरियों का नृत्य जिन्हें बेडिन या कसबिन कहते है, विशेष रूप से प्रचलित है। नटों की भांति इन पतुरियों की भी एक जाति होती है। इनके परिवार की विवाहित कन्या कुलवधुओं के समान ही पर्दे में रहती है किन्तु जो नाचने का पेशा अपना लेती हैं, वह विवाह नहीं करती। आय के साधन के रूप में बहुधा नृत्य का व्यवसाय अपना लेती है वे विवाह तो नहीं करती किन्तु इस प्रयास में रहती हैं कि किसी एक व्यक्ति द्वारा वह सदा के लिए अपना ली जाए। इस क्रिया के बदले वह पर्याप्त राशी प्राप्त करती हैं और जगह-जगह इच्छानुसार घूमकर नाचने की स्वतन्त्रता संबंधित व्यक्ति के हाथों में समर्पित कर देती है।"[1]

मेलों तथा त्यौहारों के अवसर पर किया जाने वाला सबसे लोकप्रिय नृत्य है नाटी। यह हिमाचल प्रदेश के कुल्लू, सिरमौर, शिमला इत्यादि प्रदेशों में प्रचलित है। इसका आरंभ धीमी गति से होता है और बाद में यह द्रुत गति से बढ़ता जाता है। इस नृत्य में ढोलक, करताल, रणसिंधा, बाँसुरी, शहनाई एवं नगाड़े का प्रयोग होता है। इस नृत्य में महिलाएं घर-आँगन में लिपाई कर नर्तन करती हुई खुशी का इजहार करती हैं।

---

[1] रामनरेश त्रिपाठी- कविता कौमुदी, 5वां भाग (ग्राम गीत), भूमिका, पृ.15

छत्तीसगढ़ के स्त्री लोक नृत्यों में प्रमुख है सुवना, जो मुख्य रूप से गोर और डिंडवा जाति की स्त्रियों के बीच प्रचलित है । यह सामूहिक रूप से किया जाने वाले विशेष अनुष्ठान से संबद्ध है । इसका प्रारंभ दिवाली के दिन से होता है तथा समाप्ति अगहन की पूर्णिमा के बाद । इस नृत्य के लिए किसी वाद्ययंत्र की ज़रुरत नहीं होती है । ताली, चूड़ी की खन-खनाहट, टेड़े पैरी की झुनकी ही वाद्य-ध्वनि के रूप में प्रयुक्त होती है । इसमें एक लडकी जो सुग्गी रखती है जो कि शंकर-पार्वती का प्रतीक होती है ।

मध्यप्रदेश के भारिया जनजाति की महिलाओं के बीच प्रचलित मशहूर नृत्य है सौतम । विवाह के अवसर पर रात भर यह नृत्य होता रहता है । ढ़ोलक की गति पर सौतम नृत्य का प्रारंभ होता है । ढ़ोलक वादन के बंद होने पर एक महिला दो पंक्ति का गीत गाती है और बाकी सभी महिलाएँ उसे दुहराती हैं और वाद्यों के साथ नृत्य करती हैं ।

राजस्थान के लोक-नृत्यों में अत्यंत प्रचलित एवं लोकप्रिय नृत्य है घूमर, जिसमें केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं । घूमर का प्रारंभ भील कबीले के लोगों ने किया था, पश्चात् अन्य समुदायों ने भी इसे अपनाया । घूमर नृत्य में महिलाएँ गोल गोल घूमकर नाचती हैं । घूमने के कारण ही इस नृत्य को घूमर नाम मिला है । राजस्थानी महिलाओं के घूमने के साथ-साथ उनके द्वारा पहनी हुई रंग-बिरंगी घाघराओं भी हवा में घूमता है । नृत्य करने वाली इन महिलाओं का चेहरा दुपट्टे से ढंका होता है । यह नृत्य तीज़-त्यौहारों जैसी होली, दुर्गापूजा, नवरात्रि में देवी-पूजा के अवसर पर आयोजित होता है ।

गुजरात का सबसे प्रसिद्ध नृत्य है गरबा । इसमें सौ-सौ स्त्रियाँ एक साथ नाचती हैं । इसकी प्रस्तुति देवी अम्बा की स्तुति में प्रतिवर्ष नवरात्रि के शुभावसर पर होती है । परंपरा के अनुसार नवरात्रि के नौ दिनों तक इस नृत्य की प्रस्तुति होती है । “गरबा का अर्थ है गडवा या पूजा की मटकी । स्त्रियाँ घेरा बाँधकर झोल लेती, मुडती,

हथेलियों से ताल देती और चुटकियाँ बजाती हैं । जब उनके सिर पर मटकी होती है तो वे तेज़ी से झुलकाती नहीं और न ही तालियाँ बजाती हैं, बल्कि सहेज-सहेजकर पग धरती हैं और तनिक-तनिक बाँक देती हैं । साथ-साथ माँ अम्बा की स्तुति गीत भी गाई जाती है ।"[1] गरबा नृत्य करने वालों की पारंपरिक वस्त्र लाल, गुलाबी, पीला, नारंगी इत्यादि रंगों की होती है । इसके साथ-साथ भारी हार, मोटे-मोटे कड़े, करधनी, पायल, लंबे-लंबे झुमके इत्यादि पारंपरिक गहने भी स्त्रियाँ पहनती हैं ।

पंजाब में प्रचलित गिद्धा स्त्रियों का नृत्य है । विवाह-शादियों के अवसर पर गिद्धा का आयोजन होता है । सावन में तीज़ों के त्यौहार पर बाहर पीपल और वट के वृक्षों के नीचे गिद्धा का आयोजन होता है । विवाहिताएं और कन्याएँ दोनों गिद्धा नृत्य में भाग लेती हैं । स्त्रियाँ घेरा बाँधकर गिद्धा नृत्य करती हैं । "बीच-बीच में दो नव यौवनाएं एक-दूसरे के हाथों पर लटकी हुई घूम-घूमकर किकली नाचती है । एक लडकी बूढ़े दुल्हे का स्वाँग भरती है तो उसकी जोडीदारी युवा पत्नी का । एक लडकी साँस बंटी है तो उसकी हमजोली सुघड़ बहू । एक थानेदार तो उसकी साथिन चोर । एक बनिया लाला तो दूसरी तेलिन । खूब हँसी-मज़ाक और नोकझोंक होती है । वे पास से गुज़रते हुए राही को भी छेड़ने से नहीं झिझकतीं और तुरंत बोली बना लेती हैं । वे हँसनी, खिलखिलाती और छलक-छलक पड़ती हैं । गिद्ध में कविता, गीत, नाटकीय हाव-भाव और जगमगाता हुआ उत्साह और नृत्त है ।"[2]

उत्तरप्रदेश की व्रज भूमि की स्त्रियों के द्वारा किया जाने वाला उल्लास और उमंग से भरा नृत्य है चारकुला । इसमें घुंघर पटनी हुई स्त्रियाँ अपने सिर पर चिराग लेकर रास गीत गाती हुई नृत्य करती हैं । इस नृत्य की प्रस्तुति होली के तीसरे दिन होती है, जिस दिन राधा ने जन्म लिया था । इसके साथ-साथ अन्य त्यौहारों के अवसर पर भी इसका प्रस्तुतीकरण होता है ।

---

[1] बलवंत गार्गी- रंगमंच, पृ.

[2] वहीं, पृ.

ओड़ीसा के सांबलपुर में प्रचलित महिला नृत्य रूप है दालकी नृत्य । इसका प्रस्तुतीकरण सामान्यतः ऋतु पर्व में होता है । "यह एक ऐसा ओजस्वी नृत्य है जो विभिन्न किस्म के वाद्यों के साथ प्रस्तुत होता है ।"[1] आन्ध्रप्रदेश का प्रसिद्ध नृत्य है बाथुकम्मा । इसका प्रस्तुतीकरण मात्र स्त्रियों के द्वारा होता है । इस नृत्य का संबंध नवरात्रि के समय मनाया जाने वाला बाथुकम्मा नामक त्यौहार से है । महिलाएँ पारंपरिक वेश भूषा पहनकर सामूहिक रूप से इस नृत्य की प्रस्तुति करती है ।

चूंकि लोक-रंगमंच एवं इसके सभी प्रदर्शनकारी रूप सामुदायिक जीवन पर आधारित होते हैं, इसलिए लोक-नृत्य भी अनिवार्यतः सामूहिक रूप से किये जाते हैं । समस्त लोक-नृत्यों की उत्पत्ति लोक-समाज के सामूहिक अनुभवों से हुई है । जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी सामाजिक अवसरों पर नृत्य का आयोजन लोक-समुदायों के बीच होता है । उदाहरण के लिए ऋतु परिवर्तन, धार्मिक त्योहार, विवाह आदि के अवसर । विशेष अवसरों के अलावा दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद संध्या को मनोरंजन के रूप में भी नृत्य आयोजित किये जाते है । ये नृत्य गीतों तथा वाद्यों की लय-ताल के साथ चलते हैं और इनमें शरीर झूमते हैं और पैर थिरकते हैं ।

स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले ये लोक-नृत्य सरल, सर्वगम्य और सर्व सुलभ होते हैं । ये नृत्य किसी के द्वारा सिखाये नहीं जाते, उन्हें समझने तथा सुधारने के लिए किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता भी नहीं होती है। पुराने संस्कारों तथा अनुकूल वातावरण के कारण ही ये लोक-नृत्य बचपन से ही बालिकाएं सीख जाती हैं । ये प्रत्येक समुदाय की स्त्रियों के श्रम, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन उनकी हँसी-खुशी और हास-विलास के साथ जुड़े हुए होते हैं । स्त्रियाँ अपने दैनिक घरेलू काम-काज की ही भांति अपने विश्राम में भी उसी सृजनात्मक क्रिया शक्ति का प्रयोग करती है । मिट्टी के बर्तन बनाने, टोकरियाँ बुनने, दीवारों की

[1] Usha Mehta- Dance of Hilly Regions, P.116

चित्रकारी में उनकी सृजनात्मक कार्यक्षमता की जो चेतना उपलब्ध होती है, वहीं नाचते हुए शरीर, भुजाओं और पैरों में दीख पड़ती है ।

1.2.2.1.2 स्त्री लोक-नाट्य

भारत के प्रदर्शनधर्मी लोक कलाओं में नाट्य-रूपों का सर्वाधिक महत्त्व है । लोक-नाट्य लोक समाज की जिजीविषा, संकल्पना, भावना, संवेदना तथा ऐतिहासिकता को अभिव्यक्त करते हैं । पारंपरिक रूप से लोक नाट्यों की शैली में सृजनात्मकता सूत्रबद्ध रूप में या शास्त्रीय तरीके से नहीं, अपितु सहजता और स्वाभाविकता के अनुरूप होती है । जीवन के सघन अनुभवों से ही, लोक नाट्य उत्पन्न होती है । उसमें दुःख, सुख, हताशा, घृणा, प्रेम आदि मानवीय संवेदनाएं मौजूद रहती हैं ।

1.2.2.1.2.1 टूँटिया-टूँटकी

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में ब्याह-शादियों के अवसरों पर जो प्रहसन महिलाओं द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं उनमें प्रमुख है टूँटिया-टूँटकी । दूल्हे की बरात जब दुल्हन के घर चली जाती है, तब वरपक्ष की महिलाओं द्वारा वर-वधू की नक़ल के रूप में जो नाट्य प्रदर्शित किया जाता है उसे टूँटिया-टूँटकी कहते हैं । इसमें एक औरत वर तथा दूसरी वधू बनती है तथा इनका नकली विवाह कराया जाता है । इसका उद्देश्य असली वर-वधू को आधि-व्याधि से मुक्त करने का रहता है । “टूँटिये का जुलूस सदर बाज़ार से गुज़रता हुआ किसी संबंधी के वहाँ ले जाया जाता है, जहाँ वधू की खोल भरने की रस्म पूरी की जाती है । इसमें औरतें ही ढ़ोल की जगह फूटा कनस्तर तथा बांकिये की जगह भूँगली बजाती हैं । आते समय भैरूजी के गीत गाये जाते हैं । घर आने पर वर को पूँखने की रस्म पूरी की जाती है और लाड़ी यों घर यो

बर भांगजे" जैसे गीत गाकर वधू को घर की मालकिन के रूप में देखा जाता है ।"[1] इसमें कई गीत गाये जाते हैं । इसकी विषयवस्तु पुत्री-विवाह से संबंधित होती है ।

1.2.2.1.2.2 खोडिया

खोडिया एक ऐसा स्त्री लोक नाट्य है जो महिलाओं को अपने यौवन की अल्हड भावनाओं को बेधड़क होकर अभिनय, नृत्य और अश्लील संवादों के द्वारा अभिव्यक्त कर अपने मन की कुंठाओं को निकालने का अवसर प्रदान करता है । यह महिला लोकनाट्य शादी के अवसर पर औरतों द्वारा वर पक्ष के घर बारात जाने के बाद रात को खेला जाता है । महिलाएँ पूरी रात जागकर खोडिया नाट्य की प्रस्तुति करती हैं । घर और पूरे मोहल्ले के पुरुषों के बारात में चले जाने के कारण औरतें बेधड़क होकर पूरी रात धूम-धाम से नाचती और गाती हुई खोड़िया की प्रस्तुति करती है । खोडिया की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रदर्शक और दर्शक महिलाएँ ही होती हैं । इसमें पुरुषों की उपस्थिति वर्जित होती है । सारे गाँव की महिलाएँ दूल्हे के घर में इकठे होकर इस नाटक की प्रस्तुति करती हैं । इसमें स्त्रियाँ कुछ भी कहने और करने के लिए स्वतंत्र होती हैं । लगभग रात के नौ-दस बजे के आसपास यह खेल आरंभ होता है और इसका श्रीगणेश देवी-देवताओं की स्तुति से होता है । उसके बाद शुरू होता है मनोरंजन का खजाना । दूल्हे की वह बहन जो दूल्हे की आरती करती है, अपने दूल्हे भाई के तेल-बाने वाले कपड़े पहनकर दूल्हा बनती है और दूल्हे की भाभी दुलहन बनती है । खोडिया रूपी नाट्य में वहीं सब क्रियाओं का अभिनय होता है जो वधू पक्ष के घर होता है । कुल मिलाकर वर पक्ष के घर महिलाओं द्वारा छद्म विवाह का अभिनय बड़ी कुशलतापूर्वक किया जाता है । खोडिया में महिलाएँ नकली विवाह के साथ-साथ मनिहारा का नाटक और अन्य स्वाँग भी निकालती हैं । जेसी बावली, शिवजी-पार्वती, बंजारण, फौजण आदि का स्वाँग

---

[1] डॉ.महेंद्र भानावत- अनुवाचन : देवीलाल सामर, लोक नाट्य परंपरा और प्रवृत्तियाँ, पृ.84-85

निकालकर खोडिया को और भी रंगीन बना देती हैं । अंत में औरतें बारात के सकुशल लौटने के लिए मंगल कामनाएँ करती हैं ।

1.2.2.1.2.3 सामा-चकेवा

सामा-चकेवा मिथिला का लोक-त्यौहार है । सामा बहन है और चकेवा भाई । भाई-बहन के उदात्त स्नेह का प्रतीक यह त्यौहार कार्तिक महीने के शुक्ल पक्ष की समाप्ति को आरम्भ होकर कार्तिक के पूर्णमासी को समाप्त होता है । छठ पूजा की समाप्ति के बाद बहनें खेतों से चिकनी मिट्टी लाती है । मिट्टी से विभिन्न आकृतियों की मूर्तियाँ बनायी जाती हैं । इन मूर्तियों को सामा, चकेवा, टिहुली, चुगला, सतभइया, भरिया, खडरिच, मिठाई वाली, खंजन चिड़िया, भमरा, बनतीसर, झांसी कुत्ता, ढोलकिया, वृन्दावन आदि नाम दिया जाता है । मूर्ति बनाने से लेकर विसर्जन तक, सामा के जन्म से विदाई तक की घटना से जुडी कई गीत गयी जाती है । रात्रि-भोजन के बाद महिलाएँ घर के आँगन में एकत्र होती हैं और सामा-चकेवा की प्रस्तुति करती हैं । इसकी विषय-वस्तु सामा के ससुराल जाने के प्रसंग, चुगल खोरी की भर्त्सना, भौजाई द्वारा ननद की अवहेलना तथा भाई का बहन के प्रति समर्पित स्नेह आदि से संबंधित होती है । कार्तिक पूर्णिमा की अर्द्धरात्रि को महिलाएँ गीत गाती हुई नदी में जाती हैं और सामा का विसर्जन करती है । विसर्जन के समय बहन और भाई का कुछ आनुष्ठानिक विधान होता है । वृन्दावन में आग लगाई जाती है । उपस्थित भाई आग बुझाता है ।

1.2.2.1.2.4 झिझिया

झिझिया एक आनुष्ठानिक नृत्य-नाट्य है जिसका प्रस्तुतीकरण मात्र स्त्रियों के द्वारा होता है । झिझिया अनुष्ठान का मिथक वह डायन जोगिन के तंत्र साधना संबंधी विश्वासों से संबंधित है । लोक विशवास के अनुसार डायन-डोगिन वह स्त्री जो तंत्र विद्या सीखती है । नवरात्र तंत्र के समय में साधना की दीक्षा लेती है । उस समय

डायन-डोगिन रात्रि को गाँव से बाहर नग्न नृत्य करती है । ऐसा विशवास है कि वह अपने इष्टदेव की संतुष्टि के लिए शिशुओं की बलि तक देती है । इस स्त्री के तंत्र साधना को निष्फल करने के लिए गाँव की महिलाएँ झिझिया का आयोजन करती है । शारदीय नवरात्र की रात्रि में द्वितीय प्रहार को महिलाएँ, दीपयुक्त घड़ों को सिर पर रखकर ब्रह्मस्थान पहूँचती है । वहाँ पहूँचकर वे गीत गाती हुई नृत्य करती है । दूसरी रात उसी घड़े को लेकर झिझिया के लिए निकल पड़ती है । इस तरह नौ दिन डायन-योगिन की कुदृष्टि से बचने के लिए झिझिया का दस आनुष्ठानिक कार्यव्यापार होता है । नवरात्रि के दसवें दिन दशमी पूजा के बाद अगले वर्ष तक के लिए इसका समापन हो जाता है । झिझिया में कोई स्वाँग प्रस्तुत नहीं होते, फिर भी गीत, नृत्य, संवाद, अभिनय आदि के कारण इसे नाट्यरूप की कोटि में रखा जा सकता है ।

1.2.2.1.2.5 जट-जटिन

जट-जटिन उत्तर बिहार का महिला नाट्य-रूप है । इसमें अभिनय, गायन, नृत्य आदि सब महिलाओं के द्वारा ही होता है । प्रदर्शकों के साथ-साथ दर्शक भी इसमें महिलाएँ ही होती हैं । "इसका आयोजन सावद भादों की शुक्ल रात्रि में बड़ा मनोहारी लगता है । मगनी, विवाह, गौना, श्वसुर, सखी, सहेलियाँ, भाई, भौजाई, ननद आदि पात्रों की अवतारण ने जट-जटिन को एक सुन्दरतम पारिवारिक धरातल प्रदान किया है । दाम्पत्य जीवन के मार्मिक प्रसंग सहज ही ह्रदय को छूने वाले होते हैं । सहगान एवं नृत्य सहित संवाद-गीतों द्वारा उत्सव के उल्लास के लिए उद्दीपन जुटाया जाता है, उत्सव की लालसा और मृत्यु के भय के शाश्वत संयोग का मार्मिक उल्लेख होता है, दाम्पत्य और पारिवारिक जीवन के प्रमुख पात्र-पात्रियों का हल्का सा परिचय होता है तथा उत्सव में भाग लेने के लिए सहेलियों को उलाहनापूर्ण आमंत्रण दिया जाता है ।"[1] महिला रंगाभिव्यक्ति की यह विशिष्ट शैली अपने में अनोखी है ।

[1] जगदीशचन्द्र माथुर- परंपराशील नाट्य, पृ.123

1.2.2.1.2.6 रली

रली हिमाचल प्रदेश की महिलाओं द्वारा चैत्रमास में किया जाने वाला अनुष्ठानपरक नाट्य रूप है । रली में अविवाहित कन्याओं तथा स्त्रियों द्वारा मिट्टी के शिव-पार्वती बनाए तथा पूजे जाते है । रली पूजन की समाप्ति से एक सप्ताह पूर्व मनोरंजक नाट्य की प्रस्तुति की जाती है । लड़कियों में से एक वर और दूसरी वधू के रूप में अभिनय करती है । "रली की गीतात्मकता में प्रश्नोत्तर एवं अभिनय पर्याप्त मात्रा में मिलता है । चैत्र माह के अंतिम चार दिनों से रली-शंकर के विवाह की तैयारियाँ शुरू हो जाती है । लड़कियाँ दो दलों में रली पक्ष और शंकर पक्ष-बटकर विवाह के गीत गाती है तथा अभिनय करती है । अडोस-पड़ोस, नाते-रिश्ते को विवाह में शामिल होने का न्यौता दिया जाता है । खुले आँगन में वैदिक अनुष्ठानों के साथ रली-शंकर का विवाह कराया जाता है । विवाह के दूसरे दिन विदाई की रस्म अदा की जाती है । दो डालों में अलग-अलग रली और शंकर की मूर्तियों को आसीन करके, चढ़ावे की सारी सामग्री को दहेज़ के रूप में रख दिया जाता है । सबसे आगे ढ़ोल, नगाड़ा, शहनाई, करताल बजाते हुए बाजगी चलते है और फिर कहारों के कन्धों पर डोलों में आसानी वर-वधू उसके बाद पूजा करने वाली कन्याओं-स्त्रियों का दल और सबसे अंत में बाराती जुलूस बनाकर नदी की ओर चल पड़ते हैं । नदी तट पर स्त्रियाँ डालों से मूर्तियाँ निकालकर पुरुषों को जल में प्रवाहित करने के लिए दे देती है । इसके साथ ही रली-शंकर विवाह नाटक पूरा हो जाता है ।"[1] अपने वैवाहिक जीवन की स्वस्थता और मन चाहे पति की आकांक्षा के हेतु स्त्रियाँ, इस नाट्य को प्रस्तुत करती है ।

[1] डॉ.नारायणदास पुरोहित- हिमाचली लोक-रंग, पृ.80

1.2.2.1.2.7 कुरवंजी

कुरवंजी एक ऐसी नाट्य संपदा है जो मद्रास के उत्तर नेल्लूर जिले से ओड़ीसा की दक्षिण सीमा तक फैले हुए हैं। प्राचीन काल में द्राविड नाटकों को कुरवंजु कहा जाता था। कुरवंजु 'कुरव' और अंजु दोनों शब्दों से मिलकर बना है। 'कुरव' अथवा 'दक्षिण भारत की एक पहाडी जाति है और 'अंजु' का अर्थ है नृत्य अर्थात् कुरवंजी कुरव जाति का नृत्य है। इसमें पुरुष पात्र शामिल नहीं होते हैं। लगभग छः-सात स्त्रियाँ मिलकर इसका प्रदर्शन करती हैं। इसका प्रस्तुतीकरण मंदिर के खुला प्रांगण या प्रेक्षकों के बीच में खुले स्थान पर होता है। "परंपरागत रूप से 'कत्तियकार' नाट्य की उद्घोषणा करता है। उद्घोषणा के पूर्व गणेश की वन्दना की जाती है तत्पश्चात नायिका अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती है। वह विरहाकुल होती है। 'कुराती' नामक एक कुरव स्त्री आकर उसकी हस्तरेखा देखती है और उसे विश्वास दिलाती है कि उसे नायक की उपलब्धि अवश्य होगी। इसमें नायक कभी मंच पर नहीं आता। केवल गीतों एवं सखियों और कुरवंजी के बीच नायिका के संवादों द्वारा उसका परिचय दिया जाता है।"[1] इसमें हास्य रस का भी समावेश पाया जा सकता है। दक्षिण भारत के महिला नाट्य-रूपों में यह सर्वाधिक प्रचलित है।

उपरोक्त नाट्य रूपों में सामाजिक कुरीतियाँ, दाम्पत्य जीवन के मार्मिक प्रसंग, स्त्री को समाज के भ्रष्ट तत्वों द्वारा अकेली पाकर पथ-भ्रष्ट करने की कुचेष्टा, आजीविका की खोज में विदेश गए पति की याद में तड़पती पत्नी की विरह वेदना आदि प्रसंगों की मौलिक अभिव्यक्ति होती है। विवाहोत्सवों पर आयोजित महिला नाट्य रूपों में स्त्रियाँ अपने वैवाहिक जीवन एवं प्रथाओं- सगाई, बधाई, बारात, घोडी, विदाई, फेरे वर पक्ष पर कटाक्ष तथा गालियों आदि का अभिनय करती हैं। इन नाट्य रूपों के प्रदर्शन के समय स्त्रियाँ कुछ भी कहने और करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती हैं। उनके लिए ये ऐसे मंच होते हैं, जिनमें वे अपनी कामुक भावनाओं

---

[1] डॉ.श्याम परमार- लोकरंग, पृ.333

तथा कुंठाओं को बेधड़क होकर अभिव्यक्त कर सकती हैं । उसके साथ ही अपने जीवन संघर्ष तथा अपने ही समाज की रूढ़ियों तथा कुरीतियों के प्रति आलोचना एवं विद्रोह व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्त करती है । इस प्रकार व्यवस्था के प्रति वे प्रतिरोध करती हैं ।

प्रायः स्त्री लोक नाट्य ऐसे 'स्पेस' में प्रदर्शित होते हैं जो बिलकुल स्त्रियों के अपने निजी स्पेस होते हैं । इनमें प्रदर्शक एवं प्रेक्षक दोनों स्त्रियाँ ही होती हैं । विभिन्न प्रकार की रूढ़ियों के बंधन से ग्रस्त स्त्रियों के लिए घर के बाहर जाना, रात के समय नाचना-गाना, ऊंची आवाज़ में बोलना आदि में कई प्रकार के प्रतिबन्ध थे । ऐसी अवस्था में स्त्रियों के लिए नाट्य प्रस्तुतियों का यह निजी खुला 'स्पेस' तथा रात का काल जो उनके लिए प्रतिबंधित है, ऐसी संभावनाएं प्रदान करती हैं, जहां वे अपने आपको निस्संकोच अभिव्यक्त कर सकती हैं । इस प्रकार प्रतिबंधित स्थल एवं काल अपने आप में प्रतिरोध का माध्यम बन जाता है ।

शारीरिक अंगों की मुक्त गतिशीलता इन महिला नाट्य रूपों की अपनी विशेषता होती है । इनमें स्त्रियाँ बिना संकोच, अपनी सहज स्वाभाविक शैली में अपनी देह को, प्रस्तुति पूर्ति प्रयोग करती हैं । प्रस्तुतीकरण के समय में प्रेक्षक तथा प्रदर्शक दोनों के बीच का अंतर गायब हो जाता है तथा दोनों मिलकर तालियाँ बजाती हैं, गीत गाती हैं और नृत्य करती हुई सामूहिक रूप से नाट्य में शामिल जाती हैं । इन स्त्री-प्रकृतिपरक रूप-संरचना ने अथवा प्रस्तुतीकरण पक्ष ने विशेष रूप से शास्त्रीय रंग कलाओं को भी प्रभावित किया है ।

1.2.2.2 पारंपरिक महिला रंगमंच : क्लासिकी धारा

विशिष्ट मंच व्यवस्था, विख्यात एवं सुगठित कथावस्तु, शैलीबद्ध अभिनय पद्धति, प्रशिक्षण प्राप्त अभिनेता, शास्त्रोक्त हस्तमुद्राएं, गति-गमन एवं संवाद शैली, निश्चित वेश-भूषा, रंग-सज्जा तथा आस्वादन के लिए सुसज्जित प्रेक्षक वर्ग आदि विशेषताओं से संपन्न नियमबद्ध तथा रूपाधारित दृश्य संरचना को सामान्यतः

क्लासिकी रंगमंच कहा जाता है । क्लासिकी रंगमंच मूलतः नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में निर्धारित नियमों पर आधारित होता है । भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें संपूर्ण रंगमंच की अवधारणाएं समाहित हैं । नाट्यशास्त्र में निरूपित अभिनय कला का प्रमुख तत्व 'नाट्यधर्मी' अभिनय पद्धति है, वहीं क्लासिकी रंगमंच का मूलाधार है । नाट्यधर्मी के पीछे की मूल मान्यता यह है कि जो वस्तु संसार में जैसी है, उसे हू-ब-हू मंच पर वैसा ही नहीं दिखाया जाना चाहिए । मंच पर विशिष्ट शैली के द्वारा उसका पुनर्निर्माण किया जाता है या उसकी प्रतीति उत्पन्न की जाती है । इसके लिए भरतमुनि ने विभिन्न करणों, अंगहारों, गतियों एवं मुद्राओं तथा आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहारी अभिनय संप्रदायों का निरूपण किया है, जिनको स्वीकार करते हुए ही क्लासिकी रंगमंच का रूपायन हुआ है ।

जिस प्रकार पारंपरिक रंगमंच की लोक-धारा में महिला अभिव्यक्ति की जो बहुरंगी चेतना समाविष्ट है, उसी प्रकार शैलीबद्ध रंग अभिव्यक्ति की शास्त्रधर्मी परंपरा में भी स्त्रियों की सृजनात्मक क्षमता का दिग्दर्शन होता है । आलोच्य धारा की स्त्री-प्रस्तुतिपरक कलाएं दो प्रकार की होती हैं ।

1. स्त्रियों के द्वारा प्रदर्शित शास्त्रीय नृत्य रूप, जिनमें देवदासी परंपरा से विकसित नृत्य शैलियाँ तथा राज-दरबारों में स्वतंत्र रूप से पल्लवित नृत्य-शैलियाँ (जो आज भी प्रचलित है) प्रमुख है ।
2. स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत शास्त्रीय नाट्य-रूप, जो प्राचीन संस्कृत रंगमंच का एकमात्र जीवित अवशेष माना जाता है ।

1.2.2.2.1 क्लासिकी स्त्री-नृत्य

क्लासिकी नृत्यों की समुज्ज्वल परंपरा सदियों से भारत में विद्यमान रही है, जिनका किसी न किसी रूप में नाट्यशास्त्र से संबंध भी है । इनमें देवदासी नृत्य शैली से विकसित महिला नृत्य रूपों का अपना अलग स्थान है । तमिलनाडू के भरतनाट्यम् तथा ओड़ीसा के ओडीसी नृत्य को संपूर्ण दक्षिण भारत में प्रचलित जो

दासियाट्टम् (देवदासी नृत्य) था, उससे विकसित शैली विशेष माना गया है । कुछ विद्वान केरल के मोहिनियाट्टम् को भी इसी कोटि में रखते हैं । इसके साथ-साथ उत्तर भारत का कथक, असम का सत्रिय आदि कुछ ऐसी नृत्य-शैलियाँ भी प्रचलित हैं जो पुराने ज़माने में मात्र पुरुषों के द्वारा प्रस्तुत होते थे, बाद में जिनका पुनरुद्धान हुआ तथा आजकल स्त्रियाँ व्यापक रूप में इनका प्रदर्शन करती आ रही हैं ।

1.2.2.2.1.1 मोहिनियाट्टम्

मोहिनियाट्टम् केरल का एक लोकप्रिय शास्त्रीय नृत्य रूप है जिसका प्रदर्शन स्त्रियों के द्वारा होता है । प्राचीन समय में केरल में प्रचलित 'तेवटियाट्टम्' (देवदासी नृत्य) से विकसित मानी जाने वाली इस नृत्य शैली को 16 वीं सदी में 'मोहिनियाट्टम्' का नाम प्राप्त हुआ था । यद्यपि इसमें अधिकांशतः भरत द्वारा वर्णित कला का ही प्रयोग होता है, किन्तु उसको स्वयं अपनी शैली, कौशल, अभिव्यक्तियाँ आदि से मिलकर अन्य केरलीय कलाओं के सम्मिश्रण से मनोरम बना लिया गया है । ऐसा माना जाता है कि केरल के प्रसिद्ध राजा स्वातितिरुनाल के समय में ही यह नृत्य कला नए रूप में विकसित हुई थी । उन्होंने देश के विभिन्न प्रदेशों से नृत्यांगनाओं को आमंत्रित करके तथा उनको अपने महल में रखकर मोहिनियाट्टम् सीखने की सुविधा प्रदान की थी । साथ ही उन्होंने खुद कई ऐसे 'पदों' की रचना की जो मोहिनियाट्टम् में प्रयुक्त हुईं । स्वाति तिरुनाल के समय के पश्चात् वर्षों तक यह कला लगभग समाप्त सी हो गयी थी । बाद में महाकवि वल्लत्तोल ने 'केरल कलामंडलम्' नामक कला प्रशिक्षण संस्था की स्थापना कर तथा श्रीमती कल्याणी अम्मा के सहयोग से इस नृत्य रूप का पुनरुद्धान किया ।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में निरूपित कैशिकी शैली से इस नृत्य रूप की बहुत समता है । मृदु अंगहारों से युक्त कैशिकी वृत्ति के अंगविक्षेप बिलकुल लास्य प्रधान होता है । इसमें नर्तकी के हाथ-पैर तथा शरीर के सभी अंग मृदु-मंद गति से चलते हैं । भाव के अनुकूल शारीरिक अंगों की मृदुल गति, अंग विक्षेप, उसी के

अनुरूप पैरों की गति तथा गीत के भाव के अनुसार अभिनय में कोमलता का होना आवश्यक है । इसके गीत मुख्यतः श्रृंगार रस से भरे होते हैं । श्रृंगार के दोनों पक्षों- संयोग एवं वियोग का वर्णन इसमें होता है । जयदेव कवि के गीत गोविन्द के गीत भी इसमें गाये जाते हैं । प्रायः इसके गीत वर्णनात्मक एवं रागबद्ध होते हैं जिनमें प्रेम की पीड़ा, निराशा, विरह, मिलन आदि का वर्णन होता है और जिसे नर्तकी अत्यंत भावपूर्ण और व्यंजनापूर्ण मुख-मुद्रा से व्यक्त करती चलती है । इसमें प्रत्येक रस या भाव के लिए उचित गति और ताल निर्धारित हैं इसलिए इस पर प्रवीणता प्राप्त करने के लिए कठिन प्रयत्न तथा अभ्यास की ज़रुरत है ।

1.2.2.2.1.2 भरतनाट्यम्

भरतनाट्यम् जो संभवतः भारत के शास्त्रीय नृत्यों में सबसे प्राचीन और मौलिक नृत्य रूप है, हम तक देवदासियों द्वारा पहुँचा है । ऐसा माना जाता है कि वर्तमान भरतनाट्यम् आंध्रा से दक्षिण भारत में फैला और तंजावूर में राजाश्रृत होकर पल्लवित हुआ । इसका कारण यह बताया जाता है कि उसका अधिकांश साहित्य तेलुन्गु भाषा में है और 'वर्ण', 'पद', और 'शब्द' के लिए गीत भी तेलुन्गु भाषा में ही है, और तंजावूर की राजसभा में प्रसिद्ध नर्तकियां भी तेलुन्गु स्त्रियाँ ही थीं । कुछ भी हो किन्तु इस नाट्य कला के विकास का श्रेय तंजावूर राजसभा के चार नट्टवन बंधुओं को है – चिन्निया, पुन्निया, शिवानन्दम् और वडिवेलु । आधुनिक काल में भी ही इस नृत्य रूप को 'भरतनाट्यम्' नाम मिला , उसके पहले यह 'सदिराट्टम' नाम से जाने जाते थे । आधुनिक युग में 'सदिराट्टम' को भरतनाट्यम् के रूप में परिष्कृत करने का श्रेय श्रीमती रुकमणी देवी अरुंडेल को है । उनके साथ-साथ बालसरस्वती, पद्मा सुब्रह्मण्यम आदि प्रतिभा धनी कलाकारों के हाथों पड़कर यह नृत्य रूप नयी शैली तथा नया रूप लेकर सारे देश में फ़ैल गयी । भरतनाट्यम् का रंगपटल बहुत विस्तृत होता है, जबकि प्रस्तुतीकरण में नियमित ढाँचे का अनुकरण भी आ जाता है । सबसे पहले यहाँ स्तुति-गान होता है । पहला नृत्य एकक अलारिपु है, जो ध्वनि अक्षरों के

पठन के साथ शुद्ध नृत्य संयोजन का एक अमूर्त खंड है । अगला एकक जतिस्वरम्, जो कर्नाटक संगीत के किसी राग के संगीतात्मक स्वरों के साथ प्रस्तुत किया जाता है ।

'जतिस्वरम्' का अनुसरण 'शब्दम्' द्वारा किया जाता है । 'शब्दम्' के बाद नर्तकी 'वर्णम्' प्रस्तुत करती है । वर्णम् भरतनाट्यम् की एक महत्वपूर्ण रचना है जिसमें इस शास्त्रीय नृत्य-रूप के तत्व का सारांश और नृत्य तथा नृत्त दोनों का सम्मिश्रण होता है । यहाँ नर्तकी दो गतियों में जटिल लयात्मक नमूने प्रस्तुत करती है, जो लय के ऊपर नियंत्रण को दर्शाते हैं और उसके बाद साहित्य की पंक्तियों को विभिन्न तरीकों से प्रदर्शित करती हैं । वर्णम् नृत्य कलाकार की अंतहीन रचनात्मकता का प्रतिबिम्ब होता है । इसके बाद नर्तकी मनोवृत्तियों की विविधता को अभिव्यक्त करने वाले एकक-अभिनय को प्रस्तुत करती है । भरतनाट्यम प्रस्तुतीकरण का अंत 'तिल्लाना' के साथ होता है । अंत में 'मंगलम्' भी होता है जो भगवान से आशीर्वचन मांगने के रूप में होता है ।

1.2.2.2.1.3 ओडीसी

ओडीसी नृत्य को पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर सबसे पुराना जीवित शास्त्रीय नृत्य रूपों में से एक माना जाता है, जिसे कई विद्वान् लगभग दो हज़ार वर्ष प्राचीन बताते हैं । ओडीसी नृत्य का उल्लेख शिला लेखों में मिलता है, इसके अधिकाँश अंग भरतमुनि के नाट्यशास्त्र और बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अभिनय-चन्द्रिका' पर आधारित है । उडीसी ही एक ऐसा नृत्य है जिसमें नाट्यशास्त्र निरूपित एक सौ आठ करणों का प्रयोग होता है । यह एक ऐसा लास्य प्रधान शास्त्रीय नृत्य है जिसमें उड़ीसा के परिवेश तथा इसके सर्वाधिक लोकप्रिय देवता भगवान जगन्नाथ की महिमा का वर्णन होता है। साथ ही यह नृत्य विशेष रूप से कृष्ण तथा राधा के दिव्य-प्रेम पर आधारित होता है जो जयदेव की गीतगोविन्द रचना से प्रेरित है । भावप्रवणता और रागात्मकता इस नृत्य की अपनी विशेषता है ।

1.2.2.2.1.4 कथक

कथक शब्द की उत्पत्ति कथा शब्द से हुई है । कथाकार या कहानी सुनाने वाले वह लोग होते हैं, जो प्रायः दन्तकथाओं, पौराणिक कथाओं और महाकाव्यों की उपकथाओं के विस्तृत आधार पर कहानियों का वर्णन करते हैं । इसकी शुरुआत मौखिक परंपरा के रूप में हुई है । कथन को ज़्यादा प्रभावशाली बनाने के लिए इसमें अभिनय और मुद्राएं कदाचिद् बाद में जोड़ी गयी । इस प्रकार वर्णनात्मक नृत्य के एक सरल रूप का विकास हुआ और यह हमें आज कथक के रूप में दिखाई देने वाले इस नृत्य के विकास के कारणों को भी उपलब्ध कराता है । "मुगलों के आगमन के साथ इस नृत्य को एक नया प्रोत्साहन मिला । मंदिर के आँगन से लेकर महल के दरबार तक एक परिवर्तन ने अपना स्थान बनाया, जिसके कारण प्रस्तुतीकरण में अनिवार्य परिवर्तन आये । 19 वीं सदी में अवध के शुद्ध नृत्य क्रम प्रस्तुत किये जाते हैं । इसमें निर्दिष्ट लयात्मक भंगिमाओं और शरीर की गतिविधियों का अनुसरण किया जाता है, जो परंपरागत रूप से अनुसरणीय होते हैं । मणिपुरी अभिनय में मुखाभिने को बहुत ज़्यादा महत्त्व नहीं दिखाया जाता- चेहरे के भाव स्वाभाविक होते हैं और अतिरंजित नहीं होते । सर्वांगाभिनय या संपूर्ण शरीर का उपयोग एक निश्चित रस को संप्रेषित करने के लिए किया जाता है, यह इसकी विशेषता है । इसमें हरकतें वृत्तीय और सतत होती है और ये एक दुसरे से मिलती जाती है । मुद्राएं तथा हस्त-भंगिमाएँ समग्र हरकतों के प्रवाह में सूक्ष्मता से लीन हो जाती हैं ।"[1]

1.2.2.2.1.5 सत्रिय नृत्य

सत्रिय नृत्य असम की एक विशिष्ट शैलीकृत नृत्य रूप है । यह नृत्य 15 वीं शताब्दी के बाद के वर्षों में विकसित हुआ । और लगभग पाँच सौ वर्षों से सत्रों में फलता-फूलता रहा । यह मूलतः भक्ति-प्रधान नृत्य है । प्रारंभिक काल में यह पुरुषों

[1] कथक नृत्य, सांस्कृतिक एवं प्रशिक्षण केंद्र, ccrtindia.gov.in

के द्वारा ही किया जाता था । धीरे-धीरे स्त्रियों का भी इस क्षेत्र में प्रवेश होने लगी । धार्मिक अनुष्ठानों और उत्सवों के अवसर पर प्रस्तुत किया जाने वाला यह नृत्य वैष्णव भक्ति का माध्यम रहा है । "सत्रिय नृत्य में 'सत्रिय' शब्द असम के सांस्कृतिक जन-जीवन और असमिया भाषा का है, जिसका अर्थ है वैष्णव धर्म के केंद्र स्थान से संबंधित । सत्रिय नृत्य में नृत्र, नाट्य, तत्वधर्मी, नाट्यधर्मी, लास्यधर्मी इत्यादि सभी वैशिष्ट्य देखा जाता है । शास्त्रीय तथा पारंपरिक हस्त, दर, शिरभेद, दृष्टि, ग्रीवा तथा सभी प्रकार के अंग-प्रत्यंग और उपांग का प्रयोग सत्रिय नृत्य में हैं । सत्रिय नृत्य का अपना एक संरचनात्मक व्याकरण है जो माटी अखाड़ा (मूल धर्म चर्या) से जाना जाता है तथा जो नृत्य और भंगिमाओं का संयोजन है । सत्रिय नृत्य में लगभग 64 माटी अखाड़ा है । यह पुरुष भंगी (पुरुष जातीय शैली) और प्रकृति (स्त्री जातीय शैली) में विभाजित है ।"[1] शास्त्रीय और देशज दोनों तत्वों का अनुसरण करनेवाला यह नृत्यमूलतः है नाट्यशास्त्र पर भी अधिष्ठित है ।

1.2.2.2.2 क्लासिकी स्त्री-नाट्य

संस्कृत नाटक तथा रंगमंच के इतिहास में केरल का अपना अलग स्थान है । "भारतीय नाट्य-विद्या तथा रंगमंच की परंपरा को अक्षुण्ण रूप से बनाए रखने में केरल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । यहाँ अति प्राचीन काल से ही संस्कृत नाटकों के मंचन की एक शास्त्रीय परंपरा प्रचलित रही है जिसका संबंध भारत की प्राचीनतम नाट्य-विद्या तथा रंग-दर्शन से रहा है । आज मात्र केरल में बची हुई इस प्राचीन संस्कृत नाट्य शैली का नाम है 'कूटियाट्टम्', जो वास्तव में एक ज़माने में भारतवर्ष के कोने-कोने में परिव्याप्त प्राचीनतम संस्कृत रंगमंच का एकमात्र जीवित प्रतिनिधि है ।"[2] कूटियाट्टम् रंग शैली की यही विशेषता है कि इसके प्रस्तुतीकरण में पुरुषों तथा स्त्रियों के समान अधिकार होते हैं ।

---

[1] रत्नेश कुमार- सत्रिय नृत्य, संगना, अक्तूबर दिसंबर 2013

[2] पी.के.वेणु- संस्कृत रंगमंच और कूटियाट्टम्, केरल की सांस्कृतिक विरासत, सं. डॉ.के.गोपीनाथन पृ.

1.2.2.2.2.1 कूटियाट्टम् और नंङियारकूत्त्

केरल का कूटियाट्टम् नामक शास्त्रीय रंगशैली संस्कृत रंगमंच का केरलीय शैली-विशेष है । ऐतिहासिक सामग्रियों के आधार पर विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन काल में भारत के कोने-कोने में संस्कृत रंगमंच की अलग-अलग शैली प्रचलित थी । केरल का कूटियाट्टम् भी उसी परंपरा में आने वाली है । इसकी प्राचीनता, शास्त्रीयता, रूढ़ियाँ, अभिनय-शैली, रंग-मंडप आदि अनेक तत्व इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं । मंदिरों के पवित्र स्थान पर अनुष्ठान के रूप में इसका प्रस्तुतीकरण होता है । चाक्यार-नांबियार नामक विशिष्ट जाति के लोग इसके प्रस्तुतीकरण के अधिकारी होते हैं । इसमें स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियों के द्वारा ही निभाई जाती है । नांबियार जाति की स्त्रियाँ जो 'नंङियार' कही जाती है, स्त्री पात्रों की भूमिका निभाती हैं । इसके साथ-साथ 'मिषा़व' (कूटियाट्टम् का प्रयुक्त वाद्य) के साथ कर-ताल बजाना भी स्त्रियों का कर्तव्य होता है ।

कूटियाट्टम् की विभिन्न अभिनय शैलियों में एक है 'निर्वहणम' (नाटक के किसी पात्र की पूर्वकथा का अभिनय), जिसे स्वतंत्र रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है । सवतंत्र रूप से प्रयुक्त करने वाली इस विशिष्ट शैली को नंङियारकूत्त् कहा जाता है, जो मात्र स्त्रियों के द्वारा प्रदर्शित एकल अभिनय रूप है । इसमें कृष्ण की कथाओं का सात्विक, आंगिक, आहारी अभिनय शैलियों के सहारे अभिनय होता है । यह स्त्रियों के लिए एक ऐसा 'स्पेस' होता है जहां वे अपनी अभिनय प्रतिभा को पूरी तरह प्रकट कर सकती है ।

1.2.3 आधुनिक रंगमंच में महिलाओं की उपस्थिति

यह जानना और बताना असल में कठिन होता है कि पारंपरिक रंगमंच से भिन्न आधुनिक भारतीय रंगमंच का प्रारंभ कब और कहाँ हुआ, पर यह जानकारी तो अवश्य मिल सकती है कि इस फसल के लिए नई भूमि को तलाशने का काम कैसे

हुआ । "यूं तो नागरिक रंगमंच का श्रीगणेश नवंबर 1765 में रूसी नाट्य-प्रेमी हेरासिम लेबेड़ेफ़ और बंगला के उत्साही रंगकर्मी गोलोकनाथ दास द्वारा प्रस्तुत अंग्रेज़ी के दो हास्य-प्रधान नाटकों 'डिसगाइज़' तथा 'लब इज़ द बेस्ट डॉक्टर' के बंगला प्रस्तुतीकरणों के रूप में ही हो गया था, परन्तु दुर्भाग्यवश इस प्रथम सफल प्रयास की कोई परंपरा नहीं बन पायी और आगामी लगभग चालीस-पचास वर्षों तक इस दिशा में कुछ भी नहीं किया जा सका ।"[1]

इसके कई साल बाद 19 वीं सदी में ही भारत की प्रमुख प्रादेशिक भाषाओं में रंगमंच का निर्माण हुआ । उन्नीसवीं सदी में एक भिन्न राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व्यवस्था के आगमन ने भारतीय रंगमंच को प्रभावित किया । औपनिवेशिक काल में रंगमंच में प्रोसीनियम और शेक्सपियर के परिचय से एक नितांत भिन्न रंगमंच का रूपायन भारत में हुआ जिससे नाट्य प्रस्तुति और देखने की एक नयी शैली प्रचलन में आई । नाटक देखने का शुल्क लगने लगा, तथा वह एक प्रोफशन भी बन गया । रंगमंच अब सामुदायिक नहीं था, जिसमें दर्शक और अभिनेता एक ही समुदाय के अंग थे ।

आधुनिक रंगमंच के प्रारंभिक दौर में रंगमंच के क्षेत्र में महिलाओं की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । उस ज़माने में महिलाओं का रंगमंच में काम करना निंदनीय समझा जाता था । प्रायः सभी समुदायों में ऐसा विशवास विद्यमान था कि असली स्त्रियों की रंगमंच में उपस्थिति नैतिक मूल्यों की खुचराव एवं भ्रष्ट आचरण को बढ़ावा देने में सहायक होंगी । जनमानस में यह भावना गहरी पैठ बनाए हुई थी कि रंगमंच में भले घरों की स्त्रियों का अभिनय करना न सिर्फ अशोभनीय है बल्कि इससे घर के कार्यों के प्रति उपेक्षा एवं अवहेलना के भाव भी उत्पन्न होंगे । हालांकि इस समय तक कुलीन परिवारों के लड़कों का भी अभिनय करना शर्मिन्दगी का कारण माना जाता था । लड़कियों द्वारा अभिनय तो बहुत दूर की बात थी । इस

[1] जयदेव तनेजा- आधुनिक भारतीय रंगलोक, पृ.13-14

कारण से निर्देशक, अभिनेता, थियटर ओनर्स आदि रंगमंच से जुड़ने वाले सभी लोगों ने व्यावसायिक रंग कंपनियों में असली महिलाओं को मंच पर उपस्थित करने से रोका । इसलिए किसी मोहक काबिली सुरीली आवाज़ के आदमी को ही स्त्री की भूमिका निभानी पड़ती थी ।

उस समय में संस्कृति, सभ्यता एवं परंपरा के नाम पर स्त्रियों की स्वतंत्रता को रोकने में कई लोग सक्रिय थे । रंगमंच के क्षेत्र में भी ऐसे रूढ़िवादी विचारों का प्रभाव प्रबल था । स्त्रियों के रंगमंच में अभिनय को लेकर अपने विचार रखते हुए 'चाँद' पत्रिका (1921) में प्रकाशित लेख "गृह पत्नी या कला देवी" में रामकृष्ण ने कहा कि- "क्या हमारी गृहणियाँ अभिनेत्री बनकर गृहस्थ, गौरव और दाम्पत्य के उत्तरदायित्व को उसी खुशी और तत्परता से वहन कर सकती हैं जो एक गैर अभिनेत्री के लिए संभव है ? हमारा प्रश्न यहीं समाप्त नहीं होता, इसमें दाम्पत्य जीवन की पवित्रता और पारिवारिक जिम्मेदारियों से भी बड़ी सांस्कृतिक निर्मलता का प्रश्न है ।"[1]

श्री ब्रजमोहन वर्मा के मत में- "रंगमंच पर स्त्रियों को स्थान दिलाने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या रंगमंच पर भले घर की ललनाओं का उतरना वांछनीय है ? कला की दृष्टि से मैं पहले ही स्वीकार कर चुका हूँ कि स्त्री की भूमिका स्त्री के द्वारा किया जाना निश्चय ही वांछनीय है । परन्तु क्या सदाचार, नैतिकता और चरित्र गठन आदि की दृष्टि से हमारी लड़कियों का नाटक कला में अभिनय करना वांछनीय एवं उचित है ? क्या रंगमंच पर ना थिरकने से ही हमारी देवियों की शक्तियाँ अविकसित होकर नष्ट हो रही है ? क्या थियटर में ही नाच कर स्त्रियों की शक्ति के अपव्यय को रोका जा सकता है ? संसार की कितनी महान स्त्रियों ने नाटक में अभिनय करके अपना विकास किया है ?"[2]

---

[1] रामकृष्ण- गृह पत्नी का कलादेवी, चाँद, अप्रैल 1940, पृ.103

[2] ब्रजमोहन वर्मा- रंगमंच और स्त्रियाँ, माधुरी, अक्तूबर 1931, पृ.6

सन् 1891 में आल्फ्रेड कंपनी नामक नाट्य मंडली का प्रबंधक सोहरा ओगरा ने भी स्त्री द्वारा रंगमंच पर अभिनय किए जाने का विरोध किया था । यहाँ तक कि उन्होंने कभी भी अपनी पत्नी या बच्चों को नाटक देखने आने की अनुमति नहीं दी । सन् 1933 में उनकी मृत्यु होने तक कंपनी में अभिनेत्रियों का प्रवेश प्रतिबंधित रहा । नाटक को नैतिक उत्थान का माध्यम मानने वाला प्रमुख समाज-सुधारक था के.एन. काबरा (1842-1904) । सन् 1868 में उन्होंने एक नाटक क्लब की स्थापना की जो आगे चलकर सुप्रसिद्ध विक्टोरिया थियट्रिकल कंपनी में परिवर्तित हो गयी । उन्होंने एक अन्य नाटक कंपनी की भी स्थापना की । यह कंपनी उस समय के अभिनेता एवं कंपनी मालिक दादी पटेल के उस निर्णय के विरोध में खोली गयी थीं, जिसमें उन्होंने विक्टोरिया कंपनी के नाटकों में महिलाओं को अभिनय करने की अनुमति दी थी ।

1.2.3.1 स्त्री की भूमिका में पुरुष

उन्नीसवीं सदी में प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं के रंगमंच में स्त्रियों की भूमिका पुरुष कलाकारों के द्वारा निभाई जाती थी । आधुनिक हिन्दी का पहला अभिनीत नाटक शीतलाप्रसाद त्रिपाठी का 'जानकी मंगल' माना गया है, जो सन् 1818 में काशी में खेला गया था । इसमें स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुषों के द्वारा ही निभाई गयी थी । शकुन्तला की भूमिका में अभिनय करने के लिए प्रतापनारायाण मिश्र जी का अपने पिता से मूंछ मुडाने के लिए आज्ञा माँगना प्रसिद्ध घटना थी । झाँसी का गंगाधर राव, बाबू देवेन्द्रनाथ, महाराष्ट्र का बलवंत मराठे, बाल गन्धर्व, जयशंकर सुन्दरी, पुरुषोत्तम नायक, ओच्चिरा वेलुक्कुट्टी, मास्टर निस्सार, ननूराम मारवाडे, धनजी शाह, शंकर राव, फूलचंद, चंपालाल, मास्टर नर्मदा, मास्टर भोले शंकर, फ़िदा हुसैन, खोमराज मारवाड़ी, अमीरीदीन आदि के नाम प्रमुख हैं, जिन्होंने स्त्री पात्रों की भूमिका सफलता से निभाई थी ।

स्त्री पात्रों की भूमिका सफलता से निभाने वाला और एक प्रमुख अभिनेता था, कलकत्ता का जयशंकर सुन्दरी । मात्र नौ वर्ष की आयु में दादा भाई रतन जी ढूँढी

की ठनठनिया नाटक मण्डली में उनका प्रवेश हुआ था । उनकी शुरुआती तालिम कलकत्ता की इसी मंडली के साथ शुरू हुई । ग्यारह वर्ष की उम्र में वे बापुलाल नायक की नाटक मंडली में शामिल हुए और 'ओथलो' के मुक्त रूपांतर 'सौभाग्य सुन्दरी' में सुन्दरी नामक स्त्री पात्र की भूमिका करके रंगमंच पर अपने को स्थापित किया । उनकी यह भूमिका इतनी प्रभावी रही कि 'सुन्दरी' शब्द सदा के लिए उनके नाम के साथ जुड़ गया ।[1]

पारसी थियटर तथा अन्य रंग मंडलियों में स्त्री पात्रों की भूमिका निभाने के लिए लड़कों की नियुक्ति की जाती थी और उनको अभिनय प्रशिक्षण भी दिया जाता था । किसी भी अभिनेता का अभिनय उसकी प्रारंभिक भूमिका के द्वारा तय होता था । सबसे पहले उन्हें नायिका की सखी-सहेली या अन्तरंग मित्र की भूमिका दी जाती थी । उनमें से कुछ अभिनेता सभी भूमिकाएँ जैसे नायक, नायिका, विदूषक आदि निभाया करते थे ।

प्रमुख नाट्य विचारक कैथारिन हैनसन ने पारसी रंगमंच से संबंधित अपने अध्ययनों में इस तथ्य को रेखांकित किया है कि स्त्री पात्र की भूमिका अदा कर रहे पुरुषों ने स्त्रियों के लिए उस स्थान (space) को बनाया जहां से वे स्वयं को इस दुनिया में शामिल कर सकें । यह एक प्रकार से राष्ट्रवादी धाराओं द्वारा राष्ट्रवाद के विमर्श के भारतीय स्त्री के रूप में प्रस्तुत की जा रही 'आर्य समाजी महिला' की छवि से बहुत हद तक अलग छवि थी । पश्चिमी भारत के रंगमंच के विकास का इतिहास इस दृष्टि से ज़्यादा पारदर्शी है, जहां पूरे उपनिवेश-काल के दौरान स्त्री-पात्र की भूमिकाओं का निर्वाह अन्य लोगों द्वारा किया जाता रहा । इसका उल्लेख हमें लिखित अभिलेखों जैसे पत्रिकाओं, संस्मरणों तथा जीवनवृत्तों से प्राप्त होता है ।[2]

---

[1] जयदेव तनेजा- कुछ आँसू कुछ फूल, अनु. दिनेश खन्ना, पृ.14

[2]सुप्रिया पाठक- स्त्रियाँ एवं रंगमंच : पारसी रंगमंच से नुक्कड़ नाटकों तक का सफ़र, www.hindisamay.com

कैथरिन के अनुसार पुरुषों ने रंगमंच के क्षेत्र में तब तक स्त्री-पात्रों का अभिनय किया, जब तक भारतीय स्त्रियों ने रंगमंच में प्रवेश नहीं किया था ।

1.2.3.2 रंगमंच में महिलाओं का प्रवेश

रंगमंच की दुनिया में महिलाओं के प्रवेश का सार्वजनिक जीवन (public space) में स्त्रियों के प्रवेश के साथ गहरा संबंध है । भारत में स्त्री-चेतना के आरंभ की पहचान नवजागरण के उस अंकुर से की जा सकती है, जिससे गुलामी का बोध और उससे मुक्ति की अदम्य कामना प्रस्फुटित हो रही थी । भारतीय नारी की सामाजिक जगह पर प्रस्तुति और आज़ादी के संघर्ष में भागीदारी इस समय से आरंभ हुई थी । लिंग-वर्ण-वर्ग के भेदभावों के संबंध में नयी व्याख्याएँ हुईं तथा अनेक नए सिद्धांत और विचार सामने आये । भारतीय नवजागरण ने स्त्रियों के शोषण एवं मुक्ति को केंद्र में रखते हुए सबसे पहले संगठित रूप से समाज सुधार के प्रयत्न किये तथा हमारी परंपराओं की आधुनिक व्याख्या दी । इस नवीन चेतना का प्रभाव रंगमंच पर भी स्पष्ट रूप से पडा तथा अनेक समाज-सुधारकों, साहित्यकारों व रंगकर्मियों के द्वारा रंगमंच के क्षेत्र में स्त्रियों को उपस्थित करने का सक्रिय प्रयास किया जाने लगा ।

प्रसिद्ध बंगाली साहित्यकार, समाज-सुधारक एवं 'यंग बंगाली ग्रुप' के सदस्य श्री माइकल मधुसूदन दत्त (1824-1873) ने वेश्याओं को थियटर में कलाकार बनने का सुझाव पहली बार दिया था । समाज में उपेक्षित स्त्री को नवजीवन और सामाजिक स्वीकृति दिलाने का क्रांतिकारी कदम उन्होंने उठाया । बंगाल की प्रमुख अभिनेत्री नटी विनोदिनी ने अपनी आत्मकथा 'आमार कौथा' (मेरी कहानी) में बंगाल के सामाजिक जीवन और रंगमंच पर प्रकाश डाला है । रंगमंच में अपनी सजीव उपस्थिति के संबंध में वे बताती हैं कि "उन दिनों माइकल मधुसूदन दत्त के 'मेघनाथ वध' काव्य के नाट्य रूप की तैयारी हो रही थी । मैंने इस नाटक में सात भूमिकाओं में एक साथ अभिनय किया था । पहली चित्रांगदा, दूसरी प्रमीला, तीसरी वारुनी, चौथी

रति, पांचवीं माया, छठी महामाया और सातवीं सीता । बंकिम बाबू के मृणालिनी में मनोरमा की भूमिका करती थी और दुर्गशनंदिनी में आएशा और तिलोत्तमा । कभी-कभी एक ही शो में दोनों भूमिकाओं में अभिनय किया । दोनों स्त्रियों का चरित्र बहुत भिन्न था । और इस तरह अपने को दो अंशों में तोड़कर अभिनय करने में कितनी कठिनाई होती थी कि क्या बताऊँ ।"[1]

रंगमंच पर स्त्रियों के प्रवेश के पक्ष में बोलने वालों में प्रमुख थे किरणचंद्र दत्त, जो उस दौर के प्रमुख निर्देशक-नाटककार थे और बंगाल थियटर के साथ काम कर रहे थे । उन्होंने यूरोपियन थियटर को आधार बनाते हुए यह तर्क दिया कि यूरोप में कई लोग गृहिणी महिलाओं को अभिनय को एक पेशे रूप में अपनाने के लिए प्रोत्साहित करते हैं । अतः हमें भी महिलाओं को अभिनय करने की स्वतंत्रता देनी चाहिए । उनकी बात को आगे बढाते हुए गिरीश घोष ने उन तथ्यों को भी उजागर किया जो बंगाली भद्रलोक में अन्तर्निहित विरोधाभासों को दर्शा रहे थे । अभिनेत्रियों के रंगमंच पर आने का विरोध करने वाले वही बाबू लोग थे जिन्होंने अपने शौक के लिए कई वेश्याओं को अपनी रखैल बनाकर रखा हुआ था । वे निजी तौर पर उनके गाने और नृत्य के प्रशंसक थे परन्तु उन्हीं स्त्रियों के सार्वजनिक प्रदर्शन का वे खुले तौर पर विरोध कर रहे थे । गिरीश चन्द्र घोष ने लड़कों द्वारा स्त्रियों की भूमिका अदा किए जाने पर चिंता जाहिर करते हुए लिखा – "जब लड़कों को लड़कियों की भूमिका करने के लिए नियुक्त किया जाता है तो न सिर्फ प्रदर्शन अकुशल होता है-बल्कि इसके कारण लड़कों में वह विकृति पैदा होती है जिसे ठीक होने में कठिनाई पैदा होती है । अपने युवाकाल के प्रारंभ में ही स्त्रियों की भूमिका अदा करने के कारण वे जीवन भर कुछ ख़ास भंगिमाओं को साथ लेकर चलते हैं ।"

श्री जयशंकर प्रसाद के विचार में भी रंगमंच पर स्त्रियों का प्रवेश आवश्यक था । हिन्दी रंगमंच के सन्दर्भ में वे ऐसा सोचते थे कि अभिनेत्रियों के अभाव ने ही

---

[1] नटी बिनोदिनी- मेरी कहानी, औरत : उत्तरकथा, सं. राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा, पृ.24

हिन्दी रंगमंच को नहीं पनपने दिया । उनके शब्दों में "…..किन्तु रंगमंचों की असफलता का प्रधान कारण है स्त्रियों का उनमें अभाव, विशेषतः हिन्दी रंगमंच के लिए । बहुत से नाटक मंडलियों द्वारा इसलिए नहीं खेले जाते कि उनके पास स्त्री पात्र नहीं है ।"[1]

सन् 1931 में हरपुरजान के कन्या गुरुकुल की कु.सत्यवती ने रंगमंच पर स्त्रियों के स्थान का सवाल उठाया और तत्कालीन रंग परिवेश के साथ सामाजिक परिवेश में स्त्रियों की स्थिति और भूमिका का अंकन किया । वरिष्ठ रंग आलोचक श्री महेश आनंद ने 'माधुरी' पत्रिका में छपे कु. सत्यवती के 'रंगमंच पर स्त्रियों का स्थान' शीर्षक लेख को हिन्दी रंगमंच का पहला स्त्री-विमर्श माना है । प्रस्तुत लेख में सत्यवती ने अपनी धार्मिक आस्था और विशवास की सीमाओं में रहकर चौथे दशक की शुरुआत में ही यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया था जबकि इस दशक तक तो लड़कों का भी थियटर में काम करना अच्छा नहीं समझा जाता था । ऐसे परिवेश में एक छोटे से इलाके की विदूषी ने पूछा कि हिन्दी रंगमंच पर स्त्रियाँ क्यों नहीं । इससे उत्तेजित होकर 'विशाल भारत' पत्रिका के सह-संपादक व्रजमोहन वर्मा ने रंगपरिवेश की स्थिति को बदलने अथवा शौकिया थियटर में स्त्रियों के लिए स्थान बनाने के तरीके ढूँढने के बजाय स्त्रियों को रंगमंच पर आने से ही मना कर दिया । उनका पचास लेखिका को गलत साबित करना ही था, क्योंकि उन्हें अपने घरों में आने वाले खतरे का अनुभव हो रहा था ।"[2]

सत्यवती के लेख में अस्मिता की तलाश और अपनी भावनाओं को साझा करने के प्रयास में स्थितियों की आकांक्षाओं को व्यक्त किया गया था । सत्यवती का मत है कि- "जिस प्रकार जीवन स्त्रीत्व और पुरुषत्व इन दो भागों में विभक्त है तथा जीवन के हर कार्य में स्त्री और पुरुष दोनों को भाग लेना पड़ता है, उसी प्रकार कला

---

[1] जयशंकर प्रसाद- काव्य, कला तथा अन्य निबंध, पृ.104-105

[2] महेश आनंद- रंगमंच पर स्त्रियाँ : सन्दर्भ 1931, रंग-प्रसंग अप्रैल-जून 2004, पृ.67

के इस अंग नाटक में भी, जहां जीवन के सुख और दुःख दोनों दिखाए जाते हैं, स्त्री और पुरुष दोनों को भाग लेना चाहिए ।"[1] आगे वे बताती हैं कि- "मूंछ दाढ़ी मुडाये स्त्री-भेष में पुरुषों का रंगभूमि में आना हास्यास्पद तथा कला की दृष्टि से अपमानजनक है । पुरुष के लिए यह बात सर्वथा अस्वाभाविक होने के कारण यह एकदम असंभव भी है कि वह सफलतापूर्वक स्त्री का पार्ट कर सके और वास्तविक भावों को लोगों के हृदयों पर अंकित कर सके । क्या यह संभव है कि पुरुष के मन में वहीं भावनाएं उसी प्रकार ज़ोरों से आंदोलित हो सकती हैं, जिस प्रकार स्त्री के मन में होती हैं ? पुरुष किसी बात को उस तरह महसूस नहीं कर सकता, जिस तरह स्त्री ; और जब हमारा हृदय ही किसी भावना के आवेग से प्रकंपित न हो रहा हो, तब पर कैसे संभव होगा कि हम किसी दूसरे के मन पर प्रभाव डालने में समर्थ हों ? यह कला नहीं, कला का उपहास हैं । जब भावनाएं झूठी या बनावटी होंगी, तब उनका प्रकाशन भी वैसा ही होगा । इसलिए कला की दृष्टि से स्त्री का रंगमंच पर आना आवश्यक है । यहाँ आकर वे बता सकती हैं कि वास्तव में कला में कितना सौन्दर्य है ।"[2]

1.2.3.3 पारसी रंगमंच और स्त्रियाँ

पारसी रंगमंच भारत में उस रंगमंच को कहा गया जिसके मालिक पारसी थे । श्री लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में- "भारतीय रंगमंच यात्रा में पारसी थियटर कुछ ऐसी विरोधी दिशा में बहने वाली नदियों का ऐसा अपूर्व संगम है, जहां पूर्व और पश्चिम, शास्त्रीय और लोक, व्यावसायिक और पुनरुत्थानवादी तथा राष्ट्रीय और रोमानी चेतनाएं परस्पर घुल मिलकर एक अजीब रूप और अंदाज़ में हमारे सामने आयी थी ।"[3] भारते में पारसी रंगमंच मूलतः विशुद्ध व्यावसायिक उद्देश्यों के साथ विकसित

---

[1]वहीं, पृ.66

[2]महेश आनंद- रंगमंच पर स्त्रियाँ : सन्दर्भ 1931, रंग-प्रसंग अप्रैल-जून 2004, पृ.62

[3] लक्ष्मीनारायण लाल- पारसी नाटक का रचना विधान, नटरंग, जान-मार्च 1969, पृ.13

हुआ । मुंबई, अहम्मदाबाद, कोलकत्ता, हैदराबाद, लाहौर आदि देश के विभिन्न हिस्सों में इसका प्रचार-प्रसार हुआ था । भारत की विभिन्न भाषाओं में ये कंपनियां बनीं । विभिन्न भाषा-भाषी जनता ने इस रंगमंच को अपनाया और इसको दर्शक की हैसियत से अपना उन्मुक्त संरक्षण दिया ।

पारसी रंगमंच में महिलाओं के प्रवेश एवं उनकी भूमिका को लेकर काफी मतभेद रहे और कई बहस-मुबाहिसों के उपरांत ही इस दुनिया में महिलाओं का प्रवेश संभव हो सका । डॉ. सुप्रिया पाठक के मत में- "पारसी रंगमंच ही वह पहला रंगमंच था जिसने स्त्रियों के लिए अभिनय की ज़मीन तैयार की । यह तब की बात है जब स्त्रियों ने स्वयं को रंगमंच की दुनिया से बाहर रखा हुआ था, या शायद रखी गयी थी ।"[1] उसी प्रकार डॉ. चंदूलाल दुबे का मानना है कि "रंगमंच पर स्त्री-पात्रों के प्रवेश देने का श्री पारसी रंगमंच को ही है । अभिनय में स्वाभाविकता लाने की दृष्टि से यह सराहनीय कदम था ।"[2]

पारसी रंगमंच की दुनिया में अभिनेत्रियों के प्रवेश पर चली बहस पर नज़र डालें तो पता चलता है कि पारसी रंगमंच में स्त्री-दर्शकों की लगातार बढ़ती संख्या ने थियटर मालिकों के लिए बड़ी संघर्षपूर्ण स्थिति पैदा कर दी । कंपनी मालिक यह चाहते थे कि उनके यहाँ नाटक देखने ज़्यादा से ज़्यादा संख्या में महिलाएँ आये ताकि उनकी कंपनी की प्रतिष्ठा बढ़ती रहे । उस दौर में मध्यवर्गीय स्त्रियाँ अपने नाते रिश्तेदारों के साथ नाटक देखने आया करती थीं । किन्तु शर्त यही होती कि नाटक में वेश्याओं से अभिनय न कराए जाएं और थियटर हॉल में स्त्रियों के बैठने की समुचित व्यवस्था हो ।"[3]

---

[1]सुप्रिया पाठक- स्त्रियाँ एवं रंगमंच : पारसी रंगमंच से नुक्कड़ नाटकों तक का सफ़र, www.hindisamay.com

[2] डॉ. चंदूलाल दुबे- हिन्दी रंगमंच का इतिहास, पृ.160

[3] वहीं,

पारसी रंगमंच में पहला परिवर्तन तब हुआ जब मेरी फेंटन नामक एक एंग्लो इंडियन अभिनेत्री को लाया गया । मेरी फेंटन मूलतः आयरिश थी परन्तु भारत में निवास करती आयी थी । अपनी मातृभाषा की अपेक्षा उन्हें उर्दू भाषा पर अधिक अधिकार था । उनसे संबंधित सभी लोग उन्हें 'मेहरबाई पारसी' नाम से पुकारते थे । कावस जी खटाऊ ने ही उन्हें तैयार करके रंगमंच पर उतारा था और देहली से मुंबई लाये । बाद में उनके साथ विवाह भी किया । मेरी ने अंग्रेज़ी वेश-भूषा को त्यागकर पारसी वेश-भूषा सहर्ष स्वीकार की और जीवन-भर वहीं वेश-भूषा पहनी । डॉ. उमा शुक्ल बताती हैं कि – "मेरी में गज़ब की अभिनय शक्ति थी । जिस समय उन्होंने एक बनेनी का काम किया और बनेनी हिन्दू वेश-भूषा साड़ी, माथे पर बिंदी, कसी हुई चोली, और बालों का जूडा, कानों में कुंडल आदि पहनकर वह रंगमंच पर आयी तो प्रेक्षकवर्ग बड़ा ही प्रभावित हुआ । उनके उच्चारण भी शुद्ध थे । पारसी भूमिका में भी वह बड़ी सुन्दर लगती थी । मेरी ने उर्दू नाटकों में भी काम किया तथा गान विद्या द्वारा भी कीर्ति प्राप्त की ।"[1] सन् 1891 में बंबई में 'नॉवल्टी थियटर' में खेली गयी 'भोलीगुल उर्फ़ गुलानी भूल', 'अलाउद्दीन उर्फ़ अजीबो गरीब चिराग', 'ताराखुर्शीद' आदि तीन नाटकों में नारी पात्र की भूमिका मिस मेरी फेंटन के द्वारा निभाई गयी थी । सन् 1895 में 'गेचटी थियटर' में खेला गया 'कलयुग' नाटक में भी मेरी फेंटन ने भाग लिया था ।

डॉ. चंदूलाल दुबे मानते हैं कि "कावसजा खटाऊ ने मेरी फेंटन को रंगमंच पर प्रस्तुत कर रंगमंच पर अभिनेत्रियों के प्रवेश का द्वार खोल दिया । प्रारंभ में बाजारू स्त्रियों ने इन कंपनियों पर अभिनय करना प्रारंभ किया । धीरे-धीरे मध्य वर्ग की महिलाओं ने भी रंगमंच पर उतरने का साहस किया ।"[2]

---

[1] डॉ.उमा शुक्ल- भारतीय नारी : अस्मिता की पहचान, पृ.144

[2] डॉ. चंदूलाल दुबे- हिन्दी रंगमंच का इतिहास, पृ.160

मेरी फेंटन के अलावा और भी कई अभिनेत्रियों ने पारसी रंगमंच पर काम शुरू किया । उनमें प्रमुख थी कज्जनबाई, गौहर बाई, मुन्नी बाई, सरस्वती देवी आदि । गायिका एवं अभिनेत्री के रूप में कज्जनबाई अत्यंत लोकप्रिय थी । लैला मजनू में लैला, शीरों-फरहाद में शीरी जैसी भूमिकाओं में वे अत्यंत सफल हुई थीं । इसी प्रकार गौहर बाई नामक एक अभिनेत्री ने द्रौपदी और सीता की भूमिकाओं में काफी लोकप्रियता अर्जित की थी जो बाद में मोंडन थियटर चली गयी थी । अभिनेत्रियों में मुन्नीबाई का स्थान भी बहुत ही महत्वपूर्ण था । 'अल्फ्रेड थियटर' की मुख्य अभिनेत्री से लेकर बंबई की बालीवाला थियटर तक इन्होंने अत्यधिक नाम कमाया था । अभिनेत्री के रूप में ये रंगून, इंग्लैंड तक अभिनय करने गयी थीं । सरस्वती देवी पारसी थियटर कंपनी की प्रसिद्ध हीरोइन थीं । इस कंपनी के मालिक और निर्देशक फरदुन ईरानी ने जो कुछ भी यश प्राप्त किया था उसके मूल में इसी अभिनेत्री का नाम है । चरित्र अभिनय में ये अत्यंत उल्लेखनीय थीं ।

इसके अलावा 'कोरेंथियन कंपनी' की शाखा 'केशरी थियटर' की हास्य-अभिनेत्री फलकुमारी, सुखलालजी कंपनी की तारिका वज़ीहजहाँ, आल्फ्रेड कंपनी की अभिनेत्रियाँ सुशीला बाई तथा रोशनआरा, कोरेनेशन थियट्रिकल कंपनी, मिनर्वा थियटर और उत्तरकाल की कंपनियों की अभिनेत्री रामदुलारी, मेडन थियटर्स की प्रख्यात अभिनेत्री पेशंस कपूर, बेगम अख्तर के नाम से मशहूर कोरोथियन थियटर के नाटक गाज़ी मुस्रफा कमाल की मुख्य अभिनेत्री अख्तरी फैज़ाबादी, उत्तरकाल की कंपनियों की हीरोइन शकुन्तला देवी आदि के नाम इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है ।

अभिनेत्रियों के अलावा पारसी रंगमंच में नृत्य एवं गायन का कार्यवाहन करने वाली महिलाएँ भी शामिल थीं । उनमें प्रमुख थी शरीफा बाई तथा मुन्नीबाई एवं लीलाबाई जो अल्फ्रेड थियटर में नृत्य एवं गायन का काम करती थीं । और एक नाम है जहाँगारा बेगम जो विविध कंपनियों में अभिनय के साथ-साथ गायन भी करती थी

। राजमणि का नाम भी विख्यात था, जो कोरेथियन केशरी कंपनी और कावसजी थियटर की प्रमुख गायिका थी । इन सबके अलावा रहमूजान नामक एक महिला कलाकार का नाम भी पारसी रंगमंच के इतिहास में उल्लेखनीय है, जो पंजाब में नाटक मंडली चलाती थी । अपनी कंपनी के 'महाभारत' नाटक में रहमू जान स्वयं दुर्योधन की भूमिका निभाया करती थी । पारसी रंगमंच पर स्त्री द्वारा पुरुष भूमिका का यह अपने ढ़ंग का अकेला दृष्टांत हैं ।

1.2.3.4 अन्य नाट्य मंडलियों में महिला उपस्थिति

सन् 1832 में श्यामबाज़ार के नवीन कृष्ण ने सर्वप्रथम संपूर्ण रूप से बंगाली रंगशाला की स्थापना की । इसमें सन् 1835 में भरतचन्द्र राय गुणाकर कृत विद्यासुंदर काव्य को नाट्य रूप में प्रस्तुत किया गया । इसमें स्त्री पात्रों की भूमिकाएँ स्त्रियों के द्वारा ही निभाई गई थी । नवीन कृष्ण बोस का श्याम बाज़ार थियटर तथा सन् 1873 के पूर्वार्द्ध में कुछ मंडलियों के छुटपुट प्रयासों के बाद बंगाल थियटर ने सर्वप्रथम अलकेशी, जगततारिणी, श्यामसुन्दरी और गोलप, इन चार अभिनेत्रियों में से दो को माइकल-कृत 'शर्मिष्ठा' में शर्मिष्ठा की दासियों की भूमिकाएँ दी थीं । यह नाटक 1873 को खेला गया था । बंगाल थियटर के प्रभाव में ग्रेट नॅशनल थियटर ने भी क्षेत्रमणि, जादूमणि, लक्ष्मीमणि, राजकुमारी, नारायणी आदि स्त्री कलाकारों को 1874 में देवेन्द्रनाथ बेनर्जी-कृत 'सती किं कलंकिनी' संगीतक में स्त्रियों की भूमिकाओं में उतारा था ।

सन् 1883 में स्टार थियटर नामक नाट्य मंडली की स्थापना बंगाल की अभिनेत्री विनोदिनी ने अपने प्रेमी के सहयोग से की थी । इसी प्रकार इन्दर सभा में भी महिलाएँ अभिनय करती थीं । विक्टोरिया कंपनी के मालिक दादी पटेल को नाटक खेलने के लिए हैदराबाद आमंत्रित किया गया । वहाँ से लौटते समय वे कुछ गाने वालियों को अपने साथ ले आए । जिन्होंने सन् 1875 में मानचित नाटक 'इन्दर सभा' में परियों की भूमिकाएँ अदा कीं । इसी तरह सन् 1880 में बालीवाला

विक्टोरिया कंपनी में महिलाओं को लेकर आए । उनकी कंपनी में मिस गौहर, मिस मलिका, मिस फातिमा, मिस खातून तथा अन्य लडकियां काम करती थीं । बालीवाला और विक्टोरिया थियट्रिकल ने अपने साथ-साथ सिलोन, सिंगापुर, बर्मा जैसे शहरों में थियटर टूप पर भी साथ लेकर गए ।

मराठी रंगमंच में नाट्य मन्वंतर के मंच पर दृश्यबंधों के साथ पहली बार स्त्रियों ने भूमिकाएँ कीं । इसमें गायिका और अभिनेत्री ज्योत्सना भोले प्रमुख थी । मुंबई के गेयटी थियटर में सन् 1895 में खेला गया 'कलयुग' नाटक में दो महिला कलाकारों ने भाग लिया था- मेरी फेंटन तथा मिस रूयमन । इनके अतिरिक्त कुछ और महिला कलाकारों के नाम मिलते हैं – मेहरबानो, जोहरू जिलासा, रेहाना आदि । विक्टोरिया नाटक मण्डली की प्रख्यात अभिनेत्री थी मिस गौहर । बंबई के गेयटी थियटर में प्रस्तुत खूने नाहक (हैमलेट) में मिस गौहर को मेहबानो की भूमिका में प्रस्तुत किया गया । इस कंपनी की अभिनेत्री कुमारी गौहर ने पुत्री पात्र के अभिनय में असाधारण सफलता और प्रसिद्धि प्राप्त की थी । इसी नाटक मंडली के सन् 1904 में मंचित लैला, मारे आस्तीन, चन्द्रावली, शहीदे नाज़, असीरे हिर्स आदि नाटकों में गौहर ने सोसन, बिजली, चन्द्रावली, सईदा, महज़बीन तथा जोहरा ने नूरजहाँ, लैला, परवीज़, कमलावती, मालन, नाज़नी, हसीना आदि पात्रों की भूमिकाएँ सफलतापूर्वक निभाई थीं । बाद में जब यह कंपनी बंद हो गयी थी तब मिस गौहर वापिस पारसी नाटक मंडली में चली गयी थी । खुरदेश जी बल्लीवाला के दिल्ली के थियटर कंपनी की मुख्य अभिनेत्री थी श्रीमती गुल बिलीमोटिया । उन्होंने जनता को बड़ा प्रभावित किया और करूँ द्रश्यों में रुलाया भी बड़ा । सन् 1880-1890 के आसपास के समय में तमिल रंगमंच में स्त्रियों की सजीव उपस्थिति रही थी । तमिल संगीत नाटक के इतिहास में यह बात स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि वहाँ स्त्रियों की अपनी निजी नाट्य मंडली मौजूद थी तथा उसमें पुरुषों की भूमिका भी स्त्रियों के द्वारा निभाई जाती थी । बालामणि अम्मयार के द्वारा संचालित महिला नाट्य मंडली उस समय में काफी विख्यात थी । उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी के प्रथम चरण में केरल के रंगमंच से जुडी

स्त्रियों में प्रमुख थी वर्कला अम्मुक्कुट्टी, पल्लुरुत्ति लक्ष्मी, सी.के. राजम्, शिवानिक्कुट्टी आदि । मलयालम के प्रसिद्ध अभिनेता श्री सेबास्टैन कुञ् कुञ् भागवतर ने वर्कला अम्मुक्कुट्टी को मलयालम रंगमंच की प्रथम अभिनेत्री मानी हैं । कर्नाटक की सबसे पहली महिला रंग कलाकार थी चल्ल्वर । इन्होंने कोन्नूर नाट्य मंडली की 1889 में प्रस्तुत एक नाटक में अपने पति के साथ नायिका की भूमिका निभाई थी ।

1.3 निष्कर्ष

गायन, वादन, नृत्य, चित्र-कला, ज्ञान-विज्ञान, कविता, कहानी, गणित, इतिहास सभी विषयों पर नारी अभिव्यक्ति अपनी विशेष कल्पना शक्ति के परों को तौलती नज़र आती है और इसी अभिव्यक्ति का एक और महत्वपूर्ण माध्यम है उसका अभिनय पक्ष जिसे बृहद रूप में हम उसके रंगमंचीय पक्ष का नाम दे सकते हैं । भारत में अति प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ रंगमंच के विभिन्न पहलुओं से किसी-न-किसी रूप में अवश्य जुडी हुई थीं । किन्तु हमारे तथाकथित पुरुष-प्रधान रंगमंचीय इतिहासों में महिलाओं के योगदान को प्रायः अनदेखा ही किया गया है । भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति एवं रंगमंच के विकास में उनकी रचनात्मक भूमिका को ढूँढने का प्रयास करते हुए हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि प्राचीन काल से ही भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की सजीव उपस्थिति रही थी । नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने भी नाट्य में स्त्रियों की उपस्थिति को अपरिहार्य ही माना है । अभिनय, नृत्य, संगीत, नाट्य-रचना, निर्देशन, नेपथ्य के कार्य-व्यापार आदि रंगकर्म के विभिन्न पहलुओं में स्त्रियों ने सफलता हासिल की है । उस समय में महिला नाट्य संघ भी रहे थे, जिनके प्रदर्शन स्त्री-प्रेक्षा नाम से जाने जाते थे । रंगकर्म से अपनी आजीविका चलाने वाली तथा अनुष्ठान के रूप में नृत्य करनेवाली स्त्रियों का विशेष वर्ग मौजूद था । उस समय के समाज में महिला रंगकर्मियों का विशिष्ट स्थान भी रहा था । पुरुष सत्तात्मक विचारों से युक्त स्मृतियों तथा शास्त्र ग्रंथों में रंगकर्म से जुडी स्त्रियों को नीच माना गया है । मध्यकाल तक आते-आते बदलती नैतिक,

सांस्कृतिक धारणाओं और पुरुष केन्द्रित विचारों ने स्त्रियों को रंगमंच के सार्वजनिक 'स्पेस' से काफी दूर करा दिया । स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरुष कलाकारों के द्वारा किया जाने लगा । परन्तु हमारे देश के प्रत्येक प्रदेश में अपनी स्थानीय विशेषताओं से युक्त ऐसी अनेक स्त्री-प्रस्तुतिपरक कलाओं की जीवंत परंपरा अक्षुण्ण रही है, जो मध्यकाल के पुरुष-प्रधान रंगमंच के समानांतर महिला समूहों की अपनी निजी स्थानों में काफी प्रचलित एवं सुरक्षित रही है । इनमें महिला जगत की संवेदनशीलता, वैचारिक गहनता, कल्पनाशीलता, हास्यपटुता, विद्रोह एवं अनगढ़ सहज कौशल का सजीव चित्र आदि अंकित होते रहे हैं । आधुनिक रंगमंच के प्रारंभिक दौर में भी स्त्रियों की रंगमंच में उपस्थिति नहीं के बराबर थी । नवजागरण के प्रभाव ने सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के प्रवेश को प्रोत्साहित किया । धीरे-धीरे रंगमंच के क्षेत्र में भी महिलाएँ उपस्थित होने लगीं । रंगमंच में अपना स्थान प्राप्त करने के लिए स्त्रियों को कई संघर्ष भी कटना पडा । आजकल रंगमंच के अन्याय पहलुओं में स्थितियों ने अपनी सजीव उपस्थिति स्थापित की है ।

अध्याय दो

स्त्रीवादी रंगमंच : संकल्पना, स्वरूप एवं सौंदर्यशास्त्र

2.1 विषय प्रवेश

रंगमंच केवल किसी नाट्य-कृति को अभिनेताओं द्वारा मंच पर खेल देना भर नहीं होता । समाज, मनुष्य उसकी मनोरचना और नियति के साथ रंगमंच के संबंध को लेकर हर युग में चिन्तक और रंगकर्मी चिंतन-मनन करते रहे हैं और मानव-जीवन की एक अधिकाधिक विश्वसनीय प्रतिकृति के रूप में रंगकर्म को स्थापित करने के लिए नई-नई शैलियाँ ढूंढते और विकसित करते रहे हैं । उन सिद्धांतों और शैलियों में अद्वितीय एवं महत्वपूर्ण स्थान है स्त्रीवादी रंगमंच । इक्कीसवीं सदी में उभवित इस विशिष्ट रंगमंचीय संकल्पना की सैद्धांतिक स्तर का परिचय इस अध्याय की मूल वस्तु है । सदियों से परिव्याप्त तथाकथित पुरुष-प्रधान रंगमंच में स्त्री के लिए अपने अस्मिता और योग्यता प्रमाणित करने के लिए एक ऐसी विशेष रंग परिकल्पना को रूपायित करना पडा, जो रंगमंच पर निहित पितृसत्तात्मक तत्वों को चुनौती देते हुए, पूरे रंगमंचीय संरचना को ही पुनर्निर्मित करने का क्रियात्मक एवं सृजनात्मक प्रयास है । वैश्विक स्तर पर सालों से रंगमंच के सिद्धांतों में स्त्री की चर्चा, केवल शोभा और प्रदर्शन-वस्तु के सीमित रूप में होती रही है । पुरुष-केन्द्रित मानसिकता के द्वारा संकल्पित इन पूर्वनिर्धारित रंगमंचीय प्रतिमानों को तोड़कर जब एक नवीन स्त्रीपक्षीय सौन्दर्य चेतना का उदय हुआ, तब जाकर रंगमंच की परिकल्पना ही बदल गयी । इससे पूरी नाट्य-प्रस्तुति की तथा दर्शन-आदत की एक नयी शैली प्रचालन में आयी । पुरुष-वर्चस्व के जकड में पड़े रंगमंचीय-तत्वों का सैद्धांतिक स्तर पर कटु आलोचना होने लगे तथा स्त्रीवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में रंगमंचीय संकल्पनाओं एवं नाट्य-रूढ़ियों का गहराई से विचार-विमर्श शुरू होने लगा । इससे पूरे रंगमंच भावगत, रूपगत एवं दर्शकीय स्वरूप में क्रांतिकारी परिवर्तन की झलक पाए जाने लगी । प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत स्त्रीवादी रंगमंच जैसी इस विशेष संकल्पना का उदय, उसका विकास, उसका सैद्धांतिक पक्ष, उसकी

विभिन्न प्रवृत्तियाँ उसका पूरा स्वरूप, अनन्य स्वभाव तथा उसकी प्रासंगिकता पर विचार किया जाएगा ।

2.2 स्त्रीवाद

स्त्रीवाद एक विशेष विचारधारा एवं सामाजिक आन्दोलन के लिए प्रयुक्त शब्द होता है जो समाज में स्त्री-वर्ग के साथ न्याय से संबंधित प्रश्नों पर विचार करता है तथा स्त्रियों के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों के लिए लड़ता है । यह स्त्रियों के ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार एवं शोषण का विश्लेषण करते हुए उसके कारणों को ढूँढने के प्रयास में कार्यरत होता है । स्त्रीवाद के मूल में स्त्रियों की समस्याएँ, समाज में उनके दोतम दर्जे की स्थिति, असमानताएं आदि के प्रति संघर्ष करने की प्रेरणा मौजूद होती है । सालों से पुरुष-सत्ता के बंधन में पडी हुई स्त्रियों की अधीनस्थ स्थिति पर बदलाव लाने के विशेष उद्देश्य से कार्यरत स्त्रीवाद, लिंगभेडीय प्रभाव से रूपायित पुरुष-सत्तात्मक समाज की जड़ों को तोड़ने के लिए सक्रिय रूप से कार्यरत होता है । पुरुष-सत्ता तो एक सामाजिक व्यवस्था का नाम है, जिसमें पुरुषों की केन्द्रीयता या प्रधानता मौजूद रहता है तथा स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के अधीन में होती है । पुरुष सत्ता या पितृसत्ता के संबंध में प्रभा खेतान ने सूचित किया है कि – "पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हज़ारों साल से चली आई ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है । पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया । उसे साधन के रूप में प्रयुक्त किया । उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने सन्दर्भ में परिभाषित किये । पुरुष ने स्त्री-जीवन, उसकी कार्यशैली, उसकी सत्ता को निर्धारित करने की चेष्टा की, जबकि तथ्य तो यह है कि स्त्री भी पुरुष की तरह एक अलग सवर्ग है, उसकी अलग कोटि और अलग सामाजिक स्थिति है, वह अपने जीवन में चुनाव की क्षमता रखती है । मगर स्त्री को चुनाव का न क्षेत्र दिया गया, न अधिकार । पुरुष की सांस्कृतिक सत्ता ने स्त्री को वह

सामाजिक सुविधा नहीं दी, जो कि पुरुष को परंपरा से मिलती रही ।"[1] सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, पारिवारिक आदि सभी क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले पुरुष-सत्ता के वर्चस्व ने स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व को नकारा है । पुरुष वर्चस्व के दबाव के कारण स्त्री-समूह आज भी शोषित, पीड़ित और अपने अधिकारों से वंचित दिखाई देते हैं । स्त्रियों को परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ने वाली इस पुरुषसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का आमूल परिवर्तन ही स्त्रीवाद का प्राथमिक लक्ष्य होता है । स्त्रीवाद एक ऐसा सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक कदम है, जो स्त्रियों, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म, रंग, क्षेत्र की हों, की अधीनस्थ स्थिति को समाप्त करने के उद्देश्य से कार्यरत हैं ।

स्त्रीवाद ने समाज पर निहित लिंग केन्द्रित वर्चस्व, पुरुष-सत्तात्मक नैतिकता एवं सारे स्त्री-विरोधी तत्वों को चुनौती देते हुए समाज को फिर से गढ़ने की प्रवृत्ति में व्यापृत है । पुरुष-सत्तात्मक समाज में स्त्री मात्र एक वस्तु के रूप में ही देखा जाता है । इस स्थिति को समाप्त करने के उद्देश्य से स्त्रीवाद ने प्रतिरोध के अपने-अपने आयामों को आत्मसात किया है ।

2.3 स्त्रीवाद और रंगमंच

स्त्रीवाद, महिला उत्पीडन के विभिन्न पहलुओं को समझने की दिशा में प्रयासरत एक गतिशील और निरंतर परिवर्तित होनेवाली विचारधारा है । इसमें व्यक्तिगत, राजनीतिक और दार्शनिक पहलू भी शामिल है, लेकिन जो एक विचार सभी स्त्रीवादी दृष्टिकोणों में समान है वह यह है कि सभी मौजूद । स्त्री-पुरुष संबंधों को बदलने की दिशा में केन्द्रित है । दूसरे शब्दों में ये सभी विचारधाराएं इस तथ्य से पैदा होती है कि समाज में महिलाओं को स्वतन्त्रता व समानता मिलना आवश्यक है । अभिव्यक्ति के अन्यान्य माध्यमों में स्त्री की अस्मिता एवं मानवीय संस्कृति के

---

[1] फ्फ्प्रभा खेतान- हमारी भूमिका, औरत अस्तित्व और अस्मिता : महिला-लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ.14

निर्माण में उसकी रचनात्मक भूमिका जब चर्चा के केंद्र में आ गयी तब रंगमंच का क्षेत्र भी इस स्त्री उपस्थिति से वंचित नहीं रह गया । दूसरे शब्दों में स्त्रीवादी कला चर्चा में नाट्य-कला या रंगमंच की अद्वितीय भूमिका अवश्य रही है । रंगमंच कोई एकांत विस्मय नहीं है । वह मानवीय संवेदनाओं की आधार भूमि है । फिर भी वह रंगमंच जो पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित होता है, स्त्री को अपने स्वत्व एवं अस्मिता को प्रकट करने की दिशा में बाधा-स्वरुप उपस्थित भी हो जाता है । अन्य माध्यमों के समान रंगमंच में भी स्त्री का स्पेस कौन सा होना चाहिए, इसका निर्णय पुरुष सत्तात्मक नियंत्रण एवं वर्चस्व के द्वारा ही होता है । इसलिए जिस मुख्यधारा में रंगमंच का रूपायन होता है वहाँ स्त्री की जगह शून्य या अप्रधान है । इस कारण से ही पुरुष के द्वारा निर्धारित रंगमंच की स्त्री मिथ्यात्मक होती है तथा उसे हमेशा असम्मान, वेदना एवं तिरस्कार सहना पड़ता है ।

नए सिरे से स्त्रीत्व की स्थापना एक आन्दोलन के रूप में जब बाहरी जगत में प्रकट होने लगी तो उसकी प्रतिध्वनियाँ रंगमंच में भी मिलने लगीं । स्त्रीपक्षीय चिंतन ने रंगमंच पर निहित पुरुष वर्चस्व की कटु आलोचना प्रस्तुत की तथा उसके एक-एक अंतर्विरोध को सामने रखा । स्त्रीवादी कला-चिंतकों व नाट्य-चिंतकों ने रंगमंच के एकांगी, लिंग-भेदक प्रतिमानों की तीखी आलोचना की तथा स्त्री-पक्षीय रंगकर्म की सार्थकता पर विचार भी किया । इस स्त्री दृष्टि ने रंगमंच के स्वरूप को ही बदल डाला है । बीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशक वैश्विक स्तर पर रंगमंच के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण समय रहा है जबकि 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी अर्थपूर्ण परिकल्पना प्रबल रूप से प्रतिष्ठित हुई ।

2.4 महिला रंगमंच और स्त्रीवादी रंगमंच

'महिला रंगमंच' तथा 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी दो विशिष्ट सैद्धांतिक संकल्पनाओं के बेच की विचार-विभिन्नता एक लंबे समय तक कुछ गहरी और सूक्ष्म तर्क-वितर्क विषय रहा है । महिलाओं की अनन्य भूमिकाओं से अनावृत या मात्र

महिलाओं के द्वारा महिलाओं के लिए निर्मित नाट्य-संघ और उनके द्वारा रूपायित नाट्य-प्रस्तुतियाँ आदि महिलाओं की सजीव उपस्थिति से संपन्न किसी भी रंगमंच को महिला रंगमंच की कोटि में रखा जा सकता है । महिला रंगमंच के सन्दर्भ में इस बात की अनिवार्यता बिलकुल अवश्य नहीं है कि इस विशेष संकल्पना के मूल में स्त्री-मुक्ति के विचार या स्त्री पक्ष की राजनीति का प्रभाव हो । दुसरे शब्दों में कहा जाय तो रंगमंचीय सृजनात्मक प्रक्रिया की मूल-चेतना के रूप में स्त्री की संवेदना को उजागर करने की तथा अपनी अस्मिता के प्रति सचेत हो उठने की ज़रुरत महिला रंगमंच में नहीं है । रंगमंच पर निहित पुरुष-सत्ता को तोड़ना एवं नवीन स्त्रीपक्षीय रंग-संरचना को स्थापित करना भी महिला रंगमंच का लक्ष्य नहीं होता है । विश्व के विभिन्न प्रदेशों में ऐसी कुछ रंग-मंडलियों को देखा जा सकता है, जो मात्र स्त्रियों के द्वारा संचालित है या जिसके द्वारा प्रस्तुत नाट्य - प्रदर्शनों में मात्र स्त्रियाँ ही मौजूद है । किन्तु इन रंग-मंडलियों तथा नाट्य-प्रदर्शनों में अधिकाँश में अंतर्भूत विचारधारा पुरुष-सत्ता से ही द्योतित है । पुरुष-सत्ता के द्वारा सदियों से महिलाओं पर थोपे गए नैतिक मूल्य, सांस्कृतिक वर्चस्व एवं असमानता को बिना ध्यान देते हुए अपने सृजनात्मक कार्य-व्यापारों में ये रंग-प्रदर्शन अप्रत्यक्ष रूप से पुरुष-सत्तात्मक विचारधारा का परिपालन ही करती आ रही है ।

'महिला रंगमंच' से भिन्न 'स्त्रीवादी रंगमंच' की परिकल्पना एक विशिष्ट रंगमंचीय दृष्टि या शैली के रूप में प्रतिष्ठित हुई है । स्त्रीवादी रंगमंच स्त्रीवादी चिंतन से परिपुष्ट, स्त्री मुक्ति के विचारों से आयोजित तथा सृजनात्मक प्रक्रिया की मूल चेतना के रूप में स्त्री की अस्मिता एवं संवेदनाओं को उजागर करने वाली वैचारिक एवं व्यावहारिक कदम होता है । एक महिला रंगमंच तभी स्त्रीवादी रंगमंच बन जाता है, जब उसमें किसी-न-किसी रूप में पुरुष-सत्ता को चुनौती देने वाले या पुरुष-सत्ता भी जड़ों को तोड़ने वाले तत्व उपस्थित होते हैं । अर्थात् महिलाओं की सजीव उपस्थिति-मात्र से संपन्न किसी रंगमंचीय प्रस्तुति या रंग-मंडली को स्त्रीवादी रंगमंच की कोटि में नहीं रखा जा सकता है । स्त्रीवादी रंगमंच की संकल्पना का सामाजिक,

सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्तर बहुत महत्वपूर्ण होता है । सदियों से पूरे विश्व किसी न किसी रूप में पुरुष-सत्ता के बोझ के नीचे कराह रही है । पुरुष-सत्ता का मतलब ऐसी सामाजिक व्यवस्था से है जो पुरुष-सत्ता के जकड में पडी हुई है । अतः रंगमंच पर निहित पुरुष सत्ता के बंधन को तोड़कर एक नयी स्त्री चेतना को रंगमंच पर स्थापित करने का उद्देश्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से स्त्रीवादी रंगमंच के मूल में महसूस किया जा सकता है, जो महिला रंगमंच में नहीं पाया जा सकता ।

2.5 स्त्रीवादी रंगमंच : संकल्पना एवं परिभाषाएँ

स्त्रीवादी रंगमंच क्या है, उसको कैसे परिभाषित किया जा सकता है आदि बातों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करना काफी कठिन है । प्रमुख स्त्रीवादी सैद्धांतिक एवं रचनाकार लिसबत गुडमैन (Lizbeth Goodman) ने अपनी पुस्तक 'Contemporary Feminist Theatres : To each her own' में सूचित किया है कि – "स्त्रीवादी रंगमंच के संबंध में विचार करनेवालों के लिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि 'स्त्रीवादी रंगमंच' शब्द के लिए एक ऐसी परिभाषा में पहूंचना, जो सैद्धान्तिकों व प्रयोक्ताओं दोनों के लिए सहमत हो ।"[1]

विचारकों व प्रयोक्ताओं ने स्त्रीवादी रंगमंच के संबंध में अपने-अपने विभिन्न मत प्रकट किये हैं । सामान्य रूप से ऐसा एक मत पाया जाता है कि "स्त्रीवादी रंगमंच महिलाओं के द्वारा महिलाओं की समस्याओं को रंगमंच पर प्रस्तुत करनेवाला एक सृजनात्मक कार्यव्यापार है जिसमें ऐसी नवीन रंगभाषा एवं देहभाषा की निर्मिती होती है, जो महिलाओं की स्वत्वाभिव्यक्ति को प्रयोग में लाने वाली हो । स्त्रीवादी नाट्यालोचक जानट् ब्राउन की राय में "स्त्रीत्व की आतंरिक प्रेरणा को प्रस्तुत करनेवाले किसी भी रंगमंच को हम स्त्रीवादी रंगमंच की कोटि में रख सकते हैं । यह आतंरिक प्रेरणा स्त्रियों के लिए एक ऐसा रास्ता खोल देता है जिसके द्वारा पुरुषसत्तात्मक समाज के दबाव से मुक्ति पायी जा सकती है । मुक्ति का यह संघर्ष

[1] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.9

जब किसी नाट्य-प्रदर्शन का मूलभाव हो जाता है तब उस नाट्य-प्रदर्शन को स्त्रीवादी रंगमंच की कोटि में रख सकते हैं ।"[1] जानेट ब्राउन ने स्त्रीवादी रंगमंच की प्रयुक्ति के लिए चार डिवाइस को प्रस्तुत किया है, जिसमें 'सेक्स रोल्स' के उलटे प्रयोग, ऐतिहासिक पात्रों का प्रेरणास्रोत के रूप में उपस्थित करना, पारंपरिक स्त्री भूमिकाओं का परिहासपूर्ण व्यंग्य, स्त्रियों की दमित अवस्था का सीधा निरूपण आदि प्रमुख है । जानेट ब्राउन के शब्दों को एलैन आस्टन ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है, वह इस प्रकार है –

1. The sex-roles reversal device.
2. Presentation of historical figures as role models.
3. Satire of traditional sex roles.
4. Direct portrayal of women in oppressive situations.[2]

स्त्रीवादी रंगमंच पर अध्ययन-विश्लेषण करने वाली प्रमुख आलोचक हेलेन केयसर (Helene Keyssar) ने स्त्रीवादी रंगमंच को स्पष्ट करने की कोशिश की है । उनके अनुसार स्त्रीवादी रंगमंच के प्रमुख उद्देश्य हैं-

1. महिलाओं की स्वत्वाभिव्यक्ति पर विशेष रूप से केन्द्रित नाट्य -रचना एवं निर्देशन ।

2. स्त्रियों की समस्याओं पर ज़ोर देने वाली नाट्य-प्रस्तुतियाँ ।

3. नाटक के केंद्र पात्र के रूप में स्त्री को उपस्थित करना ।

थोड़ा और स्पष्ट किया जाए तो स्त्रीवादी रंगमंच से तात्पर्य ऐसी रचनाएँ एवं रंगपाठ की निर्मिति है, जो लिंग व्यवस्था को पुनर्निर्मित करने वाले हो, परंपरा से थोपा हुआ पुरुष-वर्चस्व के मूल को तोड़ने वाले हो, तथा सैद्धांतिक एवं संरचनात्मक स्तर

[1] Carlotee Canning – Feminist Theatre in USA, P.31
[2] Elain Aston – An Introduction to feminist theatre, P.32

पर पूरे रंगमंच को पुनर्निर्मित करने वाले हो । Helene Keyssar के अपने शब्दों में – "Productions and scripts characterized by consciousness of women, dramaturgy in which art is inseparable from the condition of women as women ; performance (written and acted) that deconstructs sexual difference and thus undertermines patriarchal power ; scripting and production that present transformation as a structural and ideological replacement for transformation as a structural and ideological replacement for recognition ; and the creation of women characters in the subject position."[1]

स्त्रीवादी रंगमंच का अस्तित्व राजनीतिक होना है या स्त्रीवादी विचारों तथा उद्देश्यों का सांस्कृतिक स्तर पर जानबूझकर प्रयोग के आधार पर होना है, या महिलाओं के द्वारा रचित एवं प्रस्तुत होना है, या पारंपरिक तथा रूढ़िवादी विचारों से महिलाओं को मुक्त करने की प्रेरणास्रोत होना है, इत्यादि अलग-अलग दृष्टिकोण स्त्रीवादी रंगमंच के सन्दर्भ में देखे जा सकते हैं । निम्नलिखित उद्धरणों या परिभाषाओं से कुछ ऐसे संकेत अवश्य मिलेंगे जो स्त्रीवाद और महिलाओं के रंगकर्म के बीच के संबंध को सूचित करनेवाले हैं । ये सभी उद्धरण उन महिलाओं के शब्दों से लिए हुए हैं जो स्त्रीवादी रंगमंच के निर्माताओं के रूप में कार्यरत हैं । उनके द्वारा कही गयी ये लघु उक्तियाँ, जो उनके अपने रंगकार्यों से स्त्रीवाद के संबंध को व्यक्त करने वाली हैं, काफी महत्वपूर्ण दिखाई देती हैं ।

स्त्रीवादी रंगमंच के मूल तत्व को विशेष रूप में परिभाषित करने वाली प्रमुख सैद्धांतिक Loren Kruger ने व्यक्त किया है कि – "There is a saying that women have always made spectacles of themselves, however, is has been only recently and intermittently, that women have made

[1] Helen Keyser – New case Book – Feminist theatre and theory, P.1

spectacles themselves. On this difference turns the ambiguous identity of a feminist theatre."[1] अपने सृजनात्मक कार्य के लिए स्त्रीवादी लेबल की प्रासंगिकता पर सवाल उठाने वाली प्रमुख अंग्रेज़ी नाट्यकार पाम गेम्स (Pam Gems) तथा जमाइका के प्रमुख रंगकर्मी य्वोन्ने ब्रूस्टर (Yvonne Brewster) दोनों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं I Yvonne Brewster के लिए स्त्रीवाद शब्द एक हद तक समस्याग्रस्त रहा है । वे वेस्ट-इंडिया के मातृसत्तात्मक समाज की पृष्ठभूमि से आने वाली है, जहाँ स्त्रीवाद की कोई विशेष प्रासंगिकता नहीं रहती । लेकिन उनके अनुसार वे अपने रंगकर्म को स्त्रीवाद की परिधि में ज़रूर रख सकती हैं अगर स्त्रीवादी होने का मतलब किसी भी विषय को स्त्री पक्षीय परिप्रेक्ष्य से देखना या समझना है I उनके शब्दों में "The feminist thing is always a little bit problematic with me, to be quite honest.....I come from a very strong west Indian background, and in the west Indies the word 'feminism' has a really hollow ring, simply because it's a matriarchal society.....so entering a European or British situation, one finds the concept a bit difficult.....But I suppose in a way (my work with) Talawa is exceedingly feminist, it to be feminist means to look at things from a feminist perspective or a female perspective..."[2]. पाम गेम्स (Pam Gems) ने स्पष्ट किया है कि वे स्वयं को स्त्रीवादी समझती है तथा उन्होंने हमेशा स्त्रीवादी दृष्टि से ही लिखा है । लेकिन वे यह भी चाहती है कि रंगकर्मियों तथा नाट्य रचइताओं को प्रचारात्मक शैली से मुक्त रहना चाहिए । उन्होंने स्त्री-पक्षीय दृष्टि से ही रंगमंच को देखने की कोशिश की है, लेकिन वे नाटक को सीधा बहस करने वाले माध्यमों की कोटि में नहीं रखना चाहती है । उनके मत में नाटक तोड़ने-फोड़ने वाली एक क्रांतिकारी क्रिया-कलाप है । उनके शब्दों में - "I think the phrase feminist

[1] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.10
[2] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.11

playwright is absolutely meaningless because it implies polemic, and polemic is about changing things in a direct political way Drama is subversive."[1]

प्रमुख रंगकर्मी, रचनाकार एवं आलोचक जोआन लिप्किन (Joan Lipkin) के अनुसार पोलिटिकल थियटर के अन्य रूपों के समान स्त्रीवादी रंगमंच भी सीधा होना चाहिए जोकि सामाजिक परिवर्तन में समर्थ रहे । रंगमंच के द्वारा उनका उद्देश्य किसी समस्याओं के समाधान को ढूंढना नहीं है बल्कि कुछ ऐसे ज्वलंत प्रश्नों को समाज के सामने रखना है, जो लोगों के विचारों को परिवर्तित करने में सक्षम हो । उनके शब्दों में – "I think you have to take a stand if you make political theatre or feminist theatre. You can pose a dialectic to the audience, but in some ways that's kind of a post-modernist cop out. You can't just say that there are so many points of views that I can't take one. Part of what art, in my opinion, does is to illuminate a situation not simply to reflect it but to somehow put a spin on it so that we see it differently. We have to, not necessarily offer solutions, but raise provocative questions that help us to think about issues differently."[2]

प्रमुख रंगमंचीय आलोचक एवं शोधार्थी Janelle Reinelt के अनुसार कला के संबंध में ब्रेख्त की जो अवधारणा है वह स्त्रीवादी रंगमंच के लिए भी उपयुक्त है । इसके कारण के रूप में वे बताती हैं कि –

1. "ब्रेख्तियन एवं स्त्रीवादी दोनों रंगमंच की अग्रभूमि में राजनैतिक कार्यसूची अवश्य मौजूद है ।

[1] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.11

[2] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.11

2. बहुमत (पुरुष) संस्कृति के स्वाभाविक प्रदर्शन संकेतों पर अवरोध व विखंडन के कार्य ब्रेख्तियन तथा स्त्रीवादी रंगमंच दोनों में समान रूप से दिखाई देते हैं ।"[1]

कैनडा की प्रमुख रंगकर्मी पोल पेल्लेटियर (Pol Pelletier) ने स्त्रीवादी रंगमंच के संबंध में अपने विचार प्रकट किये हैं । उनके अनुसार स्त्री के अनुभव और रुचियाँ पुरुष से भिन्न होते हैं । अतः इस भिन्नता को रंगमंच पर स्त्री-देह के द्वारा स्थापित करना स्त्रीवादी रंगमंच के उद्देश्यों में सबसे प्रमुख है ।[2] अर्थात् स्त्रैणता के तथाकथित एवं थोपे हुए मानों से बचकर तथा नाट्य संबंधी प्रचलित मान्यताओं को तोड़कर देह की राजनीति को मंच पर उठाना । मेगान टेरी (Megan Terry) का मानना है कि अधिकाँश पुरुष 'फेमिनिस्ट' को सेपरेटिस्ट (separatist) के रूप में ही देखते हैं, और इस प्रकार कहकर वे स्त्रियों के रंगमंचीय कार्य-व्यापारों को पद से हटाना चाहते हैं । मेगान टेरी के शब्दों में –

"I have noticed, at these conferences where some men have been speaking out, that a lot of American males perceive feminists as separatists. They want to dismiss all women's works if they think they are not going to be allowed to be an equal part of the audience."[3]

न्तोज़के शांगे (Ntozake Shange) 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी संकल्पना के पक्ष में खड़े रहकर अपने नाट्यानुभव को व्यक्त किया है । उन्होंने यंग लॉर्ड्स पार्टी (young lords party) नामक नाट्य-संघ से इसलिए जुड़ गया कि उस नाट्य-संघ में स्त्रियों को बराबरी का हक़ मिलता है । उनके शब्दों में – "I have been a feminist writer ever since I started. When I was nineteen I worked for

---

[1] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.12

[2] Louise H. Forsyth – Self-potrait of the artist as radical feminist in experimental theatre : joie by pol pelletier, tric RTAC, journals.lib.unb.ca

[3] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.11

the Young Lords Party instead of the Black Panther Party because in the Young Lords, equality for women was part of the platform of the party. I decided I was a feminist at that point and I have never stopped being one."[1]

पुरुष सत्ता द्वारा नियंत्रित एवं संचालित रंगमंच में स्त्री का प्रतिनिधित्व हमेशा पुरुष के परिशिष्ट अथवा अनुबंध के रूप में ही होता है । सामान्य रूप से कहे तो पुरुष क्रियात्मक होता है तथा स्त्री प्रतीति मात्र । पुरुष स्त्री को देखता है तथा स्त्री इस दृष्टिपात का शिकार हो जाती है । यहाँ स्त्री खुद वस्तु बन जाती है, अर्थात् एक प्रदर्शनीय वस्तु ।

एक प्रदर्शनीय वस्तु के सीमित रूप से प्रदर्शनकर्ता के व्यापक रूप में महिलाओं के परिवर्तन का जो प्रयाण है, उसी के प्रेरणा स्वरुप स्त्रीवादी रंगमंच जैसी संकल्पना का सूत्रपात हुआ है । विपरीत पक्षीय स्तरों का यह प्रति-प्रयाण असल में महिलाओं को एक ऐसी पूर्व-कल्पित चेतना से मुक्ति प्रदान करता है, जो उनमें परंपरागत ढ़ंग से बांधी हुई है । इससे समाज के तथाकथित एवं परंपरावादी दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है तथा नवीन सौन्दर्यबोध का निर्माण होता है । इस प्रकार की नवीन सौन्दर्य-चेतना से युक्त चाक्षुप संरचना का रूपायन कैसे होता है तथा उसमें परंपरा से भिन्न स्त्री स्वत्व को किस प्रकार प्रतिष्ठित करना है, इत्यादि महत्वपूर्ण मुद्दों का जब गहनता से विचार-विमर्श शुरू होने लगा तब उसके फलस्वरूप स्त्रीवादी-रंगमंच जैसी नयी संकल्पना उभरकर सामने आयी । स्त्रीवादी रंगमंच मात्र महिलाओं के अनुभवों की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि पूरे नाट्य-पाठ, रंग-भाषा तथा नाट्य-सिद्धांतों को समग्र रूप से पुनर्निर्मित करने की प्रक्रिया है । साथ ही वह एक प्रति-सौन्दर्यशास्त्रीय विचार भी है ।

---

[1] Lizbeth Goodman – Contemporary feminist Theatres : To each her own, P.11

स्त्रीवादी रंगमंच एक ऐसा रचनात्मक रंगमंच है, जो रंगमंच संबंधी पारंपरिक रूढ़िवादी अवधारणाओं पर सकारात्मक परिवर्तन लाने के विशेष उद्देश्य के साथ-साथ रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व को तोड़कर स्त्री के निजी स्वत्व को स्थापित करने का सृजनात्मक उपक्रम है । नाट्य-रचना से लेकर नाट्य-निर्देशन, रंग-सज्जा, रंग-क्रिया, प्रकाश-वितान एवं अभिव्यक्त आदि रंगमंच से संबंधित हर पहलुओं पर स्त्रियों की निजी सक्रियता एवं भागीदारी स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी विशेषता है ।

2.6 स्त्रीवादी रंगमंच : अन्वेषण कार्य एवं प्रवृत्तियाँ

स्त्रीवादी रंगकर्म के सामान्य अन्वेषण कार्यों तथा प्रवृत्तियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं ।

1. परंपरागत एवं सर्वमान्य रंगमंचीय सौन्दर्य-तत्वों का खंडन तथा पुनरुत्थान । अर्थात् पितृसत्तात्मक मूल्यों तथा पुरुष केन्द्रित दृष्टि से रूपायित रंगमंचीय तत्वों एवं सौन्दर्य-संकल्पनाओं की स्त्रीवादी नज़रिए से आलोचना करना अथवा तथाकथित रंगमंचीय सिद्धांतों में निहित पुरुष केन्द्रीयता की आलोचना ।
2. स्त्रीत्वपरक अनुभूतियों एवं स्त्री अस्मिता को रंगमंचीय भाषा में सुविन्यस्त करना । स्त्रीवादी चिंतन में अस्मिता प्रश्न सबसे प्रमुख है । अस्मिता का बोध स्वत्व का बोध है । यह आत्माभिव्यक्ति का प्रश्न है जो किसी को व्यक्ति बनाता है, मनुष्य बनाता है । यह लिंग के दायरे को पार कर मनुष्यता के दायरे में प्रवेश करता है । स्त्री की स्वतंत्र इच्छाएं, स्वतंत्र विचारधारा, स्वतंत्र दृष्टिकोण तथा उसकी स्वयं की एक स्वतंत्र परंपरा है । सार्वजनिक रंगमंच की परंपरा में अनुपस्थित इन स्त्रीत्वपरक विशेषताओं को रंगमंच में स्थापित करना स्त्रीवादी रंगमंच का प्रमुख उद्देश्य है ।
3. स्त्रीपक्षीय विषयवस्तुओं की स्वीकृति एवं समावेश । समाज में सदैव दोयम दर्जे पर रखी जाने वाली स्त्री के जीवन तथा उसके द्वारा झेले जाने वाले शोषण को केंद्र में रखकर, उसके जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने वाले विषयों को

रंगमंचीय प्रस्तुति की अंतर्वस्तु बनाना एवं स्त्री-प्रतिरोध को रंगमंच के माध्यम से उठाना । साथ ही स्त्री को वैयक्तिक रूप से स्वतन्त्रता, सामाजिक रूप से समान सक्षम, आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर, राजनीतिक तौर पर सबल तथा सांस्कृतिक रूप से उदात्त और मानवीय स्थापित करने की प्रेरणा रंगमंच के माध्यम से समाज को देना स्त्रीवादी रंगमंच की प्रमुख प्रवृत्तियों में एक है ।

4. नवीन रूप-संरचना की खोज तथा उसमें स्त्री-बिंबों की नूतन अन्विति । स्त्री की स्वत्वाभिव्यक्ति के लिए सहायक रंगभाषा की खोज एवं नवीन तथा सृजनात्मक रंग शिल्प का प्रयोग स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी विशेषता है । लिंगस्थितिपरक व पुरुष-केन्द्रित विचार तत्वों के द्वारा रंगमंच पर निर्मित स्त्री-बिंबों के स्थान पर स्त्री-स्वत्व की गहराई को समाविष्ट करने वाले नूतन बिंबों की अन्विति ।
5. स्त्री देह भाषा की नवीन अवधारणा । लिंग भेद संबंधी पूर्वग्रहों से ग्रस्त देह भाषा को तोड़कर स्त्री की नैसर्गिक देह भाषा का रंगमंच में सृजनात्मक ढंग से प्रयोग करना स्त्रीवादी रंगमंच की विशेषता है ।
6. दर्शन-आदतों में सुधार । रसानुभूति युक्त रंग व्यापार के रूप में नाट्य को देखने-समझने की परंपरागत आदतों का खंडन एवं पुरुष-वर्चस्व के प्रभाव से विकसित दर्शन आदतों की रूढ़िवादिता को तोड़कर नए दृश्यों की प्रयोगधर्मिता को सुविन्यस्त करना स्त्रीवादी रंगमंच की मूल प्रवृत्तियों में प्रमुख है ।
7. रंगमंच की अन्यान्य पहलुओं में स्त्री उपस्थिति की स्थापना । नाट्य-रचना, निर्देशन, अभिनय, रंग-क्रिया, तकनीकी कार्य-व्यापार आदि रंगमंच से जुडी सभी पहलुओं में स्त्री की निजी उपस्थिति की स्थापना स्त्रीवादी रंगमंच की विशेष प्रवृत्ति है ।
8. महिला रंग-मंडलियों की स्थापना । ऐसी रंग-मंडलियों की स्थापना जो स्त्रियों के लिए अपनी इच्छाओं के अनुसार स्वतंत्र रूप से कार्यरत होने का एक 'डेमोक्रेटिक स्पेस' प्रदान करने वाली हो ।

2.7 प्रदर्शनकारी स्त्री-देह की भाषा

मंच पर नाचनेवाली सुन्दर एवं लावण्य युक्त स्त्री-देहों का आस्वादन हमारी संस्कृति द्वारा निर्मित दृष्टिगत व्यवहारों में प्रमुख होता है । स्त्री देह के सन्दर्भ में देखा जाय तो इसे रंगमंचीय सौन्दर्य संकल्पनाओं का ही आधारभूत तत्व माना जा सकता है । स्त्रीत्व के तथाकथित मानदंडों का अनुसरण करने वाले अंगों के चाल-चलन एवं मीठी आवाज़ से युक्त हसीन स्त्री-देह को आस्वादन के लिए योग्य आदर्श रूप माना गया है । देह चाहे असुंदर ही क्यों न हो फिर भी यदि स्त्रीत्व की तथाकथित लावण्य संकल्पनाओं का अनुसरण करनेवाली हो तो वह आस्वादन के लिए लायक मानी जाती हैं । इस प्रकार की एक दृष्टिगत आदत के द्वारा निर्मित सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से मंच पर आने वाली अभिनेत्रियाँ भी सौन्दर्य के इन परंपरागत नियमों का पालन करने वाली देहों से संपन्न होती हैं । यहाँ पात्र के चरित्र या स्वभाव के अनुसार अभिनय या संवाद प्रस्तुत करने से भी अधिक प्रधानता मंच पर प्रदर्शित स्त्रियों की देहों की होती हैं जो स्त्रीत्व की नियमित सौन्दर्य संकल्पनाओं का अनुसरण करने वाली हो । आस्वादक भी इसी की मांग करते हैं । सुन्दरता के मानदंडों का पालन न करने वाले पुरुष देहों को एक हद तक प्रेक्षक स्वीकार करते हैं, परन्तु उस प्रकार की स्त्री देह को मानने के लिए वे कदापि तैयार नहीं होते । यही हमारी दर्शन आदत है । अपनी असुंदर देह को मंच पर मात्र हास्य रस के उत्पादन के लिए उपयुक्त करने पर ही मंच पर ऐसी स्त्री-देह अपना स्थान प्राप्त कर सकती है ।

देह एक ऐसा फलक है, जिस पर संस्कृति तथा सत्तात्मक संबंधों का चिह्नन होता रहता है । इस कारण से ही देह में लिंग-समुदाय-वर्ग के भेदों का प्रतिफलन पाया जाता है । इसलिए सत्ता को तोड़ने तथा संस्कृति को बदलने के लिए देह में चिह्नित मुद्रणों को बदलना पड़ता है । रंगमंच पर देह का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है । स्त्री देह जो लिंग्परक वर्चस्व का संकेत होती है, वह तो हमेशा पुरुष-वर्चस्वी दृष्टि में डूब जाती है तथा विचार संप्रेषण और भावाभिव्यक्ति में अवरोध खडा

करती है । इसी कारण से ही स्त्रीवादी रंगमंच में कार्यरत रंगकर्मी एक नवीन देह-भाषा की खोज में लगी हुई हैं । स्त्रीवादी रंगमंच के द्वारा किये गए देह-भाषा के पुनर्निर्माण के प्रयोग-कार्यों ने प्रचलित स्त्रीत्व की संकल्पनाओं को तोड़ने की कोशिश की है ।

दूसरे शब्दों में कहें तो लिंग-वर्चस्व पर आधारित संस्कृति के अनुसार रूपायित तथा कई नियमों से नियंत्रित होती है स्त्री देह । मगर स्त्रीवादी रंगमंच के विशेष स्पेस में प्रदर्शनकारी देह के रूप में स्त्री-देह लिंग वर्चस्व के चिह्नों को तोड़कर एक प्रतिदृश्य-संस्कृति एवं नवीन सौन्दर्यबोध के निर्माण की कोशिश में लगी हुई हैं । अमरीका के प्रमुख रचनाकार एवं कला आलोचक लूसी लिप्पार्ड (Lucy Lippard) ने अपनी पुस्तक 'The pains and pleasures of Rebirth : women's body Art' में सूचित किया है कि जब एक स्त्री अपनी देह को अपने कला-कर्म में शामिल करती है तो उसका मतलब होता है वह स्त्री अपने स्वत्व को स्थापित कर रही है । इससे उसकी देह 'ऑब्जेक्ट' से 'सब्जेक्ट' के स्थान को ग्रहण करता है । लूसी लिप्पार्ड (Lucy Lippard) के शब्दों में – "when women use their bodies in their art work, they are using their selves : a significant psychological factor converts their bodies or faces from object to subject."[1]

परंपरागत लावण्य संकल्पनाओं के आधार पर प्रस्तुत एक प्रदर्शनीय वस्तु के स्थान पर स्त्रीवादी रंगमंच में देह खुद एक प्रतिरोध के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है । स्त्रीवादी रंगमंच एक ऐसी परिकल्पना को सामने रखता है कि मंच पर प्रदर्शित स्त्री-देहों का आधार उसके शिल्पगत सौन्दर्य या लावण्य-तत्व नहीं होना चाहिए बल्कि देह की सामाजिक एवं राजनैतिक स्तर की विशेषताओं पर बल देने वाला होना चाहिए ।

---

[1] Anna Mcnay – The Body as Language : women and performance, www.studiointernational.com

2.8 स्त्रीवादी रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र

स्त्रीवाद एक ओर महिलाओं की मुक्ति की राजनीतिक प्रक्रिया है तो दूसरी ओर वह एक दर्शन और सौंदर्यशास्त्र भी है । स्त्रीवादी दर्शन की व्यापक पृष्ठभूमि को आधार बनाकर ही स्त्रीवादी रंगमंच की सौन्दर्यशास्त्रीय विशेषताओं पर विचार करना समीचीन होगा । स्त्रीवादी तत्वज्ञान 'यथार्थ' से संबंधित एक ऐसी दृष्टि सामने रखता है जो काफी अलग एवं नवीन है । पाश्चात्य/पुरुष केन्द्रित आत्मविषयपरक दर्शन ने 'आत्म' तथा 'वस्तु' के बीच के संबन्ध को द्वंद्वात्मक दृष्टि से देखने की कोशिश की । मूल रूप से ऐसी एक दृष्टि का विरोध करते हुए स्त्रीवाद ने आत्म तथा वस्तु के आपस के संबंध के रूप में विश्व को देखने की कोशिश की । सिद्धांत/प्रयोग, संस्कृति/प्रकृति, मन/तन, मानवीय/अमानवीय, राजनैतिक/वैचारिक आदि द्वंद्वात्मक संकल्पनाओं को नकारकर आत्म एवं वस्तु के बीच की जटिल पारस्परिकता के सहारे यथार्थ को व्याख्यायित करने की एक विशेष प्रणाली ही स्त्रीवादी विचारधारा का आधार है ।

रंगमंच के सन्दर्भ में मात्र स्त्री मुद्दों को नाट्य-रूप में रंगमंच पर प्रस्तुत करना स्त्रीवादी रंगमंच का हिस्सा नहीं है बल्कि वह एक ऐसा सौन्दर्य दर्शन है जो रचना, रंगभाषा, नाट्य-सिद्धांत आदि रंगमंच से जुड़े विभिन्न पहलुओं को समग्र रूप से पुनर्निर्मित करने में सक्षम होता है । नाट्येतर विभिन्न ज्ञान-विषयों से प्राप्त सामग्रियों आत्मसात करते हुए ही स्त्रीवादी रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र रूपायित हुआ है ।

1. नृवंशविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि से लिंगपरक एवं सांस्कृतिक ज्ञान का ग्रहण ।
2. भाषा शास्त्र से पाठ की स्त्रीवादी विश्लेषण पद्धति का ग्रहण ।
3. फिल्म थियरी से साइको सेमियोटिक कार्यप्रणाली जो रंगमंचीय प्रदर्शन के विश्लेषण के लिए उपयुक्त है, का ग्रहण ।

4. उत्तराधुनिक आलोचना, उत्तर संरचनावाद आदि सैद्धांतिक विचार तत्वों से कर्तृत्व संबंधी अध्ययनों का ग्रहण ।
5. विखंडनवाद से विचार-विमर्श का ग्रहण ।

इस तरह विभिन्न ज्ञान विषयों से स्वीकृत सामग्रियों के आधार पर स्त्रियों को कला के कर्तृस्थान पर प्रतिष्ठित करते हुए ही स्त्रीवादी रंगमंच के सौन्दर्शास्त्र का निर्माण हुआ है ।

सैद्धान्तिकों के मत में थियटर सेमियोटिक्स के द्वारा ही स्त्रीवादी रंगमंच के समकालीन सौंदर्यशास्त्र पर विचार किया जा सकता है । सामान्य रूप से यह कह सकते हैं कि सेमियोटिक्स एक ऐसी अध्ययन पद्धति है जो सामूहिक संरचना के अंतर्गत अर्थ-उत्पादन की प्रक्रिया को सूक्ष्म रूप से विचार-विमर्श करने में सक्षम होती है । सामूहिक संरचना के अंतर्गत उपस्थित संकेतों या चिह्नों के पारस्परिक संबंध से ही किसी विशेष अर्थ की उत्पत्ति होती है । प्रत्येक रंगमंचीय प्रस्तुति की संवेदन क्षमता अर्थात् प्रस्तुति किन-किन रूपों में अर्थ विशेष की निर्मिति व अभिव्यक्ति करती है उसी का अध्ययन थियटर सेमियोटिक्स की परिधि में आता है । किसी दृश्य संकेत का मंच पर व्यवहार तभी संभव होता है जब वाच्यात्मक अर्थ मंडलों का सृजन होता है । नाट्य-पाठ, नट/नटी, रंगस्थल, प्रकाश-योजना, ब्लोकिंग आदि विभिन्न तत्वों के समन्वय से जो अर्थ की उत्पत्ति होती है उसे रंगमंच का अभिधार्थ कह सकते हैं । इस अभिधार्थ का प्रेक्षक के सामूहिक अवचेतन से मिलकर रूपायित होने वाला जो अर्थ, सन्देश या भाव स्तर होता है उसे व्यंग्यार्थ कहा जा सकता है । किसी नाटक का सेट किस तरह एक संकेत के रूप में परिणत होता है तथा वह स्थल, काल, सामाजिक पृष्ठभूमि एवं भाव आदि का द्योतन कैसे करता है, ऐसी बातों को सेमियोटिक्स प्रकाश में लाता है । सेमियोटिक्स क्रिटिसिज्म एक ही रंगपाठ में अनेक पाठों को पैदा करता है । वे निम्नलिखित हैं –

1. नाट्य पाठ (नाटक साहित्य) जो कृति के रूप में पढ़ा जाता है ।

2. रंगपाठ (रंग प्रस्तुति) जो निर्देशक के द्वारा रिहर्सल के लिए बनाया जाता है ।
3. रिहर्सल पाठ (अभिनय आदि), जो अभिनेताओं के लिए उपयुक्त होता है ।
4. नाट्य-प्रस्तुति को देखकर जो पाठ (ध्वनि पाठ) प्रेक्षक द्वारा गृहीत होता है ।

इन चारों पाठों की अपनी-अपनी विशेषताएं एवं प्रधानता रहती है ।

किसी नाट्य-प्रस्तुति में अर्थ की उत्पत्ति मात्र मंच के प्रदर्शन पर सीमित नहीं होती है । प्रेक्षक के संयोग से ही वह पूर्णता की कोटि में पहुँच सकती है । प्रेक्षकों की लिंगपरक, वर्गपरक एवं वर्णपरक भिन्नताएं तथा विशेषताएं रंग-प्रस्तुति के अर्थ निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । सेमियोटिक्स की यह प्रपठन शैली स्त्रीवादी रंगमंच के अन्वेषण कार्यों में सबसे प्रमुख है । संकेतों में अन्तर्निहित सांस्कृतिक अर्थ स्तरों तक यह अन्वेषण पहूंचता है । किसी सांस्कृतिक संरचना के अंतर्गत निहित मूल्य, विश्वास, दृष्टिगत विशेषताएं आदि से संकेतों का अर्थ निर्धारित होता है । यह दृष्टि की वैचारिकता है । किसी विशेष सांस्कृतिक सन्दर्भ से उत्पन्न दृष्टि नाट्य पाठ का अर्थ, रंगपाठ की संरचना तथा प्रेक्षकीय अनुभूति का निर्माण करती है । यहाँ स्त्रीवादी रंगमंच प्रेक्षकीय स्त्री दृष्टि से रंगमंच की परंपरागत रूप संरचना को तोड़ता है ।

स्त्रीवादी रंगमंच के अनुसार किसी भी नाट्य-प्रस्तुति की अपनी राजनीतिक मान्यताएं अवश्य होती हैं । नाट्यपाठ से रंगपाठ तक के निर्माण की प्रक्रिया में ऐसे राजनीतिक हस्तक्षेप मौजूद रहते हैं, जो सांस्कृतिक एवं लिंगपरक हैं । उदाहरण के लिए शकेस्पियर का विख्यात नाटक रोमियो एंड जूलियट की प्रस्तुति को ले सकते हैं । इस नाटक के प्रस्तुतीकरण की तैयारी करते समय निर्देशक जूलियट के सौन्दर्य को समकालीन समाज में प्रचलित सौन्दर्य संकल्पनाओं से जोड़ने की कोशिश करता है । यही सौन्दर्य-संकल्पना नाट्य-प्रस्तुति में जूलियट की वेश-भूषा को निर्धारित करती है और इन्हीं सौन्दर्य-तत्वों को प्रधानता देने वाली रंगक्रियाएं एवं चाल-चलन के द्वारा निर्देशक अपने पात्रों को प्रेक्षक तक पहुँचाने की कोशिश करता है । पर इस

नाटक की रचना करते समय शेक्सपियर के मन में कोई ऐसे बालक अभिनेता मौजूद रहे होंगे जो उस समय के ग्लोब थियटर में स्त्री पात्रों की भूमिका निभाया करता था । इससे यह स्पष्ट होता है कि किसी नाट्य पाठ या उसके किसी पात्र-विशेष का अर्थ उस नाट्य-पाठ पर निर्भर नहीं होता है, बल्कि किसी विशेष सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अंतर्गत स्थित स्त्री संबंधी संकल्पनाओं एवं ज्ञान/सत्तात्मक संबंधों पर आधारित होता है । ऐसी अभिनेत्रियाँ जो देखने में सुन्दर (तथाकथित सौन्दर्य) नहीं होतीं हमेशा दुसरे दर्जे तक दबी जाने का कारण भी इसी नाट्य-पाठेतर लिंग राजनीति का प्रभाव ही है । लंबे-घने बाल, सफ़ेद रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, शारीरिक सौष्ठय आदि विशेषताएं प्रत्येक अभिनेत्री की योग्यता बन जाती है क्योंकि उसके पीछे का सौन्दर्यबोध पुरुष-कामनाओं से निर्मित होता है । रंगमंच पर देखे जाने वाले स्त्री-बिंब इसी निर्मिति के विविधमुखी रूप ही हैं ।

महिला सौन्दर्य संकल्पना के द्वारा रंगमंच पर किये गए इन पुनरन्वेषणों ने रंगभाषा तथा शरीर भाषा से संबंधित नवीन परिकल्पनाओं को विकसित किया । सैद्धांतिक तौर पर स्त्रीवादी रंगमंच पर होने वाले अन्वेषणों में सबसे प्रमुख हैं –

1. लिंगाधारित एवं पुरुषकेन्द्रित विचारधारा मंच पर स्त्री-बिंबों का निर्माण कैसे करता है ।
2. स्त्रियों के संबंध में समाज में प्रचालित रूढ़िवादिता, आचार-विचार, मूल्य आदि को आधार बनाकर निर्मित स्त्री-बिंबों की आलोचना ।
3. अभिनेत्री की शरीर-भाषा, रंग -चेष्टाएं आदि के स्वभाव का मनन एवं विश्लेषण ।

इस प्रकार रंगमंच और स्त्री के संबंध में विचार करने वाले स्त्रीवादी सैद्धांतिक निम्नलिखित मान्यताओं पर पहुंचते हैं ।

1. सत्ता एवं स्त्री के बीच का जो संबंध होता है उसी की झलक रंगमंच पर भी देखी जा सकती है ।

2. रंगमंच पर उपस्थित स्त्री ऐसा कोई याथार्थ्य नहीं है जो जैविक या प्राकृतिक होता है बल्कि उस याथार्थ्य से संबंधित कल्पित बिंब होती है ।
3. मंच पर उपस्थित स्त्री की अर्थ निर्मिति का निर्णय उसकी रंग-क्रियाओं पर निर्भर होता है, जो सांस्कृतिक उत्पन्न होता है तथा स्त्री और संस्कार के बीच के रिश्ते का प्रतिबिंब मात्र होता है ।

किसी भी रंगपाठ की निर्मिति मंच तथा प्रेक्षक के संयुक्त प्रक्रम से संभव होती है । मंच पर अभिनीत स्त्री-पात्र की अर्थ निर्मिति भी इसी तरह प्रेक्षक के संयोग से साकार होती है । मंच की संकेत व्यवस्था, प्रेक्षक एवं अर्थ तथा इन सबके बीच व्यवहृत ज्ञान । सत्तात्मक संबंध आदि समकालीन रंगमंच के विशेषकर स्त्रीवादी रंगमंच के सन्दर्भ में चर्चित एक संकीर्ण सौन्दर्यशास्त्रीय समस्या है । जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि मंच की जो संकेत व्यवस्था है वह पुरुष केन्द्रित दृष्टि से निर्मित होती है । स्थल, काल तथा रंग साधनों के समान मंच पर प्रदर्शित स्त्री-देह भी पुरुष की इच्छाओं के अनुसार व्यवस्थित होती है । स्त्री-देह के प्रति पुरुष में निहित जो अवचेतानात्मक यौनाकर्षण (desire) तथा वर्चस्व होते हैं, उनकी विशेष भूमिका मंच पर संकेतों के रूपायन में भी अवश्य होती है । इस प्रकार पुरुष-दृष्टि से मंच पर गठित स्त्री बिंबों का असल में स्त्रियों की अनुभूति तथा याथार्थ्य से कोई संबंध नहीं होता । प्रत्येक संस्कृति के अंतर्गत प्रारूपित स्त्रीत्व की प्रतिच्छाया मंच पर भी देखी जा सकती है । संक्षेप में कहें तो प्रेक्षक रंगमंच पर अभिनय करने वाली स्त्री को पुरुष-दृष्टि के सहारे देखा करते हैं ।

प्रस्तुतीकरण एवं आस्वादन दोनों से संबंधित होने वाली इस अर्थ-बिंब-निर्मिति की प्रक्रिया में स्त्री का स्थान दृश्यों को रूपायित करने वाले कर्तृत्व के रूप में नहीं होता बल्कि एक प्रदर्शनीय वस्तु के रूप में होता है । पुरुष के अवचेतन से अद्भुत दृष्टि ही स्त्री को प्रदर्शनीय-वस्तु बनाती है । कुल मिलाकर कहें तो पुरुष सत्ता पर आधारित ज्ञान एवं दृष्टि तथा अवचेतन से निर्मित रंगमंचीय क्रिया-कलापों में स्त्री

हमेशा विस्थापिता के रूप में उपस्थित होती है । इस प्रकार के एक सैद्धांतिक बोध को ग्रहण करते हुए स्त्रीवादी रंगमंच अपने सामयिक रंगमंच तथा उसके सौन्दर्यशास्त्रीय आधारों का पुनर्पाठ प्रस्तुत करता आ रहा है ।

2.9 स्त्रीवादी रंगमंच का स्वरूप

2.9.1 वैश्विक सन्दर्भ

बीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशक वैश्विक स्तर पर रंगमंच के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण समय रहा है जबकि स्त्रीवादी रंगमंच जैसी अर्थपूर्ण परिकल्पना प्रबल रूप से प्रतिष्ठित हुई । उसका आधार स्त्री-स्वाधीनता एवं समता से संबंधित विचार एवं बहस था । सन् 1968 के आसपास का समय अमरीका तथा यूरोप के लिए सामाजिक क्रांतियों का समय था । 1969 में प्रथम ब्रिटिश नेशनल विमन्स लिबरेशन की बैठक ऑक्सफ़ोर्ड में हुई । इसी समय अनेक स्त्री नाट्य मंडलियाँ भी स्थापित हुईं जो स्त्रीवादी विचारों से प्रेरित थीं । इंग्लैंड में स्त्रीवादी रंगमंच का प्रारंभ द विमेंस थिएटर ग्रुप (The women’s Theatre Group), द मोंस्ट्रस रेजिमेंट ऑफ़ विमेन (The Monstrous Regiment of women), मिज़िस वोर्थिंगटोंग्स डोटेर्स (Mrs. Worthingtong’s daughter’s) आदि रंग मंडलियों से माना जाता है । 1974 में स्थापित द विमेंस थिएटर ग्रुप (The women’s Theatre Group) के संस्थापक गण में प्रमुख थीं ऐनी एंगेल (Anne Engel), माइका नावा (Mica Nava) और जीन हार्ट (Jean Hart) । इन्होंने ऐसे नाटकों का मंचन किया जिसमें सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों को स्त्रीपक्षीय दृष्टिकोण से देखने-समझने तथा विश्लेषित करने की कोशिश की गयी थी । द मोंस्ट्रस रेजिमेंट ऑफ़ विमेन (Monstrous Regiment Theatre) की स्थापना 1975 में क्रिस बॉलर (Chris Bowler), लिंडा ब्रोटन (Linda Broughton), हेलेन ग्लाविन (Helen Glavin), गिल्ल्यन हन्ना (Gillian Hanna) एवं मेरी माक कस्केव (Mary Mc cuskev) के द्वारा हुई । इसके संस्थापक सदस्यों ने रंगमंच पर एक ऐसे क्रांतिकारी विकल्प बनाने की फैसला की थी जो महिलाओं के

लिए अभिनेताओं, लेखकों, निर्देशकों और डिजाइन व तकनीकी कार्यवाहकों के रूप में गंभीर अवसर प्रदान करेगा । इन कंपनियों ने पुरुषों को बाहर नहीं रखा था, बल्कि महिलाओं को मंच और नेपथ्य दोनों में प्रबल रूप से उपस्थित करने की कोशिश की थी ।[1] स्टेसी चार्ल्सवर्थ (Stacy Charlesworth), आनी एंजेल (anne Angel), जूली होल्लेड्ज (Julie Holledge), स्टीफन ले (Stephen Ley) एवं मागी विकिंसन (Maggie Wikinson) के द्वारा सन् 1978 में स्थापित मिज़िस वोर्थिंगटोंग्स डोटेर्स थिएटर कंपनी (Mrs. Worthingtong's daughter's Theatre Company) ने महिलाओं से संबंधित मंच एवं समाज पर निहित रूढ़-प्रारूपों तथा प्रतिनिधानों को तोड़ने की कोशिश की ।

प्रजनन संबंधी अधिकार, मातृत्व, अस्मिता, समलैंगिकता, स्वाधीनता, समता आदि विभिन्न महिला-मुद्दों को लेकर विभिन्न प्रदेशों में महिलाओं के द्वारा नाट्य प्रस्तुतियाँ होने लगीं जो दर्शकों के बीच काफी लोकप्रिय होने लगीं । सन् 1970 के आसपास रंगमंच के क्षेत्र में उपस्थित सजीव नाटककार थीं अनजालिको, लेसिंग, कारोल चर्चिल, पाठा जंस आदि । इन नाटककारों ने स्त्रीवादी विचारधारा से प्रेरित अनेक नाटक लिखे और उन नाटकों के प्रदर्शन स्त्री दर्शकों को प्रभावित करने में काफी सफल रहे ।

अमरीका में स्त्रीवादी रंगमंच का उदय मेगेन टेरी (Megan Terry) के द्वारा रचित विएट रोक (Viet Rok) (1966) नामक नाटक के प्रदर्शन से माना जाता है । वियत्नाम युद्ध की पृष्ठभूमि में युद्ध की विभीषिकाओं के खिलाफ आवाज़ उठाने वाले इस नाटक की प्रस्तुति जब न्यूयॉर्क के आंपन थियटर में हुई तब जनता इससे काफी प्रभावित हो गये । इसके साथ-साथ उनके बेबीज इन बिग हाउस (Babies in Big house), मोल्ली बैलीस ट्रवेल्लिंग सर्कस (Mollie Bailey's travelling circus) आदि अन्य नाटक भी दर्शकों के बीच काफी चर्चित रहे । इन नाटकों ने यह घोषित

[1] Sue-Ellen Case – Feminism and Theatre (1988), New York-Methyen

किया कि प्रचलित नैतिक मूल्यों के बदलाव से ही पुरुष-वर्चस्व पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को तोड़ा जा सकता है । मात्र आर्थिक मामलों पर केन्द्रित वैचारिक बहसों के स्थान पर इनके नाटकों ने वैयक्तिक एवं सामाजिक परिवर्तन पर बल दिया । जो आन श्मिड्मान (Jo Ann Schmidman), चर्चिल शांगे (Churchill, Shange), वेंडी केस्सिल्मान (Wendy kesselman), लूईस पेज (Louise page) जैसी नाटककार भी इसी कोटि की हैं । सन् 1972 में नार्थ अमरीका में 'विमन्स थियटर काऊनसिल' की स्थापना हुई । इसके साथ-साथ मौण्डन थियटर, ओमाहा मोजिक थियटर, लावेंडर सेल्लार, वुमंस प्रोजेक्ट, स्पिट ब्रिचस आदि अनेक अन्य रंग मंडलियों का भी उदय इसी समय में हुआ ।

सन् 1980 के बाद विश्व के विभिन्न देशों में अनेक महिला रंग मंडलियाँ स्थापित हुईं जो स्त्रीवादी रंगमंच जैसी महत्वपूर्ण परिकल्पना को प्रयोग में लाने की कोशिश करती रहीं । प्रत्येक देश में अपनी-अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं के अनुसार रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ होने लगीं । सदियों से स्त्रियों पर थोपे गए मूल्यों एवं प्रतिबंधों के प्रति प्रतिरोध खड़े करने वाले नाट्य-प्रदर्शनों ने पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था पर घोर प्रहार किया । एक नवीन महिला अभिकल्प की राजनैतिक प्रणाली को स्त्री-रंगकर्मियों ने सामने रखने की कोशिश की । जिसके आधार के रूप में उन्होंने स्त्री-देह को स्वीकारा ।

हेलेन सिक्सौस (Helene Cixous) जैसी ब्लैक फेमिनिस्ट नाटककारों ने पोर्ट्रेट ऑफ़ डोरा (Portrait of dora) जैसे नाटकों की रचना की । इनके द्वारा उन्होंने ब्लैक वुमन की विशेष समस्याओं को मंच पर लाने की कोशिश की । स्त्री होने के कारण तथा त्वचा का रंग काला होने के कारण उन्हें जो दोहरा शोषण झेलना पड़ता आ रहा है, उसको संबोधित करने वाले कई नाटक मंच पर प्रस्तुत हुए । इस प्रकार हाशिएकृत स्त्रियों की समस्याओं को आवाज़ देने वाले स्त्रीवादी रंगकर्म की

झलक लंडन, कैनडा, लैटिन अमरीका आदि देशों में भी व्यापृत हुई । मेगन टेरी (Megan Terry) की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनके लिए प्रेरणादायक रही –

"If we are not in trouble,

We are not in the right direction."[1]

पिछले दशक के स्त्रीवादी नाट्य प्रदर्शनों में सर्वाधिक उल्लेखनीय और शायद सबसे उग्र कहे जाने योग्य नाट्य प्रदर्शन है ईव एन्स्लेर (Eve Ensler) द्वारा रचित एवं प्रस्तुत 'द वागिना मोणोलोग्स' (The Vagina Monolouges) न्यूयॉर्क के हाम्मेरस्टेन बॉल रूम (Hammerstein Ball room) में दो हज़ार से अधिक दर्शकों के सामने प्रस्तुत यह नाटक 'ओबी' (Obei) पुरस्कार से सम्मानित भी है । ईव एन्स्लेर (Eve Ensler) ने दो हज़ार से अधिक स्त्रियों के साथ किये गए साक्षात्कारों को नाट्य-रूप में परिवर्तित करके इसे प्रस्तुत किया था । चार्ल्स इशेर्वूड (Charles Isherwood) (The Newyork Times) ने इस नाटक के संबंध में कहा है कि - "probably the most important piece of political thetre of the last decade."[2] विभिन्न स्त्रियों के द्वारा कहे गए मोणोलोग्स (monolouges) ही इस नाटक की अंतर्वस्तु है । प्रत्येक मोणोलोग (monolouge) महिलाओं के निजी अनुभवों के अन्याय पहलुओं से संबंधित है, जैसे सेक्स, प्रेम, बलात्कार, मासिक धर्म, महिला जननांग विकृति, हस्तमैथुन, जन्म, रतिक्षण आदि । यहाँ स्त्री की योनि को सशक्तीकरण के उपकरण तथा व्यक्तित्व के अंतिम मूर्तरूप के रूप में देखा गया है ।

इस नाटक की प्रस्तुति ने अमरीका तथा इंग्लैंड में काफी बहसें पैदा कीं । चीन, तुर्की आदि बीस से अधिक देशों में यह नाटक खेला गया । अमरीका के कॉलेजों में यह नाटक बहुत लोकप्रिय हो गया । अध्यापिकाओं तथा विद्यार्थियों के बीच यह

---

[1] डॉ. एन. थोमस कुट्टी - नम्मुड़े फेमिनिस्ट नाटक यत्नङल, पेन्नरङ, सं.डॉ. राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.94

[2] Charles Isherwood – The culture Project and Plays that make a Pitterence, The New York Times, 3 september 2006, www.nytimes.com

नाटक चर्चा का विषय बन गया । सन् 1998 में फरवरी 14 को वागिना मोणोलोग्स (Vagina Monolouges) की प्रस्तुति के साथ वी-डे (V-Day) नामक एक स्त्रीवादी संगठन का भी रूपायन हुआ । नाट्य प्रस्तुति से अर्जित धन को इस संगठन के सदस्यों ने स्त्रियों की समस्याओं के समाधान के हेतु खर्च किया । स्त्री-सशक्तीकरण के लिए कार्यरत महिला संघों से वी-डे (v-Day) के कार्यनिर्वाहकों ने संबंध स्थापित किया तथा उनके लिए आवश्यक आर्थिक सहायताएं भी करने लगी । अफगानिस्थान में तालिबानिज़म के बंधन में पडी स्त्रियों को मुक्त कराने तथा केनिया, क्रोएशिया जैसे अविकसित राष्ट्रों की निरक्षर स्त्रियों को साक्षर बनाने तथा कोसोवा और चीन में वंशीय आक्रमण में घायल स्त्रियों की सहायता भी वी-डे (V-Day) के कार्यवाहकों ने की । उनके लिए यह नाटक स्त्रीवाद का एक सक्रिय माध्यम था । इसके संबंध में ईव एन्स्लेर (Eve Ensler) ने व्यक्त किया है कि – "Vagina Miracles sightings and occurences. They go on. The greatest miracle, ofcourse is V-Day, an energy, a movement a catalyst, a day to end violence toward women-born, out of the vagina monolouges."[1]

द वागिना मोणोलोग्स (The Vagina Monolouges) एक ऐसा उग्र नाटक है जिसमें स्त्री देह का निर्णय करने वाली 'योनि' को निस्संकोच चर्चा का विषय बनाया गया है । उसके भौतिक तथा सौन्दर्यात्मक भावों को नाटक सूक्ष्म रूप से मंच पर लाता है । इसके साथ-साथ विक्टोरियन नैतिकता की कपटता पर भी यह नाटक घोर प्रहार करता है ।

कैनडा में स्त्रीवादी रंगमंच का श्रीगणेश पोल पेल्लेटेयर (Pol Pelletier) नामक अभिनेत्री से माना जाता है । सन् 1974 में उनके द्वारा स्थापित थिएटर एक्सपेरिमेंटल दे मोंट्रियल (Theatre experimental de Montreal) बाद में

---

[1] डॉ. एन. थोमस कुट्टी - नम्मुड़े फेमिनिस्ट नाटक यत्नङल, पेन्नरङ, सं.डॉ. राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.95

थिएटर एक्सपेरिमेंटल देस फेम्मेस (Theatre experimental des femmes) नाम से जाना जाने लगा । उन्होंने स्त्री-देह की अनंत संभावनाओं को मंच पर सृजनात्मक रूप में प्रयुक्त करने की कोशिश की । इसके लिए उन्होंने एशिया की क्लास्सिकल अभिनय पद्धति तथा मार्शियल आर्ट्स को सीखा । रूढ़िवादी तथा नैतिक मूल्यों को तोड़कर स्त्री देह की राजनीति को स्थापित करना उनकी नाट्य-प्रस्तुतियों का बुनियादी लक्ष्य था ।

लांस एंजल्स की प्रमुख नाट्य-कंपनी थी 'द वेट्रेस' (The Waitress) इस नाट्य संघ ने सामाजिक रूप में स्वीकृत स्त्री बिंबों को स्त्री समस्याओं से जोड़कर देखने की कोशिश की । इस कंपनी द्वारा प्रदर्शित बहुचर्चित नाटक है 'रेडी टू ऑर्डर' (Ready to order). इसमें वेट्रेस (waitress) का यूनिफ़ॉर्म पहनकर अभिनेत्रियाँ भोजन शाला के मेज़ के पास आती हैं और ग्राहकों से ऑर्डर लेती हैं । वेट्रेस (waitress) के यूनिफ़ॉर्म के सामने अनेक कृत्रिम स्तन बनाए हुए होते हैं । रसोई के बर्तन, चम्मच आदि के सहारे ताल लगाती हुई तथा तालियाँ बजाती हुई, गाती नाचती ये अभिनेत्रियाँ गलियों में मार्च करती थीं । इसके अलावा लेसी लोबोविच और लेस्ली लोबोविच के द्वारा रचित एवं प्रस्तुत बहुचर्चित नाटक है थ्री वीक्स इन मई (Three weeks in May) । एक कमरे के मध्य में एक पंखों वाली बकरी लटकाई गयी है । उसके आसपास चारों तरफ चार स्त्रियाँ खडी हुई हैं जिनकी नंगी देह लाल रंग से रंगी हुई है । नीचे ज़मीन पर यौन उत्पीडन का चित्र आलेखित है । अँधेरे कमरे में जब दर्शक आते हैं तब पृष्ठभूमि से ऐसी आवाजें उठती हैं जो बलात्कार एवं महिला उत्पीडन को उजागर करती हैं ।

स्त्री यौनिकता को विषय बनाने वाली स्त्रीवादी रंग प्रस्तुतियों में विकीहॉल का 'ओमिनस ऑपरेशंस (Ominous Operations) कारोली शीमान का 'इंटीरियर स्क्रॉल' (Interior Scroll) आदि प्रमुख हैं । इंटीरियर स्क्रॉल (Interior Scroll) में अभिनेत्री पूर्ण नग्न होकर स्त्री दर्शकों के सामने आती है । अपनी योनि में दबी कागज़

को बाहर निकालकर उसमें लिखित बातों को वह दर्शकों के सामने पठाती है । आंड्रियन पेप्पर का कैटेलिस्ट (catalyst) नामक नाटक भी इसी कोटि का है । स्त्रियों के संबंध में उनकी यौनिकता के संबंध में फ़ॉयड जैसे मनोविश्लेषकों ने जो संकल्पनाएँ सामने रखी हैं, उन पर प्रतोरोध करती हुई कारेन फिनली, हांली ह्यूस, लोरी आन्ड़ेर्सन जैसी रंगकर्मियों ने अपनी नाट्य-प्रस्तुतियाँ प्रस्तुत कीं । कारेन फिनली का 'द थियरी ऑफ़ टोटल ब्लेम' (The Theory of Total Blame) (1988), 'द कांस्टेंट स्टेट ऑफ़ डिजायर' (The constant state of Desire), 'शट अप एंड लव मी' (shut up and love me) आदि इस कोटि के दूसरे नाटक हैं । वंशीयता, राजनीति, कर्तृत्व आदि पर प्रश्न चिह्न लगाने वाली अन्ना डीवर स्मिथ की 'फायर्स इन द मिरर, ट्वाईलाईट : लोस एंजेलस' (Fires in the mirror, Twilight : los angels) (1992) आदि नाट्य-प्रस्तुतियाँ काफी लोकप्रिय एवं बहुचर्चित रहीं । संक्षेप में कहें तो इन स्त्रीवादी रंगकर्मियों की नाट्य-प्रस्तुतियाँ पारंपरिक तथाकथित रंगमंच, अभिनय शैली, रंग क्रियाएं एवं अंतर्वस्तु को तोड़कर स्त्री-पक्षीय नज़रिए से एक नवीन रंग-शैली को स्थापित करने में सफल हुई है । स्त्रीवादी रंगमंच जैसी परिकल्पना को परिपुष्ट करनेवाली ये नाट्य-प्रस्तुतियाँ रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व को तोड़ने में काफी सक्षम रही हैं ।

2.9.2 भारतीय परिदृश्य

स्त्रीवादी रंगमंच का भारतीय परिदृश्य अपने में अनन्य एवं अन्यान्य विशेषताओं से संपन्न है | भारत में सामजिक स्तर पर जब स्त्री सशक्तीकरण एवं स्त्री मुक्ति पर विचार विमर्श शुरू हुआ तब उसका प्रभाव साहित्य, कला तथा अन्य सृजनात्मक माध्यमों में पड़ने लगा | रंगमंच का क्षेत्र भी इससे अछूता न रहा| भारतीय रंगमंच के तथाकथित पुरुष केंद्रित स्वरुप में स्त्री स्वत्व की सही पहचान एवं स्त्री पक्षीय नज़रिए का अभाव सालों से मौजूद रहे है | इस स्थिति में परिवर्तन लाने के विशेष उदेश्य से स्त्रीवादी विचारों से प्रभावित भारत के महिला रंगकर्मियों ने विभिन्न

कार्यक्रमों का आयोजन किया | महिला रंगकर्मियों के द्वारा संचालित इन कर्यव्यपारों से भारतीय रंगमंच का पुरुष प्रधान परिदृश्य ही बदल जाने लगा | भारत के संदर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच की अवधारणा क्या है उसका स्वरूप किस प्रकार है आदि बातों को स्पष्ट रूप से कहना काफी मुश्किल है । क्योंकि भारतीय रंगमंच पर हुए महिला हस्तक्षेपों का कोई एकमुखी रूप नहीं पाया जा सकता । प्रमुख रंगकर्मी रंग इतिहासकार तथा रंग आलोचक सजिता मठात्तिल ने व्यक्त किया है कि – "मेरी राय में स्त्रीवादी रंगमंच के रूप, रंग भाषा, शैली आदि को रूपायित करने की रीति में एकरूपता होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि महिला रंगकर्मियों में प्रत्येक का अनुभव स्तर विभिन्न होता है । उदाहरण के लिए केरल के सन्दर्भ को हम ले सकते हैं । यहाँ अमेच्वर एवं प्रोफेशनल थियटर दोनों में व्यापृत, स्कूल ऑफ़ ड्रामा से शिक्षित तथा विश्व के विभिन्न प्रदेशों में नाट्य प्रस्तुतियां करने वाली श्रीलता, केरल में रहकर महिला रंग मंडली चलाने वाली सी.वी.सुधी और राजराजेश्वरी, केरल के बाहर रहकर रंगकर्म में कार्यरत जे.शैलजा एवं सजिता मठात्तिल तथा अपने गाँव में रहकर साधारण लोगों के बीच नाट्य प्रस्तुति करने वाली के.वी.श्रीजा इन सभी को एक ही रूप और शैली में नाट्य कार्य करना कहाँ तक संभव होता है ? मेरी दृष्टि में स्त्रीवादी रंगमंच वह है जो हम सभी महिला रंगकर्मियों को एक साथ बाँधने वाला एक सूत्र है । वहाँ तक पहुँचने के रास्ते भिन्न होंगे । प्रत्येक की नाट्य दृष्टि व रंग शैली में अंतर ज़रूर होगी । जो भी नाट्य संस्था को आप लीजिए उसकी स्थिति ऐसी ही होगी । उदाहरण के लिए राष्ट्रीय व निजी रंगमंच की खोज में कार्यरत नाट्याचार्य हबीब तनवीर, केरल के नाट्याचार्य कावालम नारायण पणिक्कर, महाराष्ट्र का विजय तेंदुलकर, कोलकत्ता का शंभू मित्र, मणिपुर का रतन थियम आदि ने अपनी-अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों पर खड़े रहकर ही भारतीय नाट्यभाषा रचने की कोशिश की थी । सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर हम यह समझ सकते हैं कि इनके रास्ते अलग-अलग थे । फिर भी इन सभी को एक सूत्र में बाँधने वाली बात वह थी कि इन सभी

के नाट्य कार्य उपनिवेशी सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ हुए भारतीय प्रतिरोध थे ।"[1] भारत के संदर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच की अवधारणा क्या है उसका स्वरूप किस प्रकार है आदि बातों को स्पष्ट रूप से कहना काफी मुश्किल है । क्योंकि भारतीय रंगमंच पर हुए महिला हस्तक्षेपों का कोई एकमुखी रूप नहीं पाया जा सकता । प्रमुख रंगकर्मी रंग इतिहासकार तथा रंग आलोचक सजिता मठात्तिल ने व्यक्त किया है कि – "मेरी राय में स्त्रीवादी रंगमंच के रूप, रंग भाषा, शैली आदि को रूपायित करने की रीति में एकरूपता होने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि महिला रंगकर्मियों में प्रत्येक का अनुभव स्तर विभिन्न होता है । उदाहरण के लिए केरल के सन्दर्भ को हम ले सकते हैं । यहाँ अमेच्वर एवं प्रोफेशनल थियटर दोनों में व्यापृत, स्कूल ऑफ़ ड्रामा से शिक्षित तथा विश्व के विभिन्न प्रदेशों में नाट्य प्रस्तुतियां करने वाली श्रीलता, केरल में रहकर महिला रंग मंडली चलाने वाली सी.वी.सुधी और राजराजेश्वरी, केरल के बाहर रहकर रंगकर्म में कार्यरत जे.शैलजा एवं सजिता मठात्तिल तथा अपने गाँव में रहकर साधारण लोगों के बीच नाट्य प्रस्तुति करने वाली के.वी.श्रीजा इन सभी को एक ही रूप और शैली में नाट्य कार्य करना कहाँ तक संभव होता है ? मेरी दृष्टि में स्त्रीवादी रंगमंच वह है जो हम सभी महिला रंगकर्मियों को एक साथ बाँधने वाला एक सूत्र है । वहाँ तक पहुँचने के रास्ते भिन्न होंगे । प्रत्येक की नाट्य दृष्टि व रंग शैली में अंतर ज़रूर होगी । जो भी नाट्य संस्था को आप लीजिए उसकी स्थिति ऐसी ही होगी । उदाहरण के लिए राष्ट्रीय व निजी रंगमंच की खोज में कार्यरत नाट्याचार्य हबीब तनवीर, केरल के नाट्याचार्य कावालम नारायण पणिक्कर, महाराष्ट्र का विजय तेंदुलकर, कोलकत्ता का शंभू मित्र, मणिपुर का रतन थियम आदि ने अपनी-अपनी सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों पर खड़े रहकर ही भारतीय नाट्यभाषा रचने की कोशिश की थी । सूक्ष्म रूप से अध्ययन करने पर हम यह समझ सकते हैं कि इनके रास्ते अलग-अलग थे । फिर भी इन सभी को एक सूत्र में बाँधने वाली बात वह थी कि इन सभी

---

[1] सजिता मठात्तिल- स्त्रीयुदे नाटक भाषा, भाषा पोशिनी पत्रिका, मार्च 2009, पृ.26-27

के नाट्य कार्य उपनिवेशी सांस्कृतिक वर्चस्व के खिलाफ हुए भारतीय प्रतिरोध थे ।"[1] भारतीय सन्दर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच एक कलात्मक कदम होने के साथ साथ एक सामाजिक कार्यव्यापार भी था| समाज में परिव्याप्त पुरुष सत्ता की जड़ों को तोड़ने केलिए उपयुक्त एक सशक्त माध्यम के रूप में भी रंगमंच प्रयुक्त होने लगा| सन् १९७० के पश्चात के समय में भारत में परिव्याप्त विभिन्न प्रयोगधर्मी रंगकर्म तथा स्त्रीवादी विचारधारा की नवीन चेतना के विकास के साथ ही भारत में स्त्रीवादी रंगमच जैसी विशेष परिकल्पना का विकास हुआ है| सालों से, मात्र एक प्रदर्शनीय वस्तु के रूप में भारतीय रंगमंच पर उपस्थित स्त्री की छवि को बदलने केलिए महिला रंगकर्मियों ने ऐसी रंगमंचीय प्रस्तुतियों का रूपायन किया जो स्त्रीवादी विचारों से परिपुष्ट है तथा पितृसत्ता की जड़ों को तोड़ने में समर्थ भी है| इसके साथ साथ महिला रंगकर्मियों ने रंगमंच पर स्त्री की अस्मिता को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करने की अदम्य कोशिश भी करने लगी| भारत में स्त्रीवादी रंगमंच के विकास में सबसे महत्पूर्ण भूमिका महिला निर्देशकों ने ही निभायी है| क्योंकि "निर्देशक ही वह केन्द्रीय सूत्र है जो नाट्य प्रदर्शन के विभिन्न तत्वों को पिरोता है और उनकी समग्रता को एक समन्वित बल्कि सर्वथा स्वतंत्र कला-रूप का दर्जा देता है| सार्थक प्रदर्शन में नाटक जिस रूप में दर्शक के पास पहुँचता है, वह बहुत कुछ निर्देशक के कलाबोध, सौंदर्यबोध, और जीवनबोध को ही सूची करता है| निर्देशक ही यह निर्णय करता है कि नाटक के विभिन्न अर्थ स्तरों में से कौन-स एक या कुछेक उसके प्रदर्शन केलिए, और उस प्रदर्शन के माध्यम से उसकी अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति केलिए प्रासंगिक और सार्थक और केन्द्रीय है|" (नेमीचन्द्र जैन, निर्देशक, नाटक के सौ बरस, सं. अजीत पुष्कल, पृ. ३४४) अतः जब महिलाएं नाट्य-निर्देशक के रूप में रंगमंच के क्षेत्र पर उतर आने लगी तब रंगमंच का पुरुष केंद्रित स्वरुप ही बदलने लगा| महिला निर्देशकों ने स्त्री मुद्दों पर केंद्रित विषयवस्तुओं को अपनी रंगप्रस्तुती केलिए

---

[1] सजिता मठातिल- स्त्रीयुदे नाटक भाषा, भाषा पोशिनी पत्रिका, मार्च 2009, पृ.26-27

चुन लिया तथा पूरे रंगमंच के रूप-विधान में निहित पुरुध वर्चस्व को चुनौती भी दिया| सामाजिक व्यवस्था की संरचना में निहित पुरुष-केन्द्रिता को समस्याग्रस्त करते हुए उसे रंगमंच के माध्यम से चुनौती देना, स्त्री सशक्तीकरण के महत्त्व को ऊपर उठाना, सामान्य जनता के सामने स्त्री की समस्याओं को प्रस्तुत करना, स्त्रीवादी विचारधारा को समाज में प्रतिष्ठित करना इत्यादि विशेष उद्देशों को आत्मसात करने केलिए अनेक नाट्य-कार्यव्यापार भारत के विभिन्न भाषाई रंगमंचों में होने लगे| दिल्ली में कार्यरत अनुराधा कपूर, त्रिपुरारी शर्मा, अमाल अल्लाना, मया राऊ बंगाल में कार्यरत उषा गांगुली, पंजाब में कार्यरत नीलम मानसिंह चौधरी, कर्णाटक में कार्यरत बी जयश्री, तमिल नाडू में कार्यरत मंकई, जीवा, महाराष्ट्र में कार्यरत रसिका अगाशे, केरल में कार्यरत सी वी सुधी, सजिता मठत्तिल, सुरभि आदि महिला रंगकर्मी स्त्रीवादी रंगमंच की दिशा में काफी सजीव है| इसके साथ साथ पारंपरिक रंगमंच के क्षेत्र में स्त्रीवादी हस्तक्षेपों को उजागर करने वाली रंगकर्मियों में उषा नंङियार, कलामंडलम गिरिजा, जी इंदु, कपिला वेणु, हरिप्रिया नम्बूतिरी, रंजिनी सुरेश, गीता वर्मा, तीजन बाई, ऋतु वर्मा आदि प्रमुख है| स्त्रीवादी विचारों से प्रभावित इन सभी रंगकर्मियों ने अपने नाट्य-प्रदर्शनों के माध्यम से स्त्री की अस्मिता को स्थापित करने की कोशिश की है तथा रंगमच की विषयवस्तु एवं रूप की जड़ों में निहित पुरुष वर्चस्व के तत्वों को तोड़ने का प्रयास भी किया है| भारतीय रंगमंच पर रूढ़ हो गए स्टीरियोटाइपस को तोड़कर स्त्री-स्वत्व की नैसर्गिक चेतना को अभिव्यक्त करने में इन रंगकर्मियों के नाट्य-प्रदर्शन सफल होते हुए दिखाई देते है|

2.10 निष्कर्ष

मानवीय संवेदनाओं एवं भावनाओं की आधार भूमि है रंगमंच । किन्तु पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित रंगमंच, स्त्री को अपनी संवेदनाओं को प्रकट करने में बाधा-स्वरूप उपस्थित हो जाता है । नए सिरे से स्त्रीत्व की स्थापना एक आन्दोलन के रूप में जब बाहरी जगत में स्वीकार होने लगी तो उसकी प्रतिध्वनियाँ रंगमंच में

भी मिलने लगीं । स्त्रीपक्षीय चिंतन ने रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व की कटु आलोचना प्रस्तुत की तथा उसके एक-एक अंतर्विरोध को सामने रखा । स्त्रीवादी कला-चिंतकों व रंग-सैद्धान्तिकों ने रंगमंच के एकांकी लिंग-भेदीय प्रतिमानों की तीखी आलोचना की तथा स्त्रीवादी रंगमंच जैसी एक नवीन परिकल्पना की सार्थकता पर विचार भी किया । इस स्त्रीवादी दृष्टिकोण ने रंगमंच के स्वरूप को ही बदल डाला । स्त्रीवादी रंगमंच रंगमंच पर रूढ़ हो चुकी पुरुष-सत्तात्मक मान्यताओं तथा परंपराओं के प्रति असंतोष व उससे मुक्ति का क्रांतिकारी स्वर है । वह पितृसत्तात्मक समाज के दोहरे मापदंडों, मूल्यों व अंतर्विरोधों को समझने व पहचानने की गहरी अंतदृष्टि भी प्रदान करता है । स्त्रीवादी रंगमंच एक ऐसा रचनात्मक रंगमंच है, जो रंगमंच संबंधी हमारी परंपरागत रूढ़िवादी अवधारणाओं पर सकारात्मक परिवर्तन लाने के विशेष उद्देश्य के साथ-साथ रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व को तोड़कर स्त्री के निजी स्वत्व को स्थापित करने का सृजनात्मक उपक्रम है । नाट्य रचना से लेकर नाट्य-निर्देशन, रंग-सज्जा, रंग-क्रिया, प्रकाश-वितान, अभिनय आदि रंगमंच से संबंधित हर पहलुओं पर स्त्रियों की निजी सक्रियता एवं भागीदारी स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी विशेषता है ।

अध्याय तीन

स्त्रीवादी रंगमंच का भारतीय परिपार्श्व : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

3.1 विषय प्रवेश

पिछले अध्याय में 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसे विशेष प्रयोग की संकल्पना, उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ, उसका स्वरूप एवं सौंदर्यशास्त्र के संबंध में सैद्धांतिक तौर पर विचार किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में स्त्रीवादी रंगमंच के भारतीय परिपार्श्व का परिचय दिया जाएगा । अर्थात् भारत के सन्दर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच जैसी विशेष परिकल्पना का उदय एवं विकास किस प्रकार हुआ है, उसका व्यावहारिक स्वरूप कैसा है तथा उसकी वर्तमान स्थिति आदि पर विचार किया जाएगा । आधुनिक भारतीय रंगमंच के प्रारंभिक दौर में प्रचलित मुख्यधारा के रंगमंच में महिलाओं की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । उस समय में मंच पर पात्रों का अभिनय पुरुष अभिनेताओं के द्वारा हुआ जाता था । "उन्नीसवीं सदी में भारत में नवजागरण के दौरान समाज-सुधार के आन्दोलनों के केंद्र में सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के प्रवेश का प्रश्न उभरकर सामने आया । उस समय हो रहे आन्दोलनों में स्त्रियों ने भाग लेना शुरू किया । यह वह दौर था जब स्त्रियों पर वर्षों से हो रहे अत्याचार पर समाज सुधारकों का ध्यान गया था और उन्होंने कई आन्दोलन किये, जिसमें न सिर्फ पुरुष, बल्कि खुद स्त्रियाँ भी खुलकर सामने आयी ।"[1] नवजागरण में समाज में स्वतंत्र अस्तित्व की धारणा परिलक्षित होती है, जिसमें व्यक्ति विकास की ओर उन्मुख होता है । इस समय न केवल पुरुष, बल्कि स्त्रियों में भी अपने अधिकारों के प्रति जागृत भाव पैदा होता है । यही भावना विकसित होकर एक चेतना का रूप ले लेती है, जो नवजागरण में स्त्री उत्थान का प्रमुख कारण बनती है । स्त्री उत्थान की इस नयी चेतना ने रंगमंच के क्षेत्र को भी प्रभावित किया । सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के प्रवेश होने के साथ-साथ रंगमंच की दुनिया में से भी स्त्रियाँ जुड़ने लगी । स्त्री पात्रों की भूमिका स्त्रियों के द्वारा ही निभाये जाने की क्रांतिकारी परिवर्तन विभिन्न भाषाई रंगमंचों में होने लगा । रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति तो बढ़ गयी फिर भी अपने

[1] अंजली पटेल - हिन्दी नवजागरण और स्त्री, स्त्रीकाल, मई 2017, www.streekaal.com

स्वत्व और अस्मिता को मंच पर लाना महिलाओं के लिए संभव नहीं हो पाया । मंच पर पुरुषों के द्वारा जो स्टीरियो-टाइप्स (steriotypes) बनाए गए थे, उनका पालन करने के लिए महिला कलाकार भी जबरदस्त हो गयी । इस स्थिति में बदलाव सन् 1940 के बाद के रंगकर्म में ही पाया जा सकता है । 1940 के बाद के नवीन रंगमंचीय आन्दोलनों में स्त्री की भागीदारी बढ़ गयी तथा स्त्री की समस्याएँ रंगमंचीय प्रस्तुतियों की विषय-वस्तु भी बन गयी । किन्तु इन गतिविधियों में स्त्रियों की भागीदारी होने पर भी रंगमंचीय प्रस्तुतियों का रूपायन पुरुषों के द्वारा ही हुआ करते थे । इसलिए स्त्रीत्व की सही पहचान एवं स्त्रीपक्षीय दृष्टि का अभाव इन रंगमंचीय प्रस्तुतियों में मौजूद था । और साथ ही पुरुष-वर्चस्व की जड़ों को तोड़ने की प्रवृत्ति भी रंगमंचीय प्रस्तुतियों में नहीं के बराबर थी । इस स्थिति में बदलाव सन् 1970 के बाद ही हुआ था । सन् 1970 के बाद का समय भारतीय रंगमंच के लिए एक ऐसा समय रहा है जबकि स्त्री रंगकर्मियों ने रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व की आलोचना करने लगी तथा पुरुष-केन्द्रित रंगमंच के समानांतर, बहुत कुछ उसे चुनौती देते हुए एक ऐसी रंगमंचीय संकल्पना को स्थापित किया, जिसे 'स्त्रीवादी रंगमंच' की अभिधा से अभिहित किया जा सकता है । इस प्रकार की एक नवीन संकल्पना का प्रभाव भारत के विभिन्न भाषाई रंगमंचों में देख सकते हैं । वैचारिक एवं व्यावहारिक स्तर पर स्त्रीवादी रंगमंच की इस नवीन संकल्पना को गहराई के साथ आत्मसात करने वाले भारतीय भाषाई रंगमंचों में हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच का सबसे महत्वपूर्ण एवं सजीव योगदान रहा है । अतः प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच की विशेषताओं, महत्ता एवं प्रासंगिकता को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है ।

3.2 1940 के पश्चात् का रंगमंचीय आन्दोलन एवं स्त्री चेतना

सन् 1940 के बाद का समय की एक भिन्न राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक वातावरण ने रंगमंच के क्षेत्र को भी प्रभावित किया । उस समय के रंग-आन्दोलनों ने भारतीय रंगमंच के परिदृश्य को एक नयी चेतना से भर दिया ।

वरिष्ठ रंग-आलोचक श्री आशीष त्रिपाठी के शब्दों में – “रंगमंच कला और मनोरंजन का साधन होने के अतिरिक्त समाज में कई सीधा हस्तक्षेप कर सकता है – ऐसा अब तक नहीं सोचा गया था । यद्यपि उन्नीसवीं-बीसवीं सदी की सभी रंग-धाराएं चाहे वह लोकमंच की हो या पारसी कंपनियों की या फिर अव्यावसायी शौकिया समूहों की, समाज की विसंगतियों, विद्रूपताओं पर छींटा-कशी करती थीं, राष्ट्रवादी-सुधारवादी-पुनर्जागरणीय आकांक्षाओं का प्रतिबिंबन उनमें होता था, फिर भी अंततः उनका सन्देश मनोरंजन की चासनी में इतना डूबा रहता था कि मनोरंजन ही अक्सर अंतिम सिद्धि माना जाता था ।”[1] 1940 के पश्चात् के समय में रंगमंच की संभावनाओं के प्रति रंगकर्मी सजग होने लगे । फलस्वरूप तत्कालीन रंगमंच प्रतिबद्ध चेतना से ओत प्रोत हो गया । इसमें समय-सापेक्ष कलात्मक अनुभूति एवं लोकापरता भी जुड़ने लगी ।

1940 के बाद का समय भारतीय रंगमंच के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण समय रहा है जबकि रंगमंच के क्षेत्र में एक विशेष प्रकार की स्त्री-चेतना का उदय देखने को मिलता है । डॉ. सुप्रिया पाठक के शब्दों में – “1930 के पश्चात् राष्ट्रीय आन्दोलन में भी वामपंथ की गूँज सुनाई देने लगी जिसके उपरांत जनवादी आन्दोलनों का दौर शुरू होता है । भारत में आज़ादी से पहले कई ऐसे जनवादी आन्दोलन खड़े हुए जिनसे जनवादी रंगकर्म, विशेषतः नुक्कड़ नाटक लेखन को बल मिला और इन नाटकों ने भी कई आन्दोलनों में अपना यथासंभव सहयोग दिया । धीरे-धीरे ही सही अब प्रगतिशील विचारों वाले परिवारों में स्त्रियों के रंगमंच पर अभिनय करने को लेकर जड़ता की स्थिति नहीं रह गयी ।”[2] इस समय में स्त्रियाँ अपने परिवार का परिपालन करने के साथ-साथ सामाजिक जिम्मेदारी भी अच्छे ढ़ंग से निभाने लगी । सामाजिक सक्रियता को दर्शाते हुए स्त्रियाँ रंगमंच के क्षेत्र में भी अपनी भागीदारी देती रही । स्त्री की समस्याओं एवं समाज में स्त्री की दोयम स्थिति आदि मुद्दों को

---

[1] आशीष त्रिपाठी - समकालीन हिन्दी रंगमंच और रंगभाषा, पृ.108

[2] सुप्रिया पाठक - स्त्रियाँ एवं रंगमंच : पारसी रंगमंच से नुक्कड़ नाटकों तक का सफ़र, हिन्दी समय, www.hindisamay.com

विषय-वस्तु बनाकर कई रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ भी सामने आयी । कई स्त्रियाँ अभिनय-कला को एक प्रोफशन के रूप में स्वीकारने लगी । इप्टा, पृथ्वी थियटर, के.पी.एस.सी, अंतर्जनसमाजम् जैसे हिन्दी तथा मलयालम क्षेत्रों में स्थापित विभिन्न रंगमंडलियों ने व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक रूप में सामाजिक मुद्दों पर केन्द्रित नाट्य-प्रदर्शनों का रूपायन करने लगा । इनमें महिला मुद्दों को केंद्र बनाकर रूपायित किये गए नाट्य-प्रदर्शनों ने समाज में प्रचलित स्त्री-विरोधी मानसिकता को बदलने का प्रयास किया । इसके साथ-साथ आर्थिक समस्याएँ, सामाजिक असमानताएं सर्वहारा वर्ग के जीवन एवं संघर्ष, राजनैतिक उथल-पुथल, आदि विभिन्न मुद्दों को रंगमंच के माध्यम से समाज के सामने कहा जाने लगा तथा जनता को जागरूक कराने लगा । साथ ही इस सामाजिक जिम्मेदारी को अपने कन्धों में लेती हुई व्यापक तौर पर स्त्रियाँ रंगमंच के विभिन्न पहलुओं में उपस्थित होने लगीं । इप्टा, पृथ्वी थियटर जैसी रंग-मंडलियों ने हिन्दी क्षेत्रों में अपनी सक्रियता स्थापित करने लगी तो मलयालम क्षेत्रों में के.पी.एस.सी, अंतर्जनसमाजम् जैसी रंगमंडलियों ने अपना योगदान देता रहा ।

3.2.1 इप्टा एवं महिलाएँ

हिन्दी रंगमंच के इतिहास को परखे तो पता चलता है कि अतिरंजनापूर्ण व्यावसायिक पारसी थियटर के मुकाबले सन् 1943 में देश के प्रगतिशील एवं जागरूक कलाकारों-साहित्यकारों द्वारा नयी चेतना और जागृति लाने के उद्देश्य से ‘भारतीय जन नाट्य संघ’ (IPTA) की स्थापना की गयी थी । द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् की परिवर्तित सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थिति में एक नयी सांस्कृतिक पहचान के निर्माण हेतु सामाजिक परियोजना के तौर पर साम्यवादी दल की सांस्कृतिक इकाई के रूप में ‘इप्टा’ का गठन किया गया था । इप्टा की पहली कोशिश थी कि एक ऐसे नए थियटर का निर्माण जो मुख्यधारा के थियटर की अपेक्षा अधिक यथार्थपरक हो । युद्धकालीन परिस्थितियाँ, देश के विभिन्न भागों में व्याप्त अकाल, आर्थिक बाधाएं और सर्वव्यापी आतंक, इन सबने इस नई रंगमंचीय विधा को अत्यंत

प्रासंगिक बना दिया था । वरिष्ठ रंग आलोचक जयदेव तनेजा के अनुसार "इप्टा के प्रदर्शनों का कलात्मक स्तर चाहे ऊँचा न रहा हो, लेकिन समकालीन समस्याओं को रेखांकित करने, जनरुचि का परिष्कार करने तथा रंगकर्म को लोकप्रिय बनाने में इसका योगदान निश्चय ही उल्लेखनीय है ।[1]

कला को जनोन्मुखी बनाने, तत्कालीन वैश्विक परिस्थितियों के प्रति जनता को कला के जारी जागरूक करने एवं संघर्ष के आह्वान की कोशिशों के साथ इप्टा का बड़ा योगदान सार्वजनिक स्पेस में महिलाओं को आगे लेकर आना भी था । श्रीमती शर्मिष्ठा साहा के अनुसार "इप्टा महिलाओं के लिए एक ऐसा सांस्कृतिक चबूतरा रहा जहाँ पहली बार महिलाओं को रंगमंचीय कलाकार के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई थी ।"[2] इप्टा ने अपनी प्रथम थियटर परियोजना 'नवान्न' में दो अभिनेत्रियों – तृप्ति मित्रा और शोभा सेन – को शामिल किया था । इनका प्रचार अलग किस्म की अभिनेत्रियों के रूप में हुआ था । ये दो प्रवीण अभिनेत्रियाँ बाद में दो प्रमुख नाट्य संघों की सह-आयोजक बन गयी थी, जो नाट्य-संघ धीरे-धीरे एक दूसरे में विलीन हो गए थे । इनके साथ-साथ चालीस के दशक में ज़ोहरा सहगल, गुल वर्द्धन, दीना पाठक, शीला भाटिया, शांता गांधी, रेखा जैन, रेवा रॉय, रूबी दत्त, दमयंती साहनी, उषा रशीद जहां, गौरी दत्त, प्रीती सरकार आदि चर्चित अभिनेत्रियाँ भी इप्टा से संबद्ध थीं ।

इप्टा से जुडी स्त्रियाँ अन्य कई रंग मंडलियों की अभिनेत्रियों के समान रंगमंच को अपना पेशा मात्र स्वीकार करने वाली नहीं थी, बल्कि अपनी सामाजिक तथा राजनीतिक सक्रियता के दौरान ही वे रंगमंच के क्षेत्र में उतर आयी थीं । ज्यादातर महिलाएँ ऐसे परिवारों के सदस्य थे जो काफी उदार तथा कम प्रतिबंधक थे । वे परिवार की लड़कियों को उच्च शिक्षा के लिए भेजने में संकोच नहीं करते थे । शीला भाटिया कहती है कि उनके घर में लड़कों और लड़कियों की परवरिश में कोई अंतर

---

[1] जयदेव तनेजा- आधुनिक भारतीय रंग्लोक, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2006, पृ.13-14

[2] Sharmishta saha- witnessing movement the women artists of the indian peoples theatre associations central squad, gender space and resistance, women and theatre in india, page.181

नहीं था । भोजन, कपडे और शिक्षा के कार्य में कोई भेदभाव नहीं था ।"[1] इसी प्रकार दीना गांधी का कहना है कि "वे एक ऐसे परिवार की सदस्य थी जहां उनके दादाजी जो प्रधानाध्यापक थे एक प्रगतिशील व्यक्ति थे और चाहते थे कि उनके घर की महिलाएँ शिक्षित हो ।"[2]

इप्टा में सक्रिय महिलाओं का जीवन संघर्षपूर्ण था । अपने माता-पिता (नेमीचन्द्र जैन-रेखा जैन) के साथ सेन्ट्रल ट्रूप में रही नटरंग पत्रिका की संपादक रश्मि बाजपेयी बताती हैं कि – "परंपरागत परिवारों से निकलने के बाद उन्होंने किस तरह अस्वीकार को झेला होगा यह कल्पना करना संभव नहीं है । लड़के-लडकियां साथ काम करते थे, ट्रूप पर जाते थे, जिस तरह की स्वतन्त्रता थी उसके बरक्स आज अधिक संकुचित हो गया है ।"[3] उस समय के माहौल में व्यावसायिक रंगमंच कंपनियों में काम करने वाली स्त्रियों की सामाजिक स्थिति निम्न होती थी । फिर भी इप्टा से जुडी स्त्रियों ने अपनी इच्छाओं के अनुसार मुक्त स्पेस में काम किया । लेकिन इनकी स्वीकार्यता सहज नहीं थी । इन्हें अपने सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश से भी संघर्ष करना पडा था । इनका जो संघर्ष है, वह आतंरिक और बाहर दोनों है ।

इप्टा की महिलाओं के संबंध में शोध करने वाली लता सिंह कहती हैं – "ये महिलाएँ राजनीति के रास्ते संस्कृति में आये, जब संस्कृति और राजनीति जुडती है तो ये ताकत मिलती है । इनके पुरुष साथियों ने भी मदद की । सबसे बड़ी खूबी थी कि संभ्रांत परिवार की इन महिलाओं ने कंफर्ट ज़ोन त्यागकर संघर्ष की इस प्रक्रिया में अपने को डीक्लास भी किया ।"[4] इप्टा की महिलाओं को न सिर्फ अपने परिवार और संस्कार की दहलीज़ लांघना एक बड़ी चुनौती थी, बल्कि इस नए माहौल में रहना और गुज़ारना भी कम चुनौतिपूर्ण नहीं था । इस परिवेश में उन्हें पुरुषों के साथ

---

[1] Latha singh – women of IPTA, iptanama.blogspot.in

[2] वहीं

[3] इप्टा में महिलाएँ - एक परिचय, rangvimarsh.blogspot.in

[4] इप्टा में महिलाएँ- एक परिचय, rangvimarsh.blogspot.in

कंधे से कंधा मिलाकर काम करना था । यहाँ प्राइवेसी या निजी स्पेस की कोई अवधारणा ही नहीं थी । इप्टा के पहले दौर में महिलाओं की सक्रियता प्रस्तुतियों में अपेक्षाकृत अधिक रही ।

अभिनेत्री-कथा का यह नया दौर संभवतः स्वयं अभिनेताओं की कथा के भीतर अपना स्थान बनाने के लिहाज़ से काम कर रहा था । यह नयी पीढ़ी जो थियटर की स्थिति को उभार रही थी शिक्षा, श्रेणी और सामाजिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से व्यावसायिक अभिनेताओं से काफी भिन्न थी । एक नए ऐतिहासिक थियटर आन्दोलन के रूप में इप्टा एक महत्वपूर्ण साधन था । इस संबंध में अभिनेताओं ने नामकरण की पद्धति के रूप में 'सांस्कृतिक कार्यकर्ता' को अपनाया, लेकिन अभिनेत्रियों ने बड़े मुश्किल से इसे अपनाया । 'अभिनेत्री' नाम आम तौर पर प्रचलित रहा ।"[1] इप्टा के द्वारा मंचित किये गए नाटकों में औपनिवेशिक काल के दौरान होने वाले स्त्रियों के शोषण तथा स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी सहभागिता मुख्य रूप से उभर आयी थी । हालांकि ये सभी कथानक राष्ट्रवाद के इर्द-गिर्द ही बुने जा रहे थे । नाटककार, स्त्रियों के प्रति होने वाली हिंसा को समुदाय अथवा राष्ट्र की प्रतिष्ठा के प्रति हो रही हिंसा के साथ जोड़कर देख रहे थे । दूसरे उन्होंने महिला कार्यकर्ताओं की छवि को उस बलिदानी रूप में प्रस्तुत किया जिसमें राष्ट्र की रक्षा के लिए वे अपने प्राण भी न्यौछावर करने को तैयार थी ।

3.2.2 पृथ्वी थियटर एवं महिलाएँ

पृथ्वी थियटर की स्थापना भारत के प्रख्यात तथा लोकप्रिय अभिनेता व रंगकर्मी पृथ्वीराज कपूर ने 15 जनवरी 1944 को किया । इसके द्वारा पृथ्वीराज कपूर तथा अन्य रंगकर्मियों ने हिन्दी रंगमंच को एक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया, साथ ही इप्टा के साथ सहयोग की नीति अपनाते हुए हिन्दी रंगकर्म की सामाजिक भूमिका

---

[1] डॉ. सुप्रिया पाठक - प्रतिरोष की संस्कृति, नुक्कड़ नाटक और महिलाएँ, हिन्दी समय, www.hindisamay.com

को भी पहचाना और स्पष्ट किया । वरिष्ठ रंग समीक्षक श्रीमती गिरीश रस्तोगी के शब्दों में "पृथ्वी थियटर का उदय एक ठोस कदम था – शुद्ध व्यावसायिक और भ्रमणशील मंच जिसने पारसी रंग – शैली से हटकर, सिनेमा से होड़ करते हुए नयी रंग-कला, अभिनय का आदर्श, तलाशकर नयी शैली-शिल्प के नाटक लिखवाये और बिना समझौता किये व्यावसायिक मंच का उदाहरण प्रस्तुत किया ।"[1]

इप्टा के समान पृथ्वी थियटर में भी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई है । पृथ्वीराज कपूर ने जब सन् 1945 में मंडली का पहला नाटक शकुन्तला का मंचन किया तब उसमें मुख्य पात्र शकुन्तला की भूमिका प्रसिद्ध अभिनेत्री अज़रा मुमताज़ ने की थी ।[2] मंडली की मुख्य अभिनेत्रियों में बहनें जोहरा सहगल तथा उजारा भट्ट प्रमुख थीं जिनका पूरा जीवन कला को समर्पित था । नृत्यांगना, रंगमंचीय एवं फ़िल्मी कलाकार जोहरा सहगल ने 14 साल पृथ्वी थियटर में काम किया । पृथ्वी थियटर में अपने प्रवेश के बारे में ज़ोहरा जी अपनी आत्मकथा 'करीब से' में लिखती हैं कि – "मैंने पृथ्वीराज जी से गुज़ारिश की कि वे मुझे अपनी कंपनी में शामिल कर लें । वे ऐसा नहीं करना चाहते थे, उनका कहना था कि वे मुझे तनख्वाह देने की हालत में नहीं हैं और वैसे भी मेरे लिए अपनी ही छोटी बहन के नीचे दर्जे में काम करना मुश्किल होगा, जो कि कंपनी की मुख्य नायिका थी, लेकिन मैं अपनी ज़िद पर अड़ी रही और थियटर करने के लिए इतनी आतुर थी कि एक दिन कामेश्वर (पति) और मैं पृथ्वीराज जी से मिलने उनके घर माहूँगा पहुँच गए । कामेश्वर ने उनसे कहा – "जब तक ज़ोहरा को अपनी कंपनी में शामिल नहीं करेंगे वो मुझे चैन से नहीं रहने देगी । पृथ्वीराज जी का स्वभाव ऐसा था कि वे कभी किसी को मना कर ही नहीं सकते थे, सो उन्होंने कहा कि ठीक है जब तक मेरे लायक अभिनय का कोई मौका नहीं निकलता मैं कंपनी में डांस-डायरेक्टर की जिम्मेदारी संभाल सकती हूँ । मैंने

[1] गिरीश रस्तोगी - बीसवीं सदी का हिन्दी नाटक और रंगमंच (लेख), बीसवीं सदी का हिन्दी साहित्य, सं. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ.142

[2] Sunil sethi- filmdoms first family, indiatoday.intoday.in

अक्तूबर, 1945 में औपचारिक रूप से पृथ्वी थियटर में कदम रखा ।"[1] इस तरह अपनी अदम्य इच्छा के कारण से ही जोहरा जी पृथ्वी थियटर में कदम रखी । अपनी बहन उजरा भट्ट को भी रंगमंच पर लाने का श्री ज़ोहरा जी को ही है । उजरा भट्ट जी के शब्दों में "मेरी बहन ज़ोहरा उदयशंकर के साथ काम कर रही थी । उदय जी को ज़रुरत थी एक लडकी की, उनकी अपनी बहन बीमार पद गयी तो ज़ोहरा ने अपनी बहन को चिट्ठी लिख दी...बस फिर मैं चली गयी लंदन और हो गया नाटक शुरू । फिर मैं पृथ्वीराज कपूर से मिली, फिर हमारी टीम बन गयी । हमने कई नाटक किये । पृथ्वी थियटर्स की तालीस से ही मैं यह समझ पायी कि लेखक तो लाइनें लिख देता है लेकिन आप उस रोल को किस तरह जज्ब करते हैं बात इससे बनती है ।"[2]

इनके साथ और भी अभिनेत्रियाँ पृथ्वी थियटर से जुडी हुई थी जिनमें इंदुमती, सतीदेवी, पुष्पा, कुलदीप, रानी आज़ाद, एरमेलीन, दिलशाद, कुमुद, शौकत कैफ़ी, कुमुदिनी, रज़िया, लीला[3] आदि प्रमुख थीं जिन्होंने पठान, गद्दार, किसान, पैसा, कलाकार, आहुति जैसे नाटकों में अपनी-अपनी भूमिकाएँ बड़ी सफलता से निभाई थीं । ज़ोहरा सहगल और उजरा भट्ट ये दोनों अभिनेत्रियाँ होने के साथ-साथ नाटकों में कला निर्देशन तथा नृत्य निर्देशन में भी अग्रणी थीं । पृथ्वीराज कपूर के निधन के बाद इस थियटर ग्रूप का कार्यभार संभालने वालों में दो महिलाओं का नाम उल्लेखनीय है – पहली पृथ्वीराज का बेटा शशि कपूर की पत्नी जेन्निफर कपूर तथा दूसरी जेन्निफर और शशि की बेटी संजना कपूर ।

संजना कपूर ने अपने माता-पिता और दादा की परंपरा को आगे बढाने के लिए अकेले ही पृथ्वी थियटर्स के यश को वापस लाने का प्रयास किया है । न्यूयॉर्क के हर्बर्ट बर्गफ स्टूडियो से थियटर स्टडीस में कोर्स पूरा करने के बाद लौटकर उन्होंने पूरा समय थियटर के लिए सौंपा । संजना जी के शब्दों में "मैं न्यूयॉर्क गयी, हर्बर्ट

---

[1] Zohra sehgal- close up : memories of a lite on stage and screen, page.40

[2] उजरा भट्ट की याद, www.hilwani.com

[3] डॉ. चंदूलाल दुबे - हिन्दी रंगमंच का इतिहास, पहला भाग, 1974, पृ.166-173

बर्गफ स्टूडियो में नौ महीने का कोर्स किया ड्रामा का । यह जीवन का बहुत बड़ा और दिलचस्प अनुभव था । यहाँ सारे टिचर्स प्रोफेशनल थे । वहाँ एक ख़ास बात यह थी कि प्रोफेशनल एक्टर्स भी हमें पढ़ाते थे । भारत लौटने के बाद महसूस किया कि मैं थियटर ही करना चाहती हूँ, भले ही इसमें संघर्ष करना पड़ें । दादा जी (पृथ्वीराज कपूर) ने पूरे भारते में घूमकर थियटर किया था । उन्हें विश्वास था कि थियटर से समाज में जागरूकता आएगी, इसमें अथाह ताकत हैं । थियटर में आप सीधे संवाद करते हैं, जो फिल्मों में संभव नहीं है ।"[1]

मलयालम रंगमंच के लिए 1940 के बाद का समय सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दों पर केन्द्रित नाट्य-प्रस्तुतियों के प्रचालन का समय रहा है । प्रगतिशील सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यव्यापारों में स्त्रियों ने भी अपनी महत्वपूर्ण योगदान निभाई । इन स्त्रियों के लिए रंगकर्म संस्था के द्वारा दी गयी जिम्मेदारी का भाग था । प्रगतिवादी विचारों को जनता तक पहुँचाने के विशेष उद्देश्य के साथ इन महिला कलाकारों ने सार्वजनिक स्थानों पर गीत गाना, अभिनय करना आदि कार्य-व्यापारों के लिए अपने आपको समर्पित किया । मीनाक्षी, अनसूया तथा मेदिनी ये तीनों कलाकारियाँ इनमें प्रमुख थीं । वामपंथी संस्था से जुड़ने तथा साम्यवादी विचारों से प्रभावित क्रान्ति गीतों को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने के कारण इन कलाकारियों को पुलिस ने गिरफ्तार भी किया था । इन सांस्कृतिक कार्य-व्यापारों के नैरन्तर्य के रूप में ही उस समय के महिला रंगकर्म को देखा जा सकता है ।

3.2.3 के.पी.ए.सी (केरला पीपिल्स आर्ट क्लब) और स्त्रियाँ

केरल के सन्दर्भ में के.पी.ए.सी. की स्थापना के पश्चात् ज़्यादा से ज़्यादा स्त्रियाँ रंगमंच से जुड़ने लगीं । "भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समय पर मुंबई में स्थापित 'इप्टा' की रंग-प्रेरणा की लहर केरल तक दौड़ आयी और इप्टा से पर्याप्त ऊर्जा लेकर

[1] संजना कपूर से प्रगति गुप्ता का साक्षात्कार, जागरण, www.jagaran.com

केरल पीपुल्स आर्ट्स क्लब (के.पी.ए.सी) कार्यरत हुई जो साम्यवादी आन्दोलन के सांस्कृतिक कार्यक्रम को प्रचलित करने के उद्देश्य से केरल में जनवादी नाट्य संवेदना का संचार करने लगी ।"[1] इस नाट्य-मंडली के कार्यक्रमों में केरल की स्त्रियाँ भाग लिया करती थी । उनमें प्रमुख थी के.पी.ए.सी. सुलोचना, के.पी.ए.सी सुधर्मा, विजयकुमारी, पी.के. मेदिनी, के.पी.ए.सी. ललिता, निलंबूर आइषा, शांता देवी, मीनाक्षी, अनसूया आदि । कई तरह की परिस्थितियों से आने वाली इन स्त्रियों को रंगमंच के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति को स्थापित करने के लिए कई प्रकार के संघर्षों से गुज़रना पडा । सुलोचना और सुधर्मा के.पी.ए.सी आने के पहले ही रंगकर्म से जुडी हुई थी । गायन एवं अभिनय कला में विशेष रुचि रखने के कारण ही ये कलाकारियाँ के.पी.ए.सी में आयी थीं । सुधर्मा कहती है कि "चूंकि कम्यूनिस्ट पार्टी से मेरा जो अटूट संबंध रहा है इसलिए ही मैं के.पी.ए.सी से जुड़ गयी । किन्तु नटी रूपी उस सामाजिक स्थिति को अपनाने में मैं हमेशा हिचकती थी । के.पी.ए.सी में आने के पहले मैंने जो रंग मंडलियों में काम किया था वहाँ मुझे बहुत सारी समस्याओं को झेलनी पडी ।"[2]

सुलोचना के लिए के.पी.ए.सी. से जुड़ने का कारण मात्र अभिनय कला के प्रति अपनी रुचि ही नहीं थी बल्कि अपने परिवार की गरीबी के कारण ही वे रंगमंच से जुड़ने का फैसला लिए । उनके शब्दों में – "मेरे पिताजी को अपनी बीमारी के कारण परिवार का संचालन करना प्रायः दुष्कर था । मेरा भाई भी बहुत छोटे उम्र का था । इसलिए परिवार वालों के भूख मिटाने के लिए मुझे के.पी.ए.सी में काम करना पडा ।"[3]

---

[1] डॉ. एम.एस. विश्वंभरन- मलयालम नाट्य-साहित्य की विकासयात्रा : ऐतिहासिक महत्त्व के कुछ पड़ाव, पृ.260

[2] सजिता मठत्तिल- मलयाला नाटका स्त्री चरित्रम्, पृ.114

[3] वहीं, पृ.115

कम्युनिस्ट पार्टी से अपना जो अटूट संबंध रहा है, उसी ने ही निलंबूर आइषा को के.पी.ए.सी से जोड़ दिया था । उनके लिए नाट्य-प्रदर्शन कम्युनिस्ट पार्टी के विचारों को जनता तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम था । निलंबूर आइषा कहती है कि – "के.पी.ए.सी से जुडी जो भी कलात्मक गतिविधियाँ हो वे हमारे लिए कम्युनिस्ट पार्टी को आगे बढाने के माध्यम थे । हमने गहरी धुप के दिन पैदल चलकर गाने गाते हुए पार्टी के विचारों का प्रचार किया । नाटक में खेलने से हमें जो पैसे मिलते थे, उसको पार्टी के प्रचार के लिए सौंपा करते थे । इससे हम पूर्ण रूप से संतृप्त भी थे ।"[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि के.पी.ए.सी से जुडी स्त्रियों ने रंगकर्म को अत्यंत गंभीरता के साथ स्वीकारा था । कला के प्रति, समाज के प्रति, पार्टी के प्रति इनकी जो आत्मसमर्पण की भावना है वह बिलकुल अद्वितीय एवं गौरवशाली है । रंगमंच पर अपनी उपस्थिति को स्थापित करने के लिए इन्हें कई प्रकार की कठिनाईयों से गुज़रना पडा था । इन स्त्रियों का आत्मबल तथा रंगमंच के प्रति जो लगाव है, वह बिलकुल सराहनीय है ।

3.2.4 अंतर्जनसमाजम् और उसकी नाट्य-प्रस्तुति

पूर्ण रूप से महिलाओं के द्वारा रचित, निर्देशित एवं अभिनीत केरल का पहला नाटक है 'तोषिलकेन्द्रत्तिलेक्क', जिसका प्रस्तुतीकरण अंतर्जनसमाजम् नामक केरलीय ब्राह्मण (नंपूतिरी) महिलाओं के दल के कार्यान्वयन में हुआ था । स्त्रीपक्षीय विचारों से प्रभावित इस नाटक की प्रस्तुति सन् 1948 में हुई थी । केरल के नंपूतिरी ब्राह्मण समुदाय की स्त्रियों के जीवन के यथार्थ और उनके द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं को मार्मिक ढ़ंग से विश्लेषित एवं अभिव्यक्त करने वाली यह नाट्य-प्रस्तुति निश्चित रूप से ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाली है ।[2] इस नाट्य-प्रस्तुति का

---

[1] सजिता मठत्तिल- मलयाला नाटका स्त्री चरित्रम्, पृ.117

[2] सजिता मठत्तिल- मलयाला नाटका स्त्री चरित्रम्, पृ.82

मूल उद्देश्य पुरुष-सत्ता के खिलाफ आवाज़ उठाना है । इस नाटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें स्त्री-सशक्तीकरण का कदम स्वयं स्त्रियों ने ही उठाया है । नवजागरण का समय नंपूतिरी समुदाय के लिए सुधार का समय था । कुरीतियों एवं रूढ़ियों से ग्रस्त अपने ही समुदाय को सुधारने के उद्देश्य से नंपूतिरी समुदाय के प्रगतिशील पुरुषों के नेतृत्व में कई नाटक उस समय खेले गए थे । वी.टी.भट्टतिरिप्पाड का 'अडुक्कलयिल निन्नु अरङत्तेक्क', एम.आर.बी का 'मरक्कुटक्कुल्लिले महानरकम्', प्रेमजी का 'ऋतुमती' आदि नाटक इसका उदाहरण है । इन नाटकों में स्त्रियों की समस्याओं को अवश्य संबोधित किया गया है । नाटक की विषय-वस्तु में स्त्री की समस्याओं का चित्रण अवश्य पाया जाता है, फिर भी उस समय में व्यावहारिक तौर पर रंगमंच से जुड़ना या अभिनय करना नंपूतिरी स्त्रियों के लिए वर्जित था । तोषिलकेन्द्रत्तिलेक्क नाट्य-प्रस्तुति इतिहास के पन्नों में इसलिए स्थान प्राप्त किया है कि इस नाटक से जुडी स्त्रियों ने पुरुष-सत्ता को चुनौती देते हुए सदियों से अपने ऊपर थोपी गयी रूढ़ियों के बंधन को तोड़कर बाहर आने का क्रांतिकारी कदम उठाया था । घर-परिवार तथा रसोई घर के चार दीवारी के भीतर तड़पने वाली नंपूतिरी स्त्रियों की पीडाएं एवं संघर्ष को यथार्थवादी ढ़ंग से अभिव्यक्त करने वाला यह नाटक स्त्रियों के नौकरी करने और पैसा कमाने के अधिकार पर बल देता है तथा सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर स्त्रियों को सशक्त बनाने का सराहनीय प्रयास था । इस नाटक की रचना एवं निर्देशन किसी एक स्त्री के द्वारा नहीं हुई थी बल्कि यह एक सामूहिक प्रयास का परिणाम था । पार्वती मनेषी, आर्या पल्लम्, देवकी नरिक्काट्टीरी, पत्तियिल प्रियदत्ता, सरस्वती अंतर्जनम आदि स्त्रियाँ इस नाटक के रूपायन में प्रमुख है ।

इस नाटक में छः स्त्री पात्र और दो पुरुष पात्र शामिल हैं । देवकी, पार्वती तथा सावित्री ये तीनों पात्र विद्यार्थिनियाँ हैं । स्वतंत्र होकर जीने की इच्छा और आदर्श-धीरता रखने वाली लडकियां हैं ये । और एक पात्र है देवसेना । साहस और आत्मसम्मान से युक्त देवसेना नाटक की सबसे सशक्त पात्र है । देवसेना की नानी

अमरत्ताट्टम्मा वात्सल्य और प्यार का मूर्तरूप है । और एक स्त्री पात्र भी है नाटक में, जिसका नाम है श्रीदेवी । भगवान की भक्ति में तल्लीन श्रीदेवी एक भोली-भाली साधारण स्त्री है । इसके अलावा नाटक में दो पुरुष पात्र भी है – वकील, जो एक कट्टर परंपरावादी आदमी है तथा अप्फन, जो सुधारवाद के नाम पर लड़कियों को बिकता है तथा उससे पैसा कमाता है । विद्रोही चेतना से संपन्न, प्रगतिशील विचारों के वाहक तथा स्वतंत्र इच्छाएं रखने वाली सशक्त महिलाओं के रूप में इस नाटक के चरित्रों को निर्मित किया गया है । आर्थिक सबलता की इच्छा रखने वाली स्त्रियों को रूढ़िवादी समाज की तरफ से जो-जो संघर्ष झेलना पडा उसी को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने वाली इस नाट्य-प्रस्तुति ने उस समय में काफी बहस उठाया था ।

इस नाटक के संबंध में प्रमुख विचारक एवं नाट्येतिहासकार सजिता मठत्तिल ने यों व्यक्त किया है कि- “तोषिलकेन्द्रत्तिलेक्क नाटक की प्रासंगिकता इसलिए है कि यह नाटक नयी स्त्री के मानसिक संघर्षों को सशक्त रूप से चित्रित करनेवाला है । अपनी स्वतंत्रता को, अपने अधिकारों का हनन करने वाले परिवार के माहौल को चुनौती देने वाली स्त्री पात्रों को प्रस्तुत करने वाले इस नाटक में स्त्रियों के सार्वजनिक जीवन, स्त्री-मुक्ति आन्दोलन आदि का चित्रण नाटक में शामिल किया गया है ।”[1]

3.3 नया रंग-आन्दोलन और स्त्रियाँ

भारत में रंगमंच को लेकर व्यापक स्तर पर सजगता सन् 1950 के बाद ही हुआ । स्वतंत्र भारत की सांस्कृतिक-सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ एक देशी रंगमंच की मांग करने लगी थी । छठे दशक में पहुंचते-पहुंचते रंगमंच संबंधी धारणाओं एवं विचारों में परिवर्तन होने लगा तथा रंगमंचीय आयामों के अन्वेषणों से नाट्य-दृष्टि और रंग-बोध का परिष्कार भी होने लगा । मशहूर रंगकर्मी श्री. इब्राहिम

[1] सजिता मठत्तिल- मलयाला नाटका स्त्री चरित्रम्, पृ.84

अल्कार्ज ने स्पष्ट ही बताया है कि – "भारतीय रंगमंच के विकास में छठा दशक अनेक कारणों से बहुत ही समृद्ध और महत्वपूर्ण कालों में एक माना जाएगा । सबसे स्पष्ट और सबसे प्रमुख कारण यही कि इन वर्षों में रंगकला की आनिशंगिक शाखाओं-नाट्य-लेखन अभिनय, निर्देशन, मंच-परिकल्पना एवं प्रकाश-व्यवस्था ने प्रतिभाओं के ज़रिए प्रौढ़ता प्राप्त कर ली । यह व्यापक उत्कर्ष आकस्मिक नहीं था, क्योंकि इसके पीछे धीमे लेकिन और समर्पित प्रयत्न के दस-पंद्रह वर्ष है ।"[1]

1950 के बाद जब रंगमंच में नया जागरण का सूत्रपात हुआ तो बहुत से विचारवान रंगकर्मियों ने प्रशिक्षण की सुविधाओं की कमी और आवश्यकता को अनुभव किया और इसके लिए मांग भी होने लगी । इसके फलस्वरूप सरकार की तरफ से रंगकर्म को प्रोत्साहन देने के लिए कई उपाय किये गए जिससे रंगमंच के क्षेत्र में सक्रियता बढ़ी । छठे दशक में राष्ट्रीय संगीत नाटक अकादमी तथा उसके अंतर्गत राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना से सारे देश की नाट्य-प्रतिभाएं एक साथ आयी । राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्थापना से रंगमंच के क्षेत्र में एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ तथा रंगकर्म को गौरव के साथ देखा जाने लगा । राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय ने संपूर्ण भारतीय रंगकला को उजागर कर उसे राष्ट्रीय स्वरुप देने का प्रयत्न भी किया ।

छठा दशक इस कारण से भी महत्वपूर्ण माना जा सकता है कि इस समय में पहले से भी अधिक व्यापक रूप में महिलाएँ रंगकला के क्षेत्र में उतर आयी । इप्टा तथा पृथ्वी थियटर के अलावा स्वातंत्र्योत्तर भारत में और भी कई नाट्य मंडलियों से ऐसी अनेक महिलाएँ जुडी हुई थी जिन्होंने अपने छोटे-छोटे प्रयासों के द्वारा भारतीय रंगमंच को जीवंत रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । उनमें श्री. कमलादेवी चट्टोपाध्याय का नाम उल्लेखनीय है, जो समाज सुधार एवं लेखिका होने के साथ-

---

[1] इब्राहिम अल्काजी- आज के रंग नाटक, टूटे आईने के प्रतिबिंब, आधुनिक भारतीय रंग परिदृश्य, जयदेव तनेजा

साथ श्रेष्ठ रंगकर्मी भी थीं । छठे दशक में संगीत नाटक अकादमी, एशियन थियटर इंस्टिट्यूट और एन.एस.डी जैसी कला-नाट्य संस्थाओं को साकार करने में उन्होंने जो भूमिका निभाई है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । उनके द्वारा स्थापित भारतीय नाट्य संघ (इन्डियन नॅशनल थियटर) जो अखिल भारतीय संस्था थी, की विभिन्न शाखाओं के कार्य के माध्यम से इस संस्था ने छठे दशक के प्रारंभिक वर्षों में पहली बार प्रदेश स्तर पर अव्यावसायिक रंगमंच को संगठित करने का कार्य किया । सन् 1950 के आसपास के समय में श्रीमती शील भरतराम ने कमलादेवी चट्टोपाध्याय और नंदिता कृपालिनी के साथ मिलकर श्रीराम सेंटर फॉर आर्ट एंड कल्चर की स्थापना की, जो भारतीय रंगमंच के विशेषकर हिन्दी रंगमंच के इतिहास में उल्लेखनीय है ।[1] उसी समय में श्रीमती शीला भाटिया ने श्री बलवंत गार्गी के सहयोग से दिल्ली आर्ट थियटर की स्थापना की जिसमें अधिकतर पंजाबी संगीतक प्रस्तुत हुआ करते थे ।

स्वतंत्र भारत में रंगमंच की नींव रखने वाली महिला रंगकर्मियों में बेगम कुदेसिया जैसी का नाम अद्वितीय है । पचास के दशक में जहां कमलादेवी चट्टोपाध्याय संगीत नाटक अकादमी, एशियन थियटर इंस्टिट्यूट और एन.एस.डी जैसी संस्थाओं को साकार करने में लगी थी वहीं, उनकी दोस्त बेगम कुदेसिया स्वतंत्र भारत की पहली पेशेवर थियटर कंपनी का सपना देख रही थीं । बेगम कुदेसिया जैदी ने इस्पात टाउन, कोयला व पत्थर खदान के इलाकों, औद्योगिक शहरों, रेलवे यार्ड और हर उस जगह नाटक किए जहां नए तरीके के नाटकों के दर्शक होते थे ।"[2] उन्होंने सन् 1954 में श्री हबीब तनवीर की सहायता से हिन्दुस्तानी थियटर की स्थापना की । इस संस्था द्वारा चेखव, दस्तयोवस्की, ब्रेख्त के नाटकों की प्रस्तुति के साथ-साथ भारतीय रंगमंच के निजी स्वरुप को खोजने का प्रयास करने के उद्देश्य

[1] सं. डॉ.रमेश गौतम - दिल्ली का हिन्दी नाटक और रंगमंच, आनंद प्रकाश शर्मा- दिल्ली के हिन्दी रंगमंच का इतिहास, पृ.204

[2] अतुल तिवारी- जिसने देखा भारत की पहली थियटर कंपनी का सपना, www.bbc.com, 1 फरवरी 2015

से शास्त्रीय नाटकों को भी मंचित किया गया । कालिदास का शाकुंतलम्, शूद्रक का मृच्छकटिकम् आदि के रूपांतर इसकी महत्वपूर्ण प्रस्तुतियाँ रहीं ।

उस ज़माने की सक्रिय एवं लोकप्रिय रंगकर्मी थी शांता गांधी, जिन्होंने ही पहली बार भास के संस्कृत नाटकों को मंच पर पुनर्निर्मित करने का ऐतिहासिक प्रयास किया था ।[1] 1965-66 में उन्होंने भास के माध्यम व्यायोग तथा ऊरुभंगम आदि नाटकों का प्रस्तुतीकरण किया, जो कावालम नारायण पणिक्कर और रतन थियम जैसे मशहूर रंगकर्मियों के प्रस्तुतीकरण के बिलकुल एक दशक पूर्व में था । बाद में शांता जी ने मुद्राराक्षस भगवदज्जुकम आदि संस्कृत नाटकों का भी निर्देशन करके हिन्दी में उन्हें प्रस्तुत करने का कदम उठाया । उनका नाम इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि उन्होंने श्री जयशंकर प्रसाद के नाटकों, जिन्हें पंडित अरंगमंचीय मानते थे, का भी मंचन सफलतापूर्वक किया ।

बिजया मेहता मुंबई में तथा शैलजा भाटिया दिल्ली में मशहूर निर्देशिका के तौर पर उभरी । रोशन अल्काजी उस ज़माने में वेशभूषा विश्लेषक थी, जो लंडन से कोस्ट्यूम डिजाईन सीख कर आयी थीं । उन्होंने वरिष्ठ निर्देशक इब्राहीम अल्काजी से शादी की तथा रंगकर्म में उनका सहयोग देती हुई अपना पूरा जीवन कला को समर्पित किया । उन्होंने 70 से अधिक नाट्य प्रस्तुतियों के लिए कोस्ट्यूम डिजाईन का कार्य किया । यहाँ तक कि नया थियटर जैसी नाट्य कंपनियां, जिनके साथ आम तौर पर हबीब तनवीर का नाम जोड़ा जाता है, वह भी मोनिका मिश्रा तनवीर के अथक प्रयासों एवं उनके कुशल प्रबंधन संयोजन के बिना खडा न हो पाता । जन नाट्य मंच का सदस्य श्री सुधन्वा देशपांडे के शब्दों में – "नया थियटर, जिसे भारतीय रंगमंच का क्रांतिकारी स्वरुप कहा जा सकता है, की स्थापना मोनिका मिश्रा के प्रयत्न की वजह से ही साकार हो उठी थी । थियटर कंपनी का पूरा संचालन उन्होंने ही सफलतापूर्वक निभाई थी । अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के लिए वे बिलकुल

[1] Aparna Bhargava dhavawadker- theatres of independence : drama, theory and urban performances in india since 1947, university of lowa press, 2005, page.167

प्रेरणादायक भी रही थी ।"[1] उस नाट्य कंपनी में तीन और महिलाएँ भी रही है । जिनका नाम उल्लेखनीय है । कलाकार के रूप में फिदाबाई तथा गायिका के रूप में मालाबाई और नगीन तनवीर ।

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय देश में अपनी तरह का अकेला संस्थान है । इससे निकले स्नातकों में अनेक ऐसी महिलाएँ है जिन्होंने देश-विदेश में अभिनय, निर्देशन तथा नाटक फिल्म से संबंधित अन्य क्षेत्रों में कई स्थान प्राप्त किये हैं । रोहिणी हटंगड़ी, उत्तर बावकार, सुरेखा सीकरी, अमाल अल्लाना, प्रेमा कारंत, किरण खेर, हिमानी शिवपुरी, कविता चौधरी, नादिरा बब्बर, अनीता कंवर, त्रिपुरारी शर्मा, कीर्ति जैन, दीपा मेहता, सीमा बिश्वास आदि अनेक नाम हैं जिन्होंने भारतीय रंगमंच को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं ।

आज़ादी के उपरांत कई अभिनेत्रियों यथा-तृप्ति मित्रा, शोभा सेन, केतकी दत्ता, सुलभा देशपांडे, सुधा शिवपुरी, सुरेखा सीकरी, सुनीला प्रधान, सोना चातार्जी, कृष्णा मिश्रा, स्वरूपा कुमारी, कमला पंजानी, मीरा शर्मा, कुंकुम टंडन, सुमन श्रीवास्तव, रमा पाण्डे, इला पाण्डे, ऊर्मिला नागर, कुमारी मधु, बेला, प्रमीला गुप्ता, साधना गुप्ता, दीपिका इत्यादि ने नाटकों में पुरुषवादी मानदंडों से परे जाकर महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाई । अब इस क्षेत्र में सिर्फ अभिनेत्रियों ही नहीं रह गई थी बल्कि महिला निर्देशिकाओं का भी एक समूह उभर रहा था । जिसमें शांता गांधी, कमला देवी, मोनिका मिश्रा आदि के अलावा विजया मेहता, ज्वॉय मिशेल, उषा गांगुली, रेखा जैन, प्रतिभा अग्रवाल, बी.जयश्री, कीर्ति जैन, वीनापानी पौचौ, सी.वी.सुधी, के.वी.श्रीजा, मंकई, जीवा, नीलम मानसिंह, माया राव, अनुराधा कपूर, अनामिका हक्सर, त्रिपुरारी शर्मा, अमाल अल्लाना इत्यादि नाम भी उल्लेखनीय हैं । इन्होंने न सिर्फ अभिनय प्रक्रिया को पुनर्व्याख्यायित किया बल्कि रंगमंच को कई ऐतिहासिक नाटक भी प्रदान किए ।

---

[1] Monika Misra Tanvir remembered, the hindu, Sunday, june 05, 2005.

स्वातंत्र्योत्तर समय में नाट्य रचना के क्षेत्र में भी स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बंगाली में महाश्वेता देवी नवनीता देव सेब, शानोली मित्रा, गुजराती में धिरुबन पटेल, वर्षा अदालिजा, मराठी में मालती बाई, बेडेकर, मुक्त दीक्षित, तारा बंरासे, ज्योति महापरोखर, सुषमा देशपांडे, प्रेमा कंटक, पंजाबी में मंजिपार कौर, हिन्दी में मन्नू भंडारी, मृणाल पाण्डेय, त्रिपुरारी शर्मा, उषा गांगुली, मीरा कान्त, मधु धवन, गिरीश रस्तोगी, विभा रानी, नादिरा बब्बर, तमिल में अन्बई, मंकई, तेलुन्गु में वोलगा, विनोदिनी मलयालम में के.वी. श्रीजा, सजिता मठत्तिल, राजराजेश्वरी, उर्दू में जमीला निशांत तथा अंग्रेज़ी में दीना मेहता, मंजुला पद्मनाभन आदि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय रंगमंच को परिपुष्ट किया।

सन् 1950 के बाद का समय मलयालम रंगमंच के लिए नवीन प्रयोगों का समय रहा है। भारतीय रंग परंपरा की जड़ों से प्राप्त एक नवीन रंग-शैली को प्रयोग में लाने का प्रयास व्यापक तौर पर चलता रहा। इसके परिशिष्ट के रूप में ही कई रंग-कार्यशालाओं का आयोजन भी केरल के विभिन्न प्रदेशों में होने लगा। स्त्रियों को ये कार्यशालाएं रंगमंच के व्याकरण को समझने और उससे परिचित होने का अवसर प्रदान किया। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की उपस्थिति इन कार्यशालाओं में कम थी। फिर भी रंगमंच पर गहरी रुचि रखने वाली स्त्रियों के लिए ये कार्यशालाएं बहुत ही लाभदायक रही हैं। केरल के शासतांकोट्टा में आयोजित कार्यशाला में सावित्रिकुट्टी नामक एक प्राध्यापिका ने भाग लिया था। उन्होंने कार्यशाला में असंगत रंगमंच से जुड़े विषय में भाषण भी किया है। कूत्ताट्टुकुलम में आयोजित कार्यशाला में सावित्रिकुट्टी के साथ अन्नकुट्टी नामक स्त्री ने भी भाग लिया। कार्यशाला के अंत में एक नाटक का प्रस्तुतीकरण हुआ जिसमें अन्नकुट्टी ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आलुवा में आयोजित कार्यशालाओं में भी स्त्रियों ने भाग लिया था, जिसमें लिसी अगस्टिन, विजयम करुणाकरन आदि प्रमुख हैं। इसके बाद जब केरल संगीत नाटक अकादमी ने जब एक नाट्य-कार्यशाला का आयोजन किया तब उसमें कई

स्त्री-कलाकारों ने भाग लिया था । उनमें प्रमुख हैं – बेबी टी.एंटिनी, वी.रमणी, टी.टी. सरोजिनी, मोली जोर्ज आदि ।

इन कार्यशालाओं में भाग लेने वाली स्त्रियों के लिए रंगमंच जैसे एक माध्यम के अन्यान्य पहलुओं के संबंध में प्रामाणिक जानकारी मिलने का एक अच्छा अवसर प्राप्त हुआ । कार्यशाला में उपस्थित भारती नामक अभिनेत्री ने अपना अनुभव व्यक्त करते हुए कहा है कि – “रंग-कार्यशाला में भाग लेने का जो अवसर मुझे मिला जिसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ । कार्यशाला में भाग लेने के बाद ही रंगमंच के तकनीकी पहलुओं से मेरा परिचय हो गया । लाईट, सेट, अभिनय आदि की सूक्ष्मताओं से मैं बिलकुल अज्ञात थी । रंगमंच को उसकी समग्रता के साथ जानने-पहचानने में कार्यशाला बहुत ही सहायक रही है ।“[1]

तृशूर जिले में जब स्कूल ऑफ़ ड्रामा नामक नाट्य प्रशिक्षण केंद्र की स्थापना हुई तब वहाँ स्त्रियों की भी भर्ती की गयी । नजमुल शाही, सी.वी. सुधी, अमृता, दिव्या, श्रीलता आदि उनमें प्रमुख हैं । कावालम नारायण पणिक्कर के द्वारा संचालित ‘तनतु नाटकवेदी’ में भी स्त्रियों की उपस्थिति रही थी । नाट्यधर्मी शैली पर केन्द्रित कावालम जी ने नाट्य-प्रस्तुतियों में भाग लेने वाली स्त्रियों को भी पुरुषों के साथ फिसिकल ट्रेनिंग दिया था । राधामणि, रुक्मिणी, सुजाता, सुनीता, वसंता, मोहिनी, सरिता, श्रीरेखा, लीला पणिक्कर आदि स्त्रियाँ ‘तनतु नाटकवेदी’ से जुडी हुई थीं ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नया रंग-आन्दोलन ने स्त्रियों को गंभीरता के साथ रंगमंच को जानने-पहचानने का अवसर प्रदान किया । रंगमंच में रुचि रखने वाली स्त्रियाँ बिना किसी संकोच के साथ रंगकर्म से जुड़ने के लिए तैयार भी हो गयी । अभिनय, निर्देशन, रंग-आलोचना, अन्य तकनीकी पहलू आदि रंगमंच के अन्यान्य पहलुओं में स्त्रियाँ अपनी उपस्थिति स्थापित करने लगी । इस समय में भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति तो बेहत्तर ज़रूर हुई, किन्तु रंगमंच से जुडी

---

[1] सजिता मठत्तिल- मलयालम नाटक स्त्री चरित्रम्, पृ.

स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में ज़्यादा परिवर्तन नहीं आया । सामाजिक दृष्टि से रंगकर्मी महिलाएँ हेय ही मानी जाती थीं । रंगमंचीय प्रस्तुति से संबंधित महत्वपूर्ण कार्यों में पुरुषों का ही एकाधिकार रहा था । ज़्यादा से ज़्यादा स्त्रियाँ रंगमंच पर उतर आने से भी रंगमंच की पुरुष केन्द्रित संरचना में कोई बदलाव नहीं आया ।

3.4 स्त्रीवादी रंगमंच : विशेष संकल्पना का उदय एवं विकास

भारतीय स्त्रीवाद भारत की प्रमुख स्त्रियों और विचारकों के चिंतन की उपज है जिसका प्रमुख ध्येय सामंती व्यवस्था द्वारा स्थापित गुलामी से स्त्री को मुक्त करना है । इसमें एक ओर पुरुष-वर्चस्व एवं लिंग भेडीय पूर्वग्रहों का विरोध है, दूसरी ओर भारतीय जीवन मूल्यों की नवीन सन्दर्भों में पुनर्व्याख्या का प्रयास भी है । "आम तौर पर स्त्रीवाद को पश्चिम की उपज माना जाता है । लेकिन यह सच नहीं है, स्त्रीवाद स्त्री की अधीन स्थिति की समझ विकसित करने की और उसे मुक्त करने के लिए विकसित हुई विचारधारा या चेतना है, इसलिए जिस समाज में भी स्त्री अधीन स्थिति में है उस समाज में स्त्रीवाद किसी न किसी रूप में विकसित होगा ही, यह और बात है कि इसका स्वरूप भिन्न-भिन्न समाजों में अलग-अलग है । भारत में स्त्री अधीनता के विभिन्न रूपों को ध्यान में रखते हुए स्त्रीवाद विकसित हुआ है ।"[1]

भारतीय स्त्रीवाद की नवीन धारा ने अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों को प्रभावित किया है । रंगमंच का क्षेत्र भी इस स्त्रीवादी चेतना से वंचित नहीं रह गया है । 1970 के आसपास से लेकर स्त्रीवाद ने एक संगठित आन्दोलन का रूप धारण किया । स्त्रीवादी विचारधारा के भारतीय परिप्रेक्ष्य ने रंगमंच के क्षेत्र में सदियों से चली आ रही मान्यताओं को चुनौती दी । स्त्रीवादी विचारों से प्रेरित रंगकर्मियों ने व्यवस्था के द्वारा निर्धारित नैतिक मापदंडों को तोड़ते हुए रंगमंच पर अपनी अधीनस्थ स्थिति एवं दोयम दर्जे को बदलने का प्रयास शुरू किया । 1950 के आसपास से लेकर भारत के विभिन्न भाषाई रंगमंचों में स्त्रियों की उपस्थिति बढ़ गयी थी । उनमें से कुछ

[1] शिवप्रिय- भारतीय समाज में नारीवाद, गद्य कोश, www.gadyakosh.org

स्त्रियों के लिए रंगकर्म अपनी सांस्कृतिक सक्रियता का एक सजीव हिस्सा था, तो दूसरी कुछ स्त्रियों के लिए रंगमंच अपना कलात्मक शौक था । एक और विभाग की स्त्रियाँ भी रंगमंच से जुडी हुई थी, जिनके लिए रंगकर्म अपनी आजीविका चलाने का माध्यम या प्रोफशन था । सन् 1960-70 का समय भारतीय रंगमंच के लिए प्रयोगधर्मिता और समसामयिकता का समय रहा है । भारत के सन्दर्भ में साठोत्तर रंगमंच से तात्पर्य उन रंगमंचीय क्रियाकलापों से है, जो समसामयिक सन्दर्भों से जुड़े हुए हैं, के साथ ही जो रंगमंच में एक नयी चेतना एवं रंग-प्रस्तुति में एक नयी दृष्टि के आविर्भाव का द्योतक रहा है । फिर भी इन प्रयोगधर्मी रंग-प्रस्तुतियों में भी मंच पर प्रदर्शित स्त्री-पात्रों का एवं स्त्री-स्वत्व का दृश्यांकन समाज में प्रचलित तथाकथित रूढ़िवादी स्त्री-संकल्पनाओं के आधार पर ही रूपायित होता रहा । प्रमुख रंग-आलोचक डॉ. सुप्रिया पाठक ने सन् 1950 के बाद के रंगमंच में स्त्रियों की स्थिति के संबंध में जो बात कही है वह बिलकुल प्रासंगिक है । उनके शब्दों में – "रंगमंच की दुनिया में स्त्रियों की स्थिति पहले से बेहतर हुई थी, यह कहना अतिशयोक्ति होगा । जो स्त्रियाँ मंच पर अभिनेत्री के रूप में उतर रही थीं वे अभी भी सामाजिक दृष्टि से हेय मानी जा रही थीं । नाटककार के रूप में महिलाएँ पुरुषों द्वारा हाशिये पर धकेली जा रही थीं । निर्देशिका के रूप में भी उन्हें इस दुनिया में जगह बनाने के लिए काफी मशक्कत करनी पडी । अभी भी प्रबंधक के तौर पर महिलाओं की उपस्थिति नगण्य थी । परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं था कि उन्होंने रंगमंच की दुनिया में कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं दिया । आज़ादी के उपरांत उभरी महिलाओं की इस पहली पीढ़ी ने हमेशा रंगमंच की दुनिया में सफलता का परचम लहराया ।"[1]

1950 के बाद के नए रंग आन्दोलनों के दौर में रंगकर्म के क्षेत्र में ज़्यादातर महिलाएँ प्रवेश करने लगी तथा रंगमंचीय प्रस्तुतियों की विषय-वस्तु के रूप में स्त्रियों की समस्याएँ सामाजिक असमानता, स्त्री सशक्तीकरण आदि उभर आने लगी ।

[1] डॉ. सुप्रिया पाठक- स्त्रियाँ एवं रंगमंच : पारसी रंगमंच से नुक्कड़ नाटकों तक का सफ़र, हिन्दी समय, www.hindisamay.com

किन्तु इन रंगमंचीय प्रस्तुतियों में स्त्री की अस्मिता एवं स्त्री स्वत्व की यथार्थ पहचान तथा स्त्रीपक्षीय दृष्टि का अभाव सदैव रहा । इस पहचान ने भारत के विशेषकर हिन्दी तथा मलयालम की महिला रंगकर्मियों को एक ऐसी प्रति-दृश्य-संस्कृति विकसित करने की प्रेरणा दी जो स्त्री की अस्मिता को मंच पर स्थापित करने की सृजनात्मक प्रक्रिया पर बल देने वाली थी ।

1970 के आसपास भारत में परिव्याप्त विभिन्न प्रयोगधर्मी रंगकर्म तथा उसी समय में प्रचलित अनेक स्त्रीवादी संगठनों के आपस के संबंध का परिणाम है भारत का स्त्रीवादी रंगमंच । प्रमुख रंगकर्मी एवं आलोचक सजिता मठात्तिल के शब्दों में – "भारत के स्त्रीवादी रंगमंच का अध्ययन मात्र भारतीय नाटयेतिहास के विश्लेषण की कोटि तक सीमित नहीं है । भारतीय सन्दर्भ में कभी स्त्री रंगमंच विशेष (जिसके मूल में स्त्री की समस्याओं का स्त्रीपक्षीय दृष्टि से संबोधन) का उद्भव स्त्रीवादी विचारों के विकास का भी परिणाम है । 1980 के आसपास का समय भारतीय रंगमंच के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण समय रहा है जबकि रंगमंच के सैद्धांतिक स्तर पर गंभीर रूप से स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप होते जा रहे थे । नाटयेतिहास, नाट्य कृतियाँ तथा प्रस्तुतीकरण के स्तर पर खूब प्रभाव डालने में ये सैद्धांतिक हस्तक्षेप अवश्य ही सफल रहे है ।"[1]

भारत के स्त्रीवादी रंगमंच को पाश्चात्य स्त्रीवादी रंगमंच का अनुकरण समझना ठीक नहीं है । पाश्चात्य से आये नवीन नाट्य सिद्धांतों स्त्रीवादी विचारों व प्रयोगधर्मी रंगमंचीय प्रस्तुतियों का प्रभाव भारत में ज़रूर कहीं कहीं पाया जा सकता है । किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि वह पाश्चात्य स्त्रीवादी रंगमंच का अनुकरण मात्र है । भारतीय स्त्रियों की विशेष अवस्था, व रंगमंच के विशेष सन्दर्भ में उनके द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं की प्रतिक्रया के रूप में ही यहाँ के रंगमंच में स्त्रीवादी हस्तक्षेप हुए है ।

[1] सजिता मठात्तिल- मलयालम नाटक स्त्री चरित्रम्, पृ.180

एक नवीन रंगमंचीय प्रयत्न होने के साथ-साथ स्त्रीवादी रंगमंच एक ऐसा महत्वपूर्ण राजनैतिक कदम भी है जो परंपरागत व रूढ़ीवादी विचारों को चुनौती देने वाला सृजनात्मक उद्यम है । इसकी यही विशेषता है कि यह रंगमंच के तौर पर स्त्रियों का एक ऐसा निजी प्रयास था जो पुरुष वर्चस्व के खिलाफ आवाज़ उठाने में समर्थ रहा । इसे आधुनिकोत्तर नवीन विचारों, जीवन स्थितियों तथा विचारधाराओं के परिणाम के रूप में देखा जा सकता है । प्रमुख स्त्रीवादी रंगकर्मी, विचारक एवं नाट्यकार डॉ. इ.राजेश्वरी के मत में – "स्त्रीवादी रंगमंच का उद्देश्य महिलाओं के प्रति हो रहे अपराधों तथा समाज में उनकी जो हाशियेकृत स्थिति है उस पर ध्यान केन्द्रित करना नहीं है, हालांकि यह उसका एक हिस्सा तो ज़रूर है । हम समाज की सोच-विचार को ही बदलने की कोशिश कर रहे हैं ।"[1]

हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच को उसकी विशेषताओं तथा प्रवृत्तियों के आधार पर सामान्य रूप से दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है ।

पहला चरण : स्त्रीवादी विचारों के प्रचार तथा स्त्री मुद्दों के प्रति जनता में चेतना जागृत करने के विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम के रूप में रंगमंच की प्रस्तुति ।

दूसरा चरण : रंगमंच संबंधी परंपरागत अवधारणाओं तथा उस पर निहित पुरुष वर्चस्व को तोड़कर पूरे रंगमंच की संरचना को स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्निर्मित करने के प्रयास ।

[1] "The objective is not to focus on the crimes done against women and their secondary status in the society, although that is a part of it. We are trying to change the thought process of the society. It is in the conscience of the society that women need to find a place." Dr. E. Rajarajeswari, interview of the week : aiming for women kind , by mukesh venu, dec 13, 2011, yentha.com/news/view/4/hireeksha-ladies-theatre-group-rajarajeswari.

3.4.1 पहला चरण – हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

सन् 1970 के बाद का समय भारतीय समाज के लिए स्त्रीवादी विचारों तथा आन्दोलनों के प्रभाव का समय रहा है । नव-सामाजिक आन्दोलनों के फलस्वरूप उभरी नई चेतना के कारण भारतीय महिलाओं ने भी अपनी अस्मिता तथा संघर्ष को अपने नज़रिए से रखना शुरू किया । क्षेत्र चाहे सामाजिक हो या राजनीतिक अथवा साहित्यिक, महिलाएँ हर स्तर पर पुरुषों के बराबर अधिकारों की मांग करने लगीं एवं स्त्री-पहचान के लिए संघर्ष करती रहीं । इस के साथ साथ लिंग की गरिमा की दुहाई की चर्चा भी वे निरंतर करती रहीं । उस समय में भारत के प्रमुख शहरों में कई ऐसे स्त्री संगठन रूपायित हुए, जो महिला मुद्दों के प्रति चेतना जागृति में कार्यरत थे, जिनके फलस्वरूप ही स्त्रीवादी रंगमंच जैसी संकल्पना उभरकर सामने आयी थी । इन स्त्री संगठनों के लिए रंगमंच एक ऐसा प्रभावशाली माध्यम रहा जिसके माध्यम से वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति सशक्त रूप से कर सके । दिल्ली में स्थापित 'स्त्री-संघर्ष' नामक संगठन इसका एक अच्छा उदाहरण है । कई महीनों तक लगातार दहेज़ हत्याओं के विरुद्ध घटना प्रदर्शन करते हुए, नारे लगाते हुए, पोस्टर लगाते हुए स्त्री-संघर्ष ने यह महसूस किया कि वास्तव में लोगों को संबोधित करने का सबसे सीधा, सरल एवं शक्तिशाली माध्यम नाटक है । मशहूर रंगकर्मी अनुराधा कपूर, रति बर्तीलोम्यू तथा माँया राव के संयुक्त प्रयासों से 'स्त्री संघर्ष' ने 'थियटर युनियन' नाम की इकाई का गठन किया जिसका उद्देश्य नाटकों के माध्यम से स्त्री अधिकारों के प्रति जनता में जागरूकता पैदा करना था ।

सन् 1980 में पहली बार थियटर युनियन द्वारा 'ओम स्वाहा' नामक नुक्कड़ नाटक खेला गया जो जनता के बीच काफी चर्चित रहा । अनुराधा कपूर के शब्दों में – "पंजाबी लोकगीत और वहाँ की स्थानीय बोली में लिखे गए इस नाटक ने आम लोगों के बीच ऐसा असर पैदा किया कि ज़्यादा से ज़्यादा लोग दहेज जैसी कुप्रथा के खिलाफ बोलने लगे और औरतों की वर्तमान दशा से मुक्ति के लिए कृत संकल्प होने

लगे । 'ओम स्वाहा' जैसे नाटक ने जनता में यह सन्देश फैलाने में सफलता हासिल कर ली थी कि घरों के बंद दरवाजों के भीतर अभी बहुत कुछ ऐसा है जिस पर बात किया जाना ज़रूरी है ।"[1]

भारत में महिला थियटर ग्रुप के रूप में थियटर युनियन ने न सिर्फ दहेज़ ह्त्या जैसे मुद्दों को उठाया बल्कि सती-प्रथा और पुलिस हिरासत में होने वाले बलात्कारों को भी अपने प्रदर्शनों में मुद्दा बनाया । बलात्कार के मुद्दे को नाटक दफा 108 में उठाते हुए पुलिस हिरासत में महिलाओं के अधिकारों से दर्शकों को अवगत कराया जाता । समूह ने इस नाटक को कोलेजों, पार्कों तथा उन झुग्गी बस्तियों में कई-कई बार दिखाया जहां की औरतों को पुलिस वेश्या होने के संदेह पर गिरफ्तार करती थी और जेल के अन्दर महिलाएँ कई दिनों तक बलात्कार का शिकार होती थीं ।

"दिल्ली में थियटर युनियन के अतिरिक्त भारत के अन्य शहरों और गाँवों में भी कई थियटर कार्यशालाओं का आयोजन किया गया जिसमें जन नाट्य मंच जिसे माला हाशमी चला रही थीं, शमशुल इसलाम की निशांत जिसमें हबीब तनवीर और बादल सरकार जैसे कार्यकर्ता शामिल थे, आह्वान जैसे संगठन सभी साथ मिलकर आवाज़ उठा रहे थे । इनमें से कई समूहों ने अपने नाटक खुद लिखे और खुद ही उनका निर्देशन किया । झुग्गी बस्तियों, सडकों, पब्लिक पार्कों, फुटपाथों, विश्वविद्यालय-परिसरों में इन नाटकों को खेलते हुए आवश्यकतानुसार इसमें परिवर्तन और संशोधन भी किए जाते रहे ।"[2]

इन संगठनों के अतिरिक्त कई छोटे-छोटे संगठन भी थे जिन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान दिया परन्तु मुख्यधारा की मीडिया द्वारा उसका दस्तावेजीकरण नहीं किया जा सका । 1991 में हेमा रैंकर के निर्देशन में 15 किसान महिलाओं और दो पुरुषों के साथ किये गए नाटक 'अबला स्त्री' पर एक सामूहिक चर्चा आयोजित

---

[1] डॉ. सुप्रिया पाठक- प्रतिरोध की संस्कृति, नुक्कड़ नाटक और महिलाएँ, www.hindisamay.com
[2] डॉ. सुप्रिया पाठक- प्रतिरोध की संस्कृति, नुक्कड़ नाटक और महिलाएँ, www.hindisamay.com

की गयी और इसी के आधार पर एक और नाटक भी किया जिसका नाम था 'सामाजिक बंधन' । स्त्री मुक्ति संगठनों ने 'मुलगी झाली आहे' नामक नाटक किया जिसे महाराष्ट्र के 2000 लोगों के बीच प्रदर्शित किया गया । ज्योति म्हापसंकर जो इस संगठन की निर्देशिका थी, ने बताया है कि – "मैंने इस नाटक को लिखा था । यह नाटक उन महिलाओं से प्रेरित था जो इतने शोषणकारी एवं दमनकारी परिस्थितियों में अपना जीवन गुजारती हैं, इस नाटक को देखने के बाद कई लोग इस संगठन के सदस्य बने ।"[1]

इसके अतिरिक्त शीला रानी द्वारा शुरू किए एक समूह ने दो महीने तक तमिलनाडु में नुक्कड़ नाटकों का आयोजन किया । यह आयोजन उस शिक्षा अभियान का हिस्सा था जो कन्या भ्रूण हत्या के विरुद्ध जागरूकता पैदा करने के लिए चलाया जा रहा था । रंगमंच के अधिकाँश कलाकार यह मान रहे थे कि महिलाओं द्वारा झेले जा रहे शोषण को व्यक्त करने का थियटर एक आसान और प्रभावशाली माध्यम था । अपनी गतिशीलता के कारण लोगों के थियटर पहुँचने की बजाय यह लोगों तक पहुँच रहा था । वे लोग जिनके पास बहुत कम समय होता था, जो धरने में भाग लेते थे, उनके घरों के सामने होने वाले इस प्रकार के नुक्कड़ नाटकों ने स्त्रियों द्वारा किये जा रहे संघर्ष को और मजबूती प्रदान की । कई बार नाटक पीड़ित महिलाओं को भी यह अवसर उपलब्ध कराते थे कि वे अपने अनुभव लोगों से साझा करें । नुक्कड़ नाटकों के प्रदर्शन में बहुत कम संसाधनों की आवश्यकता पड़ती थी, वे कम खर्चीले भी थे, छोटे बजट में किये जा सकते थे और कलाकारों को कोई मेहनताना भी नहीं देना पड़ता था ।

जन नाट्य मंच ने अपने शुरुआती दिनों से ही लिंग-आधारित भेद-भाव के प्रति आम जनता के बीच चेतना जागृति का कार्य प्रारंभ कर दिया था । इसी क्रम में उसने 'औरत' नामक नाटक खेला था । सफ़दर हाशमी की मृत्यु के बाद जनम का

---

[1] डॉ. सुप्रिया पाठक- प्रतिरोध की संस्कृति, नुक्कड़ नाटक और महिलाएँ, www.hindisamay.com

संचालन उनकी पत्नी एवं प्रसिद्ध रंगकर्मी मोलोयाश्री हाशमी ने किया था। 1 जनवरी 1989 को जब दिल्ली से सटे साहिबाबाद के झंडापुर गाँव में गाज़ियाबाद नगरपालिका चुनाव के दौरान नुक्कड़ नाटक 'हल्ला बोल' का प्रदर्शन किया जा रहा था तभी जनम के समूह पर इन्डियन नॅशनल कांग्रेस पार्टी से जुड़े कुछ लोगों ने हमला कर दिया था और सफ़दर हाशमी की ह्त्या की गयी थी। इस घटना के दो दिन बाद सफ़दर हाशमी की पत्नी मोलोयाश्री हाशमी ने जनम मंडली को लेकर उसी जगह पर अधूरा पडा हल्लाबे का प्रस्तुतीकरण फिर से करने का साहस किया था, जहां सफ़दर हाशमी शहीद हुए थे। बाद में मोलोयाश्री जी ने ही उस मंडली को आगे बढाया।

इस प्रकार महिलाओं द्वारा झेले जा रहे शोषण को सशक्त रूप में व्यक्त और संबोधित करने के एक सरल और प्रभावकारी माध्यम के रूप में इस नुक्कड़ रंगमंच का निरंतर विकास होता रहा। कई बार ये नाटक पीड़ित महिलाओं को यह अवसर भी उपलब्ध कराते थे कि वे अपने अनुभवों की अन्य लोगों के साथ साझा करें। अपनी गतिशीलता के कारण लोगों के थियटर पहुँचने की बजाए यह लोगों तक पहुँच रहा था।

सामाजिक व्यवस्था में अंतर्भूत पुरुष-सत्ता को प्रश्नीकृत करते हुए उसे कला के ज़रिए चुनौती देना, समता एवं स्वतन्त्रता को हासिल करने की लड़ाई में स्त्रियों को सशक्त बनाना, स्त्री की विशेष समस्याओं को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करना, स्त्रीवादी विचारों का प्रचार करना आदि विशेष उद्देश्यों से प्रेरित मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच का पहला चरण अपने में अद्वितीय एवं प्रभावशाली रहा है। पितृसत्ता के गहरे दबाव से खामोश हो गए स्त्री समूह की आवाज़ को पुनः प्राप्त करने के लक्ष्य को लेकर निर्मित स्त्री संगठन थी 'मानुषी' सन् 1986 में स्थापित इस संगठन ने रंगमंच को माध्यम बनाकर स्त्री-शोषण के खिलाफ आवाज़ उठायी। मलयालम की प्रमुख स्त्रीवादी चिन्तक एवं साहित्यकार प्रो.सारा जोसफ के नेतृत्व में रूपायित 'मानुषी' ने

स्त्रियों की समस्याओं, शोषण आदि को संबोधित करते हुए कई नुक्कड़ नाटकों की प्रस्तुतियाँ की थीं । कोलेजों की छात्राओं तथा अध्यापिकाओं के सजीव उपस्थिति उनमें होती थी । मात्र लड़कियों के द्वारा प्रदर्शित 'मानुषी' के नाटकों ने स्त्री सशक्तीकरण से जुड़े कई नारे सामने रखे । दहेज़ प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली मानुषी का एक नुक्कड़ नाटक केरल समाज के विभिन्न प्रदेशों में खेला गया तथा जनता के बीच काफी बहस भी उठाया । 'मानुषी' के नाट्य-कार्यक्रमों ने प्रगतिशील कहे जाने वाले सामाजिक संस्थाओं की स्त्री विरोधी रूढ़िवादिता कपट नैतिक बोध और पाखण्ड पर घोर प्रहार किया ।

रंगमंच को एक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने वाली केरल की एक और महिला नाट्य-मंडली थी 'समता' । इस मंडली की स्थापना सन् 1987 में हुई थी । समाज की आधी आबाधी महिलाएँ जो हाशियेकृत हैं, उनको मुख्यधारा में लाने के विशेष उद्देश्य से कार्यरत 'समता' नाट्य-संघ में छात्राएं, कामकाजी महिलाएँ, किसान स्त्रियाँ, सांस्कृतिक कार्यकर्ता आदि शामिल थीं । इसके नेतृत्व में प्रोफ. टी. उषाकुमारी, पी.विजयम्मा, के.पुष्पा, सी.एस.चंद्रिका आदि प्रमुख थीं । इन्होंने स्त्री की मुक्ति को मजदूर-वर्ग की मुक्ति के साथ जोड़कर देखने की कोशिश की थी । ब्रेख्त का नाटक 'मदर करेज' की पात्र 'मेरी फेरारिन' की कथा पर केन्द्रित सती, माता आदि 'समता' की नाट्य-प्रस्तुतियाँ काफी बहुचर्चित रही है । इस नाट्य-मंडली में करीब पंद्रह स्त्रियाँ सदस्य के रूप में कार्यरत थी । 'समता' की नाट्य-प्रस्तुतियों में पुरुष पात्रों की भूमिका भी स्त्रियों के द्वारा निभाई जाती थी । समता की नाट्य-प्रस्तुतियों में 'जाति', 'ञान स्त्री' आदि प्रमुख हैं । स्त्रीवादी विचारधारा को जनता तक पहुँचाना तथा सामाजिक असमानताओं को तोड़कर एक समतावादी समाज को स्थापित करने के लिए प्रेरक होना ये 'समता' नाट्य मंडली के लक्ष्य थे । स्त्री की समस्याओं के अलावा जातीयता, सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार, साम्राज्यवाद आदि मुद्दों को भी 'समता' ने अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों के सहारे उठाया था ।

केरल का प्रगतिवादी संगठन 'शास्त्र-साहित्य-परिषद्' के महिला उपविभाग ने भी स्त्री केन्द्रित मुद्दों को संबोधित करनेवाले नाटकों को प्रस्तुत किया । इस संगठन ने अपनी बात कहने के माध्यम के रूप में नुक्कड़ रंगमंच की शैली को अपनाया था । समाजवादी स्त्रीवाद से प्रभावित इस संगठन ने समाज में स्त्री की हाशियेकृत स्थिति को, उसकी समस्याओं को व्यंग्यात्मक शैली से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया था । स्त्रियों के द्वारा झेले जाने वाले यौन-शोषण को चित्रित करने वाला नाटक 'काणाप्पणियुडे तीक्कुंडम', 'तिरिच्चरिवु' आदि नाटक समाज के बीच काफी बहस के विषय बन गये थे । दहेज़ प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाला नाटक है 'परशुपुरम चंता । विवाह के नाम पर लड़कियों का क्रय-विक्रय करने वाली सामाजिक कुरीति पर सशक्त रूप से प्रहार करने वाले इस नाटक ने जनता को काफी प्रभावित किया । स्त्रियों पर केन्द्रित और एक नाट्य-प्रस्तुति थी 'सीता', जो मनुस्मृति के स्त्री-विरोधी तत्वों को आदर्श बनाने वाली सामंती पुरुष-मानसिकता को चुनौती देती है । मुसलमान स्त्रियों की दुरावस्था को सूचित करने वाली नाट्य-प्रस्तुति 'नादिरा परयुन्नु' भी समाज के बीच काफी बहुचर्चित रही है ।

कलात्मकता की कमी एवं कमजोरी रहते हुए भी इन महिला नाट्य कार्यों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसकी प्रमुख उपलब्धियां निम्नलिखित हैं –

1. रंगमंच के माध्यम से महिला मुद्दों को जनता के सम्मुख उठाने तथा महिला सशक्तीकरण का कार्य ।
2. सार्वजनिक स्थानों में महिलाओं की उपस्थिति को स्थापित करने का कार्य ।
3. प्रेक्षक के रूप में ज़्यादा से ज़्यादा महिलाओं को रंगमंच के क्षेत्र में लाने का कार्य ।
4. रंगमंच से जुडी महिलाओं के प्रति समाज की जो हीन या बुरी दृष्टि है, उसको एक हद तक बदलाने का कार्य ।

5. मध्यवर्गीय स्त्रियों को गंभीरतापूर्ण नाट्याध्ययन की ओर आकर्षित करने का कार्य ।
6. स्वतंत्र रूप से कार्यरत महिला निर्देशकों, महिला नाट्यकारों तथा अभिनेत्रियों को स्त्रीवादी विचारों से जोड़ने वाले संवाद एवं चर्चाओं के संयोजन का कार्य ।

3.4.2 दूसरा चरण : हिन्दी और मलयालम के सन्दर्भ में

स्त्रीवादी रंगमंच का पहला चरण स्त्रीवादी विचारों के प्रचार तथा स्त्री-समस्याओं के प्रति जनता में चेतना जागृत करने के विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम के रूप में रंगमंच की प्रयुक्ति है तो दुसरे चरण तक आते-आते रंगमंच संबंधी परंपरागत अवधारणाओं तथा उस पर निहित पुरुष वर्चस्व को तोड़कर पूरे रंगमंच की संरचना को स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्निर्मित करने का प्रयास भी पाया जाता है । समग्र रूप से स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रवृत्तियों का प्रयोग इस दुसरे चरण की रंगमंचीय प्रस्तुतियों में ही पाया जा सकता है । प्रदर्शनीय वस्तु के सीमित रूप में उपस्थित महिलाओं ने रंगमंचीय प्रदर्शन के रूपायन में अपनी निजी भूमिका अदा करने वाली सृजनात्मक कार्यकर्ताओं के रूप में अपने आप को प्रतिष्ठित करना शुरू किया । भारत के सन्दर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच के इस चरण में दो विभिन्न धाराएं देखने को मिलती हैं ।

1. पारंपरिक रंगमंच का स्त्रीवादी पुनर्रूपायन
2. समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच

3.4.2.1 पारंपरिक रंगमंच का समकालीन स्त्रीवादी पुनर्रूपायन- हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में

रंगमंच वह सृजनात्मक विधा है जो वर्तमान जीवन के विविध व व्यापक परिदृश्यों से सीधे जुडती है । समसामयिकता न केवल रंगमंच की अंतर्वस्तु को ही

नहीं, बल्कि उसके रूप, शिल्प तथा रूपायन की प्रक्रिया को भी व्यापक स्तर पर प्रभावित करती है । कलात्मकता एवं सौन्दर्यशास्त्रीय संकल्पनाओं को प्रभावित करने वाले इस समसामयिक बोध ने पारंपरिक प्रदर्शनधर्मी कलाओं को एक नवीन परिप्रेक्ष्य से देखने व पुनर्रूपायित करने की दृष्टि प्रदान की है । विशेषकर स्त्रीवादी चिंतन के प्रभाव ने पारंपरिक रंगमंच की कुछ शैली विशेषों को अपनी रूढ़िवादी एवं पुरुष-सत्तात्मक संरचना को तोड़कर स्वतंत्र व समसामयिक होने का अवसर भी प्रदान किया है । हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच के सन्दर्भ में देखा जाय तो प्रमुख रूप से तीन पारंपरिक नाट्य शैलियाँ पायी जा सकती है, जिनका वर्तमान समय में स्त्रीवादी दृष्टि से पुनर्रूपायन हुई है । केरल का 'नंङियार्कूत्त', 'कथकलि' नामक दो क्लासिकी नाट्य-शैली तथा हिन्दी-प्रदेश का 'पंडवानी' नामक लोक नाट्य-रूप । पंडवानी और कथकलि दोनों की यही विशेषता है कि इन नाट्य-रूपों में परंपरया स्त्री की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । इनका प्रस्तुतीकरण पुरुष कलाकारों के द्वारा ही होता रहा था । इन नाट्य-रूपों का प्रशिक्षण लेना तथा मंच पर प्रस्तुत करना स्त्रियों के लिए मना हुआ था । पौराणिक कथा सन्दर्भों से गृहीत इन नाट्य-रूपों की अंतर्वस्तु में पुरुष-केन्द्रित दृष्टि का प्रभाव ही मौजूद रहा था । इन नाट्य-शैलियों का रूप-विधान भी 'मेल फिसिकालिती' (male physicality) के वर्चस्व से रचित हुआ है । इनमें स्त्रियों की भूमिका भी पुरुषों के द्वारा निभाया जाता था । अतः इन प्रस्तुतियों में ऐसी स्त्री छवियों का प्रतिनिधित्व ही होता रहता है जो पुरुष केन्द्रित मानसिकता से रूपायित है । वर्तमान समय में इस स्थिति में परिवर्तन लाने के विशेष उद्देश्य से स्त्री-कलाकारों ने कुछ हस्तक्षेप दिखाई देते है । आजकल स्त्री कलाकारों ने इन नाट्य रूपों का प्रशिक्षण लेते हुए जनता के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए इन नाट्य-रूपों में अपनी उपस्थिति स्थापित करने का ऐतिहासिक कदम उठाया है । स्त्री कलाकारों ने इन नाट्य-रूपों की अंतर्वस्तु एवं रूप-विधान दोनों स्तरों को स्त्रीवादी दृष्टि से पुनर्रूपायित करने की कोशिश की है । गीता वर्मा, रंजिनी सुरेश, हरिप्रिया नंपूतिरी, कोट्टक्कल जयश्री, राधिका वर्मा, कोट्टारक्करा गीता, माया नेच्चिक्कोड आदि

कलाकारों ने कथकली में तथा पद्मश्री तीजन बाई, ऋतु वर्मा, शांतिबाई चेलक, उषा बारले, प्रभा आत्रे आदि कलाकारों ने पंडवानी में भी अपनी उपस्थिति स्थापित करते हुए इन नाट्य-रूपों को स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनार्रूपायित करने की कोशिश की हैं ।

नंङियार्कूत्त को भारत का सबसे प्राचीन महिला रंगमंच का अवशेष माना गया है । परंपरया इसका प्रस्तुतीकरण मात्र स्त्रियों के द्वारा ही होता है । संस्कृत रंगमंच की प्राचीन परंपरा का एक मात्र अवशेष है केरल की 'कूटियाट्टम' नामक नाट्याभिनय शैली । इस कूटियाट्टम से जुडी नंङियार्कूत्त नामक महिला एकल अभिनय रूप को भारतीय रंगमंच में सदियों से निहित महिलाओं की सजीव उपस्थिति का सशक्त प्रमाण माना जा सकता है । सामंती व्यवस्था के सत्तात्मक संबंधों तथा पितृसत्ता के वर्चस्वी जकड में पड़कर शुष्क हो गयी इस महिला अभिव्यक्ति शैली का वर्तमान समय में पुनरुद्धार व स्त्रीवादी दृष्टि से पुनार्रूपायन हुई है । मात्र केरल में प्रचलित इस महिला नाट्य-रूप का वर्तमान समय में भारत के अन्य प्रदेशों में तथा विदेशों में भी प्रचार-प्रसार होता जा रहा है । वर्तमान समय में नंङियार्कूत्त नामक इस नाट्य-शैली की अंतर्वस्तु तथा रूप-विधान दोनों में निहित पुरुष-केन्द्रीयता व वर्चस्वी स्वभाव में परिवर्तन होने लगा है तथा यह महिला नाट्य-रूप स्त्री कलाकारों के लिए अपनी स्वत्वाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन गया है । उषा नंङियार, मार्गी सती, कलामंडलम गिरिजा, इंदु जी, कपिला वेणु, कलामंडलम सिन्धु, वासंती नारायणन आदि कलाकारियों ने नंङियार्कूत्त को पुनर्रूपायित करने में अपनी विशेष भूमिका अदा की है ।

3.4.2.2 समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच : हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में

सन् 1990 तक आते-आते भारतीय रंगमंच में स्त्रियों की साझेदारी का अन्वेषण प्रबल होने लगा । रंगमंच के क्षेत्र में कार्यरत स्त्रियों को अपने अनुभव, अन्वेषण तथा स्त्री होने के नाते झेली जाने वाली समस्याएँ, उत्सुकताएँ आदि को साझा करने के लिए अनुयोज्य महिला कार्यशालाएं तथा नाट्य समारोह आयोजित होने

लगा । ऐसे समारोहों में रंगमंचीय प्रस्तुति एवं जेंडर संबंधी विचारों बहसों को प्रमुखता दी गयी । इनका संयोजन देश के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न भाषाओं में रंगकारी करने वाली महिला रंगकर्मियों तथा महिला संगठनों के सदस्यों द्वारा हुआ था । उदाहरण के लिए चेन्नई में आयोजित कुलवे नाट्य समारोह एवं केरल में आयोजित 'स्त्री नाटक पनिप्पुरा' (स्त्री नाट्य कार्यशाला) को हम ले सकते हैं ।

चेन्नई में कार्यरत 'voicing silence' नामक महिला संगठन ने स्त्री, नाटक तथा विकास वृद्धि आदि तीनों क्षेत्रों को समन्वित करके राष्ट्रीय तौर पर 1996, 1997, 1999 सालों में 'कुलवे' नाम से महिला नाट्य समारोहों का आयोजन किया था । इसमें भारतीय रंगमंच के क्षेत्र में सजीव रूप से उपस्थित महिला रंगकर्मियों, स्त्रीवादी संगठनों के सदस्यों एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में कार्यरत प्रमुख महिलाओं को सम्मिलित किया गया था । स्त्रियों के द्वारा निर्देशित नाट्य प्रस्तुतियों, स्त्रीवादी रंगमंच के सन्दर्भ में संगोष्टियों, कार्यशालाओं आदि से नाट्य समारोह संपन्न थे । voicing silence के कार्य व्यापार तीन मुख्य किस्मों का संयोजन रहा है ।

1. महिला मुद्दों पर या लिंग संवेदनात्मक विषयों पर केन्द्रित नाटकों की प्रस्तुति ।
2. ऐसे नाट्य समारोहों का आयोजन जिनमें सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं, रंगकर्मियों तथा गैर सरकारी संगठनों आदि के योगदान को एकत्रित करना ।
3. विभिन्न समुदायों के महिलाओं को सहारा देना एवं खुद की अभिव्यक्ति के लिए तथा सशक्तीकरण के लिए रंगमंच को उपयोग में लाने के लिए उन्हें सक्षम बनाना ।[1]

हिन्दी रंगमंच से जुडी प्रमुख रंगकर्मी उषा गांगुली ने कुलवे 2002 में आयोजित संगोष्ठी में भाग लेते हुए कहा कि – "क्या हम राष्ट्रीय तौर पर ऐसे एक मंच की स्थापना

[1] Theatre as the women's tool of expression, the hindu, Friday, feb 07, 2003

कर सकते है जो महिलाओं के लिए हो ? मैं आज जिस नाट्य समारोह में भाग ले रही हूँ वह महिलाओं का सोलहवीं नाट्य समारोह है । पर मैं यह कह सकती हूँ कि आज तक महिलाओं की मुक्ति नहीं हुई है । रंगमंच पर पुरुषों का अहं बहुत ही सशक्त रूप से स्थित है । इस समस्या का समाधान मैं सालों से ढूंढ रही हूँ । मुझे विशवास है कि मेरा उद्यम सफल हो जाएगा क्योंकि नाट्य प्रस्तुति के समय मैं अपने सामने ऐसी महिलाओं को देखती हूँ जिनके मुख में शक्ति एवं उत्साह दिखाई देता है ।[1]

सन् 1998 में केरल संगीत नाटक अकादमी के द्वारा आयोजित स्त्री नाटक पनिप्पुरा (स्त्री नाट्य कार्यशाला) का अपना ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य है । रंगमंच पर निहित पुरुष-वर्चस्व को तोड़ना एवं महिलाओं के स्वत्व को स्थापित करने के विशेष उद्देश्य से आयोजित यह कार्यशाला सरकारी तौर पर किया गया पहला उद्यम था । इसके प्रमुख कार्य-व्यापार निम्नलिखित हैं ।

1. भारत के विभिन्न प्रदेशों में रंगकर्म में व्यापृत महिलाओं को एक मंच पर लाना तथा उनके अनुभवों को शेयर करना ।
2. भारत की प्रमुख महिला रंगकर्मियों द्वारा निर्देशित नाटकों की प्रस्तुति ।
3. स्त्री रंगाभिव्यक्ति के विभिन्न आयामों पर बहस कार्य ।
4. तिरस्कृत स्त्री के सशक्तीकरण के हेतु रंगमंच को प्रयोग में लाना ।
5. रंगमंच एवं महिला उपस्थिति, स्त्रीवादी रंगमंच, स्त्री की देह भाषा, दलित स्त्रीवादी रंगमंच आदि विषयों के संबंध में संगोष्ठी तथा चर्चाओं का आयोजन ।
6. नाट्य विशेषज्ञों द्वारा संचालित कार्यशालाएं ।

[1] उषा गांगुली- कुलवै २००२. चेन्नई

इस कार्यक्रम में नीलम मानसिंह चौधरी, अनुराधा कपूर, सीमा बिश्वास, उषा गांगुली, माया कृष्ण राव, विभा मिश्रा, मंकई, एम.जीवा, सजिता मठात्तिल, सी.एस. चन्द्रिका आदि प्रमुख रंगकर्मियों ने भाग लिया था ।

स्त्री नाट्य कार्यशाला में प्रस्तुत नाटक निम्नलिखित है –

1. देवाशिलकल – इसकी रचना के.एस.श्रीनाथ द्वारा तथा निर्देशन श्रीलता के द्वारा की गयी ।
2. रोस मेरी परयातिरुन्नत् – सतीश के.सतीश के द्वारा रचित इस नाटक का निर्देशन रत्नाकरन थे ।
3. फ़िदा – जीन रास के फीदा को आधार बनाकर सुरजात पटार के द्वारा रचित इस नाटक का निर्देशन नीलम मानसिंह ने किया ।
4. मीडिया – इसकी रचना व निर्देशन जे.शैलजा ने की ।
5. अव्वई – इसकी रचनाकार एवं निर्देशक थी मंकई ।
6. विलुम्ब – इसकी रचना नसीमा असीस तथा निर्देशन के.जीवा के द्वारा हुई ।
7. जानस – विजय तेंदुलकर के सखाराम बैंडर से प्रेरित इस नाटक का निर्देशन दिव्या ने किया ।
8. नगरवधू – आनंद के 'कालम' नामक उपन्यास से प्रेरित इस नाटक का निर्देशक रहा नारायणन पट्टाम्बी ।
9. ब्यूटी पार्लर – सजिता मठात्तिल के द्वारा रचित एवं निर्देशित है ।
10. द स्पैडेर्स ड्रीम – इसकी प्रस्तुति मेक्सिकन वंशजा यूजीनिया कानो प्यूगो ने किया ।
11. मंथरयुडे अंतरंगम – इसका निर्देशक रहा के.के. सुब्रह्मंयाँ
12. सुन्दरी – एन आक्टर प्रिपयेर्स – जयशंकर सुन्दरी के कुछ आंसू कुछ फूल नामक आत्मकथा का नाट्य रूपांतरण अनुराधा कपूर ने किया ।

13. वामा – बिवास चक्रवर्ती द्वारा निर्देशित इस नाटक की प्रस्तुति उषा गांगुली ने एकल शैली में किया ।

14. खोल दो – कथकलि की शैली में रूपायित इस नाटक का निर्देशक रही माया कृष्ण राव ।

15. एक परिकथादार – इसकी प्रस्तुति विभा मिश्रा के द्वारा हुई ।

16. हिम्मत माँ – ब्रेख्त के प्रसिद्ध नाटक 'मदर करेज' एंड हेर चिलरन' की हिन्दी में प्रस्तुति उषा गांगुली ने की ।

17. उरुम्बुकल संसारिक्कुन्नत – इसकी रचना एवं प्रस्तुति सी.एस.चंद्रिका ने किया ।

18. कुलिमुरी – एक रूसी नाटक से प्रेरित इसकी प्रस्तुति कार्यशाला के सदस्यों द्वारा हुई ।

इन प्रमुख नाट्य समारोहों के अलावा और भी कई महिला नाट्य समारोह एवं कार्यशालाओं का आयोजन देश के विभिन्न राज्यों में हुए है जो रंगमंच में महिलाओं की सजीव उपस्थिति को स्थापित करने में तथा स्त्रीवादी रंगमंच जैसी अर्थपूर्ण परिकल्पना को परिपुष्ट करने में सफल रहे हैं । ऐसे नाट्य समारोहों में प्रमुख है ।

1. अक्का – मैसूर में आयोजित महिला नाट्य समारोह ।
2. पूर्वा राष्ट्रीय महिला रंग महोत्सव – हैदराबाद में यवनिका थियटर ग्रुप के द्वारा आयोजित ।
3. कर्नाटक के समुदाय द्वारा आयोजित कार्यशाला एवं रंग महोत्सव ।
4. मणिपुर में कलाक्षेत्र द्वारा आयोजित रंग महोत्सव ।
5. मुंबई में पृथ्वी थियटर द्वारा आयोजित महिला रंग महोत्सव ।
6. दिल्ली के 'अल्लारिप' द्वारा आयोजित महिला रंग कार्यक्रम ।
7. कोलकत्ता के 'रंगकर्मी थियटर' द्वारा आयोजित रंग कार्यक्रम ।
8. मैसूर के रंगायन द्वारा आयोजित महिला नाट्य कार्यक्रम ।

9. तमिल नाडू का कूत्तुपहरै द्वारा आयोजित संगोष्ठी एवं रंग महोत्सव ।

10. केरल के निरीक्षा महिला नाट्य संघ द्वारा आयोजित नाट्य कार्यशाला एवं संगोष्ठी ।

भारत में कुछ ऐसी प्रमुख पत्रिकाएँ मौजूद रहीं है जिनमें मुख्य रूप से महिला रंगकर्मी की प्रगति पायी जा सकती है । थियटर इंडिया, सीगल थियटर, रंग प्रसंग, भाररंग, नटरंग आदि पत्रिकाएँ इसके उदाहरण हैं । इन पत्रिकाओं में विशेष रूप से रंगमंच की आलोचना, इतिहास, सैद्धांतिक विवरण आदि की चर्चा देखी जा सकती है । इसके अलावा महिलाओं के द्वारा रचित नाट्य कृतियों का संकलन, महिला नाट्य कृतियों की आलोचना आदि भी पायी जा सकती है ।

भारत में रंगमंच का क्षेत्र हमेशा पुरुष-प्रधान रहा है । संगठित कार्य-व्यापार, सफ़र एवं संचार संबंधों की उसमें अत्यंत आवश्यकता होती है । घर-परिवार के प्राइवेट स्पेस में अपने गार्हिक उत्तरदायित्वों के साथ जीने वाली भारतीय स्त्रियों को ऐसे पब्लिक स्पेसों पर जहां रंगमंच के कार्य व्यापार चलते हैं, आना काफी कठिन था ।

नब्बे के बाद भारतीय रंगमंच में महिला रंगकर्मियों ने सजीव रूप से अपनी उपस्थिति स्थापित की । सदियों से रंगमंच के क्षेत्र पर निहित पुरुष वर्चस्व को तोड़कर स्त्रियों के निजी स्वत्व को स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रयत्न उन्होंने किया । ऐसे रंगकर्मियों में अनुराधा कपूर, माया राऊ, अमाल अल्लाना, उषा गांगुली, त्रिपुरारी शर्मा, नीलम मानसिंह चौधरी, कीर्ति जैन, वीनापानी चौला, अनामिका हक्सर, नादिरा ज़हीर बब्बर, सीमा बिश्वास, सी.वी. सुधी, सजिता मठात्तिल, के.वी.श्रीजा, जीवा, मंकई, बी.जयश्री आदि के नाम प्रमुख हैं । इन रंगकर्मियों के द्वारा संचालित नाट्य मंडलियों में अनुराधा कपूर का ‘विवादी’, उषा गांगुली का ‘रंगकर्मी’, नादिरा ज़हीर बब्बर का ‘एक जुड़’, त्रिपुरारी शर्मा का ‘अलारिपू’, नीलम मानसिंह

चौधरी का 'द कंपनी', मंकई का 'वोइसिंग साइलेंस', बी.जयश्री का 'स्पंदना थियटर', बीनापनी चौला का 'आदिशक्ति', सी.वी सुधी का 'निरीक्षा' आदि उल्लेखनीय हैं ।

इन महिला रंगकर्मियों ने जेंडरीकरण की प्रक्रिया को दिखाने के लिए रंगमंच के रूप और अंतर्वस्तु दोनों को बदला । उपलब्ध आलेखों को भी इन्होंने नितांत नई शैली, नए आख्यान में प्रस्तुत किया । इस दौरान रंगमंच पर तकनीक का भी आगमन हुआ जिसमें डिजिटल छवियों, ध्वनियों, प्रकाश उपकरणों इत्यादि ने प्रस्तुति संरचना को नवीन आयाम दिया । अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित नवलाखा, आन्टीगानी, सुन्दरी एन एक्टर प्रीपेर्स, उषा गांगुली का रुदाली, हिम्मत माई, अंतर्यात्रा, नीलम मानसिंह चौधरी का द लाइसेंस, नागामंदाला, किचन कथा, यरमा, माया राऊ का खोल दो, लेडी मैकबत रीविज़िटड, रावानमा, कीर्ति जैन का बागदाद बर्निंग, वीणा पानी चोला का टेंट हेड है, बृहन्नला, त्रिपुरारी शर्मा का रूप अरूप, संपदा, सी.वी.सुधी का प्रवाचका, आनुङल इल्लात्ता पेन्नुङल, पुनर्जनी, सजिता मठत्तिल का मत्स्यगंधी, ब्यूटीपार्लर, के.वी.श्रीजा का लेबर रूम, कलंकारियुडे कथा, अनामिका हक्सर का पगदंडी, नादिरा ज़हीर बब्बर का बेगम जान, सक्कू बाई, मंकई का अव्वाई, मनिमेखालई, अमाल अल्लाना का नटी बिनोदिनी आदि नाट्य प्रस्तुतियों के द्वारा भारतीय रंगमंच में महिला रंगकर्मियों ने विशिष्ट स्थान प्राप्त किया । इन प्रस्तुतियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जेंडर का मसला जो इनमें देखने को मिलता है अन्यत्र दुर्लभ है । और ऐसी प्रस्तुतियों के लिए इन्होंने प्रस्तुति के फ़ार्म में बदलाव किया । नंदी भाटिया के विचार में "इन्होंने जेंडर के जिन प्रश्नों को मंच पर लाया उन्हें आधुनिक प्रदर्शनों में अब तक संबोधित ही नहीं किया गया था । इस प्रकार के काम से दो बातें सामने आयी इसने अपने विषय पर इस तरह से विचार किया जैसे कि इन अनुभवों का अधिकाँश हिस्सा अब तक अदृश्य रहा हो और तब इन अनुभव को ऐसे प्रस्तुत किया गया जिसने प्रचलित प्रदर्शन आख्यान को विस्थापित कर दिया ।"[1]

[1] नंदी भाटिया- मॉडर्न इंडियन थिएटर, 2009, पृ.49

इन रंगकर्मियों के अलावा नयी पीढ़ी के अनेक युवा रंगकर्मियाँ भी अपनी प्रस्तुतियों के द्वारा समकालीन भारतीय रंगमंच को परिपुष्ट करती जा रही है । उनमें रसिका अगाशे, मल्लिका तनेजा, रमनजीत कौर, निम्रत कौर, श्रिया पिलागोंकार, पूजा देवारिया, प्रियंका पाठक, अर्पिता धगत, शैलजा जे, निम्मी राफेल, कल्याणी मुलय, प्रीती आत्रेया, सुरभी, शैलजा. पी. अम्बू, संयुक्ता पी.सी., स्वीटी रूहेल, हिमा शंकर, कनी, साबा आज़ाद, सीमा आज़मी, सायोंती साहू, दिव्या जगदाले, नंदिनी राव, तन्वी पटेल, पद्मिनी चेतूर, मीरा अरुण, सोफिया स्टेफ, मल्लिका प्रसाद आदि प्रमुख हैं । इनमें से कई रंगकर्मियों ने एकल प्रस्तुति शैली को अपनाई है । रूप संरचना की कलात्मकता, अभिव्यक्ति शैली की नवीनता, जेंडर मुद्दों पर आधारित नाट्य पाठों का प्रयोग, स्त्री संवेदना को उजागर करने वाली बहुरंगी और गतिमान रंगीय कार्य-व्यापार, स्त्री-प्राकृतिक देह विन्यास, सृजनात्मकता एवं संप्रेषनीयता में सहज ऊर्जा आदि से परिपुष्ट एक नवीन चाक्षुष सौन्दर्यशीलता को उजागर करते हुए महिला रंगकर्म ने वर्तमान समय में भारतीय रंगमंच के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त की है ।

3.4.2.2.1 महिला निर्देशकों का योगदान

नाट्य कला के त्रिआयामी रूप के मध्य में निर्देशक होता है । वह किसी प्रस्तुति का संचालक होता है । नाटक को मंच पर लाने और उसकी सफल प्रस्तुति का जिम्मेदार निर्देशक ही होता है । किसी रंग-प्रस्तुति के भाव तथा रूप दोनों स्तरों में रचनात्मक व सृजनात्मक ढ़ंग से व्यवहार करने में निर्देशक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है । गिरीश रस्तोगी निर्देशक की इसी भूमिका को इन शब्दों में प्रकट करती हैं – "सच्चाई यह है कि गंभीर, संवेदनापूर्ण, कल्पनाशील निर्देश नाटक के टेक्स्ट को बदल देता है, उसे नया विज़न देता है, अपने जीवन-चिंतन को, मूल्यों को, अपनी सोच को, एक संश्लिष्ट कला के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है ।"[1]

---

[1] गिरीश रस्तोगी- रंगभाषा, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.127

जब कोई स्त्री, निर्देशक की भूमिका को अपना लेती है तो अवश्य रंगमंच के परंपरागत, रूढ़िवादी एवं पुरुष-केन्द्रित संरचना समग्र रूप से परिवर्तित हो जाती है । यहाँ दो बातें महत्वपूर्ण हैं –

1. किसी पाठ का रंगमंच पर सफल प्रस्तुतीकरण निर्देशक का कर्तव्य होता है । स्त्रियों के अनुभव स्तर एवं विचार भिन्न होते हैं, अतः उस पाठ की स्त्री दृष्टि से व्याख्या मंच पर हो जाती है । वहाँ पुरुष-दृष्टि से व्याख्या मंच पर हो जाती है । वहाँ पुरुष-दृष्टि का अधिप्रमाणन समस्याग्रस्त हो जाता है तथा पूरे रंगमंच का परिप्रेक्ष्य ही बदल जाता है ।
2. निर्देशक रंगमंच का संचालक होता है, प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक विभिन्न तत्वों को मिलाकर चलाना उसी का कर्तव्य होता है । स्त्रियों में संचालन की शक्ति अधिक होती है । परिवार की जटिल संरचना को तन्मयता से संचालित करने वाली स्त्रियाँ रंगमंच का संचालन भी क्रियात्मक ढ़ंग से कर सकती है ।

हिन्दी के सन्दर्भ में देखा जाय तो स्त्रीवादी रंगमंच के विकास में महिला निर्देशकों का योगदान अद्वितीय रहा है । महिला निर्देशकों को रंगमंच पर अपनी अस्मिता को स्थापित करने का अवसर आसानी से नहीं मिला. इसकेलिए कई कठिनाइयां झेलनी पडी. प्रमुख रंग आलोचक श्रीमती वंदना वशिष्ठ के शब्दों में "रंगमंच में महिला निर्देशकों की भागीएदारी देखें तो पाएंगे कि रंगमंच में उन्हें अपनी बात कहने का अवसर आसानी से नहीं मिला । सबसे पहली चुनौती तो उनके सामने यही आयी कि पुरुष वर्चस्व वाले इस खेल में उनका अपना स्थान हो, जिसे पाने के लिए उन्होंने भी उपलब्ध नाटक करने शुरू किए । उनकी रंग भाषा नाट्यप्रस्तुति के उसी व्याकरण से पनपने लगी जो लगभग स्थापित हो चुकी थी, चाहे वह दृश्यविधान हो, बिंब या कि कथाक्रम । जैसे-जैसे इनके काम को मान्यता मिलने लगी वैसे-वैसे छोटी-छोटी चीज़ों

का उनका अपना दृष्टिकोण झलकने लगा ।"[1] सन् 1980 तक आते आते स्त्रीपक्षीय दृष्टि को साथ लेकर चलने वाली हिन्दी तथा मलयालम की महिला नाट्य-निर्देशकों ने रंगमंच पर परिव्याप्त पुरुष केन्द्रिता को चुनौती देते हुए नवीन बिम्ब, दृश्य-विधान, रंग-भाषा, अभिव्यक्ति-शैली आदि को विकसित करने का प्रयास किया| इसके साथ साथ स्त्री मुद्दों पर केंद्रित विभिन्न विषय-वस्तुओं को भी रंगमंच पर लाने की कोशिश की गयी| महिला निर्देशकों ने विशेष रूप से डॉ प्रकार के नाट्य-पाठों को अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों केलिए स्वीकार किये है| वे हैं –

1. मूल नाटकों से गृहीत नाट्य-पाठ
2. रूपांतरित नाट्य-पाठ

इन दोनों प्रकार के नाट्य-पाठों को स्त्री पक्षीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य में मंच पर प्रस्तुत करने वाली महिला निर्देशकों ने प्रदर्शन-स्थल, मंच-व्यवस्था, रंग-सामग्री, प्रकाश-योजना, ध्वनि-विन्यास आदि रंगमंच से जुडी विभिन्न पहलुओं में नवीन प्रयोग किये है| इस प्रकार के स्त्री-पक्षीय चिंतन से प्रभावित महिला निर्देशकों में हिन्दी की अनुराधा कपूर, नीलम मानसिंह चोव्धारी, अमाल अल्लाना, त्रिपुरारी शर्मा, माया राऊ, रसिका अगाशे, कीर्ती जैन, अनामिका हक्सर, उषा गांगुली, तथा मलयालम की सी वी सुधी, सजिता मठत्तिल, श्रीलता, आशा देवी, सुरभि, मैबी, जिषा, रजिता मधु, के वि श्रीजा, इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है| इनमें से कुछ निर्देशक अपने को स्त्रीवादी की संज्ञा से अभिहित की जाने को तैयार नहीं है| वे अपने को किसी वाद के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित करना नहीं चाहती| फिर भी इनके जो रंगमंचीय कार्यव्यापार एवं नाट्य-प्रस्तुतियाँ है, वे बिलकुल स्त्रीवादी रंगमंच की संकल्पना को परिपुष्ट करने वाले है| व्यावहारिक तौर पर इनके जो सृजनात्मक प्रयास है, वे रंगमंच पर निहित पुरुष वर्चस्व को तोड़ने वाले है तथा स्त्री स्वत्व को उसकी सहजता से

---

[1] वन्दना वशिष्ठ- आधुनिक हिन्दी रंगमंच और नारी विमर्श, रंग-प्रसंग-41, पृ.242

अभिव्यक्त करने वाले भी है| अतः इन महिला निर्देशकों की नाट्य-प्रस्तुतियों को अवश्य ही स्त्रीवादी रंगमंच की कोटि में रखी जा सकती है|

3.4.2.2.2 अन्य महिला रंगकर्मियों की देन

यह पहले ही बताया जा चुका है कि सदियों से रंगमंच पर रूढ़ हो गयी पुरुष-केन्द्रित स्टीरियोटाइप्स को तोड़ना तथा रंगमंच पर स्त्री स्वत्व को उसकी मौलिकता के साथ उद्घाटित करना स्त्रीवादी रंगमंच की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है । इस प्रमुख प्रवृत्ति की प्रयुक्ति रंगमंच की अन्यान्य पहलुओं के द्वारा होता दिखाई देता है । जिस प्रकार नाट्य निर्देशन में स्त्रियों की सजीव उपस्थिति रहने से रंगमंच की पुरुष केन्द्रिता प्रश्नीकृत हो जाती है, उसी प्रकार अभिनय, पार्श्वकर्म इत्यादि पहलुओं में भी स्त्रियों के अलग हस्तक्षेपों ने पूरे रंगमंच के तथाकथित स्वभाव को समग्र रूप से परिवर्तित करने का प्रयास किया है । निर्देशन के साथ-साथ अभिनय, पार्श्व-कर्म आदि भी रंगमंच का महत्वपूर्ण अंग है ।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक से आधुनिक भारतीय रंगमंच में अभिनेत्रियों के रूप में स्त्रियाँ उपस्थित हो चुकी थी । किन्तु इन अभिनेत्रियों के द्वारा मंच पर जो स्त्री-छवि का रिप्रजेंटेशन होता रहा था, वह पुरुष-मानसिकता के द्वारा निर्मित एवं विकसित तथाकथित स्त्री-अभिकल्प ही था । अभिनेत्री की भूमिका मंच पर मात्र एक उपकरण के समान थी, जिसका संचालन एवं नियंत्रण पुरुषों के द्वारा ही होता था । जब स्त्रीवादी विचारों ने रंगमंच की विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करना शुरू किया तब से लेकर उन विचारों की झलक ने अभिनेत्रियों को भी परिवर्तित किया । तब से लेकर स्त्रीवादी रंगमंच से जुडी अभिनेत्रियाँ तथाकथित पुरुष-केन्द्रित स्टीरियोटाइप्स का मंच पर प्रतिनिधित्व करने वाली उपकरण मात्र नहीं रहने लगी बल्कि नवीन देह भाषा और अभिनय शैली के द्वारा स्त्रीत्व के स्वाभाविक एवं नैसर्गिक चेतना को मौलिकता के साथ मंच पर प्रयुक्त करने वाली सृजनात्मक प्रयोक्ता के रूप में उभरकर सामने आयी । हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच के क्षेत्र में ऐसी अनेक

अभिनेत्रियाँ हैं जो सशक्त हस्तियों के रूप में रंगमंच के विभिन्न आयामों में अपना योगदान देता आ रहा है । 'एक्टर' या 'परफ़ॉर्मर' के रूप में अपना संपूर्ण जीवन कला के लिए समर्पित करने वाली अभिनेत्रियों ने कई संघर्षों को झेलते हुए रंगमंच पर स्त्री के निजी स्वत्व को स्थापित करने की अहम् भूमिका निभाई हैं ।

इस प्रकार के स्त्री स्वत्व-बोध को लेकर चलने वाली अभिनेत्रियों में हिन्दी रंगमंच से जुडी जोहरा सहगल, कमलिनी मेहता, उषा सहाय, उषा बनर्जी, सविता बजाय, उत्तर बावकार, सुरेखा सीकरी, सुधा शिवपुरी, सुषमा सेठ, वीणा मेहता, अंजला महर्षि, सबीना मेहता, सीमा भार्गव, हेमा सहाय, हिमानी शिवपुरी, सलीमा राजा, सविता कुंद्रा, अमला राय, सीमा बिश्वास, राशी बनी, हरविंदर कौर, दक्षिणा शर्मा, निधि मिश्रा, सीमा आजमी, मीता मिश्रा, अदिति बिश्वास, असीमा भट्ट, दक्षा शर्मा, शिल्पी मारवाह, साजिदा, नियति राठौड़, सत्याकेती, प्रतिभा अग्रवाल, स्वर्ण चौधरी, श्यामा जैन, रेनू राय, वीणा कीयालू, पल्लवी मेहता, यामा सराफ, गीता जानी, चेतना जालान, डाली बसू उर्फ़, उमा झूँझून्वाला, विनीता रेलीन, निहारिका, कुसुम गुप्ता, अरुणा कपूर, पापिया दास, सरोज शर्मा, रीता भादुड़ी वर्मा, प्रीती झा, पल्लवी बेंद्रे, सुरभी बोरदिया, पद्मजा रघुवंशी, नुपूर मुंशी, मनीषा व्यास, शीला व्यास, पल्लवी किशन, अर्चना, चित्रा मोहन, मृदुला भरद्वाज, कुमकुम धर, शोभना अग्रवाल, चित्रा सिंह, भानुमती सिंह, संध्या गुप्ता, संध्या रस्तोगी, प्रीता माथुर, सुनीला प्रधान, गीता गुहा, हीबा शाह, प्रीती दुबे, अनीता प्रधान, अम्बिका कमल, रमा पाण्डे, मोना झा, अनुभा फतेपुरिया, निवेदिता भार्गव, रमनजीत, कौर, उषा गांगुली, नूतन मिश्रा, सबरजीत कौर, वन्दना शर्मा, अंजना चिटनिस, कमल अहलूवानिया, शीरी अरोड़ा, मृनामोयी बिश्वास, सविता रानी, माया राव, नेहा सिंह, किरण खोजे, पूर्वा भावे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

मलयालम के सन्दर्भ में देखा जाय तो निलंबूर आयिशा, के.पी.ए.सी.सुलोचना, विजयकुमारी, सुधर्मा, मेदिनी, मावेलिक्करा पोन्नम्मा, लिसी अगस्टिन, विजयम

करुणाकरन, बेबी एन्टनी, भारती, सावित्री लक्ष्मणन, एन.के.गीता, लीला पणिक्कर, नाजारानी, रुग्मिनी, स्टेल्ला, एन.पार्वती, के.ए.इंदिरा, के.एम.रमा, गीता जोसफ, श्रीजा, सुमंगला, विनोभा, सुजाता, पुष्पा, अन्ना, राजी, कोलषी बिन्दु, रमला, साबिना, सरोजिनी, सती, जोली, चंद्रमती, एस. श्रीलता, सजिता मठत्तिल, के.वी.श्रीजा, नजमुल शाही, दिव्या, अमृता, रजिता मधु, आई.जी.मिनी, राखी, मोचिता, जे.शैलजा, सी.वी.सुधी, संध्या राजेंद्रन, सी.एस. चंद्रिका, सौमिनी, राधामनी, माला, लता, कुक्कू परमेश्वरन, आशा देवी, आतिरा, भानुमती, हिमा शंकर, कनी, निधि शास्त्री, मालू आर.एस., रजिता, सुरभी, जिषा, मेयबी, दिव्या गोपीनाथ, सुनिता आदि अभिनेत्रियों के नाम उल्लेखनीय हैं ।

अभिनेत्रियों के समान महिला नाट्य रचनाकारों ने भी स्त्रीवादी रंगमंच के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । "स्त्री के प्रश्न हाशिए के नहीं बल्कि जीवन के केन्द्रीय प्रश्न हैं । किन्तु साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्ववशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है, में स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों की लगातार उपेक्षा की जाती रही है । इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब हैं बल्कि यह है कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु (sexual object) के रूप में है या यदि वह संघर्ष भी कर रही है तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक मनोसंरचना अख्तियार किए होता है संघर्ष करने वाली स्त्री की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक होती है ।"[1] साहित्य के संबंध में डॉ. सुप्रिया पाठक का यह कथन नाट्य-साहित्य के सन्दर्भ में भी काफी प्रासंगिक है । साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नाट्य-रचना में स्त्रियों की भागीदारी काफी कम दिखाई देता है । किन्तु समकालीन दौर में स्त्रियाँ ऐसी नाट्य-रचनाएँ करने लगी है, जो महिलाओं के निजी स्वत्व को अभिव्यक्त करने में काफी सक्षम रही हैं । स्त्री-जीवन के विभिन्न आयामों को छूने वाली स्त्री लिखित नाट्य-रचनाओं ने स्त्रीवादी रंगमंच को परिपुष्ट करने में अपना योगदान दिया है ।

[1] सुप्रिया पाठक- हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श एवं समकालीन चुनौतियां, हिन्दी समय, www.hindisamay.com

महिला नाट्य रचनाकारों ने स्त्री जीवन के विभिन्न मुद्दों जैसे शारीरिक शोषण, स्त्री अस्मिता के प्रश्न, रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था, नैतिक बोध, स्त्री पुरुष संबंध, मजदूर स्त्री की समस्याएँ समकालीन जीवन के तनाव और जटिलताएं आदि को अपनी रचनाओं में शामिल करने की कोशिश की है ।

हिन्दी की महिला नाट्य-रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं – कुसुम कुमार (सुनो शेफाली), मीराकांत (ईहमृग, नेपथ्यराग, हुमा को उड़ जाने दो), नादिरा बब्बर (सकुबाई, जी जैसी आपकी मर्जी), मृदुला गर्ग (एक और अजनबी, कितनी कैंदे), त्रिपुरारी शर्मा (सन सत्तावन का किस्सा, बहू, रूप-अरूप), मन्नू भंडारी (बिना दीवारों के घर, महाभोज), उषा गांगुली (रुदाली), मैत्रेयी पुष्पा (मंदाक्रांता), वर्षा दास (नया सवेरा) । मलयालम के सन्दर्भ में सजिता मठात्तिल (मत्स्यगंधी, ब्यूटी पार्लर), ई.राजराजेश्वरी (प्रवाचका, आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल), के.वी.श्रीजा (लेबर रूम, ओरोरो कालङ्लिल, कलंकारियुडे कथा), सुरभी (घोरराक्षसम्), आशा देवी (ब्रोकन इमेजेज), मेयबी स्टान्ली (जहानारा, कथा कथा कस्तूरी), सारा जोसफ (भूमिराक्षसम), सी.एस.चंद्रिका (उरुम्बुकल सम्सारिक्कुन्नतु) आदि नाट्यकार और उनकी नाट्य-रचनाएँ प्रमुख हैं । इनके अलावा कुछ महिला निर्देशक अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों का आलेख स्वयं तैयार करती हैं । उदाहरण के लिए अनुराधा कपूर, नीलम मानसिंह चौधरी, उषा गांगुली, अनामिका हक्सर, अमाल अल्लाना, जिषा आदि । इन निर्देशकों ने ऐसी कई रचनाओं को लेकर उनका नाट्य-रूप में रूपांतरित करते हुए मंच पर प्रस्तुत किया है ।

रंगमंच के प्रमुख अंगों में पार्श्व-कर्म का स्थान महत्वपूर्ण होता है । किसी भी रंगमंचीय प्रस्तुति को सफल बनाने में पार्श्व कर्मों की जो भूमिका होती है, वह अद्वितीय है । रंगमंच के पार्श्व-कर्म, अर्थात् तकनीकी कार्यवाहकों के रूप में स्त्रियों की उपस्थिति हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच में बहुत कम ही नज़र आती हैं । अभिनेत्रियों के रूप में स्त्रियों की उपस्थिति रंगमंच के क्षेत्र में जिस प्रकार सजीव रही है, उस

प्रकार की एक सजीवता पार्श्व-कर्म के क्षेत्र में नहीं पायी जा सकती । अभिनय की तुलना में रंगमंच के पार्श्व-कर्म सामान्य रूप से स्त्रियों के लिए काफी मेहनती काम होती है । पार्श्व-कर्मों के लिए ज़्यादा उत्तरदायित्व की आवश्यकता अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है । प्रचलित सामाजिक व्यवस्था की विशेषताओं के कारण स्त्रियों के लिए इस उत्तरदायित्व को लेकर चलना काफी मुश्किल हो जाता है । इस कारण से ही अभिनेत्रियों की तुलना में पार्श्व-कर्म से स्त्रियाँ जुड़ने को तैयार नहीं हो जाता । अगर कोई स्त्री पार्श्व-कर्म में तल्लीन हो जाती है तो भी उस स्त्री को स्वतंत्र रूप से अपनी सृजनात्मक को प्रकट करने में पुरुष-केन्द्रित स्पेस काफी बाधा-स्वरूप उपस्थित होता दिखाई देता है । किन्तु आजकल स्थिति बदलती आ रही है । प्रकाश-योजना, संगीत एवं ध्वनि विन्यास, परिधान परिकल्पना, सेट-डिजाइन आदि तकनीकी कार्य-व्यापारों से स्त्रियाँ जुडी हुई दिखाई दे रही हैं ।

पार्श्व-कर्म से जुड़ने वाली महिला कलाकारों में प्रमुख हैं हिन्दी की रोशन अल्काज़ी, मोनिका मिश्रा तनवीर, अमाल अल्लाना, डॉली अहलूवालिया, सुलेखा अल्लाना, अनिला सिंह, मृदुला भरद्वाज, सबीना मेहता, प्रेमा कारंत, कृति शर्मा आदि तथा मलयालम की सी.वी.सुधी, मालू आर.एस., निधि, सुरभी, सुनिता आदि ।

3.4.2.2.3 नाट्य-मंडलियों की देन

स्त्रीवादी रंगमंच के विकास में स्त्रीपक्षीय नाट्य-मंडलियों की देन अद्वितीय है । स्त्रीपक्षीय नाट्य-मंडली का मतलब मात्र स्त्री सदस्यों से शामिल एक संस्था के रूप में नहें लिया जा सकता है बल्कि जो लिंग-भेदीय पूर्वग्रहों से मुक्त तथा मानवता एवं समता से युक्त दृष्टिकोण को अपनाने वाली हो । इस प्रकार की नाट्य-मंडलियों में ऐसे पुरुष भी शामिल होते हैं जो स्त्रीपक्षीय राजनीति की प्रासंगिकता को समझने वाले तथा प्रगतिशील विचारों को अपनाने वाले हो । स्त्रीपक्षीय विचारों से परिपुष्ट होने के कारण ऐसी नाट्य-मंडलियों के भीतर किसी भी पहलू में स्त्री-पुरुष भेदभाव या स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति नहीं होती । पुरुष केन्द्रित नाट्य मंडलियों का सामान्य

स्वभाव यह होता है कि वहाँ पुरुषों का ही एकाधिकार रहता है । वहाँ निर्णय पुरुष ही लेता है तथा स्त्री उसके पालन का जिम्मेदार होती है । मलयालम रंगमंच की प्रमुख अभिनेत्री 'आतिरा' ने स्त्री पक्षीय रंग-मंडली और पुरुष केन्द्रित रंग-मंडली की भिन्नता को सूचित करते हुए स्पष्ट ही कहा है कि – "मेरे अपने अनुभव में कहा जाय तो एक आर्टिस्टिक के रूप में मेरे लिए सबसे कम्फर्टबिल स्पेस स्त्रीपक्षीय नाट्य-मंडली में मिली है । मुझे लगता है कि रंगमंच से जुडी नब्बे प्रतिशत स्त्रियों का भी अनुभव ऐसा ही रहा होगा । पुरुष केन्द्रित नाट्य-मंडलियों में कार्यरत होने के लिए स्त्रियों को जो 'इनहिबिशन' होता है वह स्त्रीपक्षीय नाट्य-मंडलियों में नहीं होता है ।"[1] इससे यह बात स्पष्ट होता है कि स्त्री कलाकारों के लिए रंगमंच पर अपनी बात कहने के लिए, अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए तथा अपनी अस्मिता को स्थापित करने के लिए एक ऐसे 'स्पेस' की ज़रुरत है, जो काफी 'डेमोक्रेटिक' हो ।

लिंग भेदीय पूर्वग्रहों से दूर रहने वाली तथा स्त्री-स्वत्व को मंच पर स्थापित करने की सृजनात्मक प्रक्रिया पर बल देने वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियों को रूपायित करने के लिए मात्र वैचारिक स्तर पर बहस करना काफी नहीं है बल्कि आर्थिक रूप से स्त्रियों की प्राथमिकता में संचालित नाट्य-मंडलियों की स्थापना अत्यंत आवश्यक है । इस प्रकार के महत्वपूर्ण मुद्दे पर जब भारत में गहनता से विचार-विमर्श शुरू होने लगा तब उसके फलस्वरूप कुछ नाट्य-मंडलियों का उदय हुआ जो स्त्रीपक्षीय चिंतन से परिपुष्ट हैं । 1980 के आसपास से लेकर हिन्दी तथा मलयालम भाषाओं में प्रस्तुतियाँ करनेवाली महिला रंगकर्मियों के द्वारा स्थापित कई नाट्य-मंडलियाँ रूपायित हुई । उनमें प्रमुख हैं –

1. रंगकर्मी, जिसकी स्थापना उषा गांगुली के द्वारा हुई है । इस नाट्य मंडली की स्थापना सन् 1976 में बंगाल में हुई । इसका उद्देश्य पूरे देश और देश से बाहर के दर्शकों तक पहूंचना है । छत्तीस प्रस्तुतियाँ और अपने खाते में अनेक प्रतिष्ठित

---

[1] आतिरा- शरीरं कोंद, भाषा रचिकुम्बोल, भाशापोशिनी पत्रिका, मार्च 2009, पृ.35

पुरस्कारों को जोड़ते हुए इस नाट्य-मंडली ने भारतीय रंगमंच में सफलतापूर्वक अपना स्थान स्थापित किया है । राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नाट्य उत्सवों में प्रतिभागिता की है, स्त्रियों एवं युवा महत्वाकांक्षियों के लिए कार्यशालाएं और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए हैं और रंगोली नामक एन जी ओ के सहयोग से समाज के कमज़ोर वर्ग के बच्चों के लिए रंगमंच प्रशिक्षण कक्षाएं भी चलाई हैं । रंगकर्मी की अन्य महत्वपूर्ण योजना है स्टूडियो थिएटर, बेहतर रंगमंच को समर्पित यह उन दो स्त्रियों की अमर भावना को श्रद्धांजलि है जिन्होंने बंगाली रंगमंच को नया आयाम दिया । कोर्ट मार्शल, रुदाली, काशीनामा, हिम्मतमाई, अंतर्यात्रा, चंडालिका, हम मुखतारा आदि रंगकर्मी की प्रमुख प्रस्तुतियाँ हैं ।

2. द कंपनी, जिसकी स्थापना पद्मश्री नीलम मानसिंह चौधरी के द्वारा हुई है । सन् 1984 में जब नीलम मानसिंह जी ने अपने समूह 'द कंपनी' की स्थापना चंडीगढ़ में की तब वे शहरी अभिनेताओं के प्रशिक्षण के तरीकों के बारे में खोजबीन कर रही थीं और उन्हें यह तरीका मिला पंजाब की पारंपरिक शैलियों में । पंजाब के ग्रामीण प्रदेश की नक्काल परंपरा के माध्यम से उन्होंने अपनी नाट्य-भाषा की खोजबीन शुरू की । पर यह पारंपरिक ग्रामीण नाट्य-परंपरा सौन्दर्यबोध, तकनीक और प्रस्तुति के तरीकों में पूर्णतया विकसित नहीं थी । इन पारंपरिक कलाकारों एवं शहरी अभिनेताओं के साथ मिलकर काम करते हुए नीलम जी ने एक नई रंग भाषा का निर्माण किया, जहां स्वरूपों का सम्मिश्रण है, उनकी टकराहट है । इसने इतिहास, प्रदर्शन-स्थल, बिंबों और कथानक को देखने की एक नई दृष्टि दी । इस तरह के सम्मिश्रण ने जहां एक तरफ जुड़ाव पैदा करने का काम किया वहीं ज़ोरदार विरोध और टकराहट भी खडी की । यही जुड़ाव और टकराहट उनके रंगमंच की नाटकीयता को एक बड़े प्रतीक में बदल देता है । समाज के विभिन्न तबकों विभिन्न आर्थिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा साथ मिलकर एक रंगमंचीय अनुभूति पैदा करना इनके काम के मूल में है ।

नागमंडल, किचन कथा, एरमा, द लाईसेंस, ब्लड वेडिंग, द स्यूट आदि इस नाट्य-मंडली की प्रमुख प्रस्तुतियाँ हैं ।

3. 'विवादी', जिसकी स्थापना अनुराधा कपूर ने की है । इस नाट्य-मंडली की स्थापना सन् 1989 में नई दिल्ली में हुई । विवादी नाट्य-मंडली नाट्य-प्रस्तुतियों के साथ-साथ चित्रकार, संगीतकार, रचनाकार आदि कला से जुडी विभिन्न पहलुओं के प्रतिभा-धनी लोगों को भी प्रोत्साहन देती आ रही हैं । विवादी की प्रमुख विशेषता है कि यह अन्तःविषयों में कार्य करते हुए अभ्यास और अनुसंधान के बीच विनिमय का प्रयास करता है । परफॉरमेंस स्कल्प्चेर्स (performance sculptures) और इंस्टालेशन प्रोजेक्ट्स (installation projects) आदि से लेकर कार्य करने वाले विवादी ने टगोर, रुसवा, महेश एल्कुचवार, विजय तेंदुलकर, शेक्सपियर, इब्सन, हेनर मुल्लर आदि मशहूर रचनाकारों की रचनाओं को लेकर प्रस्तुतियाँ की हैं । सुन्दरी एन एक्टर प्रिपेयेर्स, नवलाखा, जीवित या मृत, अन्टिगनी, उमराव, विरासत आदि विवादी की बहुचर्चित नाट्य-प्रस्तुतियाँ हैं ।
4. ड्रामाटिक आर्ट एंड डिजाईन अकादमी, जिसकी स्थापना अमाल अल्लाना ने अपने पति निस्सार अल्लाना के सहयोग से की है । रंगमंचीय प्रस्तुतियों के साथ-साथ अन्य दृश्य एवं प्रदर्शनकारी कलाओं को प्रोत्साहन देती आने वाली इस नाट्य-मंडली में प्रमुख रूप से पांच कोर्स का प्रावधान किया गया है । अभिनय, निर्देशन, कोस्ट्यूम डिजाईन, एन्करिंग (anchoring) आदि विषयों पर केन्द्रित कोर्स है । रंगमंच के विभिन्न पहलुओं से जुड़े प्रतिभाधनी कलाकारों के सहयोग से चलने वाली इस नाट्य-मंडली ने एक नयी रंगभाषा और नयी प्रशिक्षण शैली को विकसित करने का प्रयास किया है । नटी विनोदिनी, महाभोज, आधे अधूरे, खामोश अदालत जारी है, आषाढ़ का एक दिन, किंग लियर, बीगम बरवे आदि इस नाट्य - मंडली की प्रमुख प्रस्तुतियाँ हैं ।
5. द क्रिएटिव आर्ट्स, जिसकी स्थापना रमनजीत कौर के द्वारा हुई है । रंगमंच एवं अन्य कलाओं में औपचारिक तथा सुचारू प्रशिक्षण के प्रसार तथा लोगों को इसके

प्रति जागरूक करने के उद्देश्य से स्थापित इस नाट्य-मंडली सन् 2002 में प्रारंभ हुई । राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय मेल-जोल के लिए कला के विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को अपने साथ जोड़ना भी इसका उद्देश्य है । पद्मश्री नीलम मानसिंह चौधरी, गोविन्द निहलानी, सुजाता सेन, आनंद लाल, संचयन घोष जैसी जानी-मानी हस्तियों ने समय-समय पर समूह के साथ सहभागिता निभाई है । समूह ने कार्यशाला, सेमीनार तथा साईट स्पेसिक प्रस्तुतियों के आयोजन के साथ-साथ मूल आलेखों की रचना तथा कला-प्रदर्शनियों के आयोजन का काम भी किया है, जिसे लोगों तथा संचार माध्यमों द्वारा खूब सराहना मिली । इस नाट्य-मंडली द्वारा प्रस्तुत मूल प्रस्तुतियों में द फोरस्ट पार्टी, क्लोज्ड स्पेस, बावरे मन के सपने इत्यादि महत्वपूर्ण हैं ।

6. अलारिपु, जिसकी स्थापना त्रिपुरारी शर्मा के द्वारा हुई है । सन् 1983 में स्थापित इस नाट्य-मंडली ने अव्यावसायिक रंगमंच, युवा स्त्रियों एवं लोक रंगमंच पर विशेष ध्यान देते हुए कई कार्यक्रम किये हैं । बाल रंगमंच को प्रोत्साहन देते हुए स्कूलों में रंग-कार्यशालाओं का आयोजन भी इस नाट्य-मंडली के कार्यक्रमों में प्रमुख है । इस नाट्य-मंडली के अनुसार रचनात्मकता न केवल प्रत्येक व्यक्ति में अन्तर्निहित है बल्कि यह स्वयं के अनुभव और अनुभव को विस्तारित करने और अभिव्यक्त करने के तरीकों में से एक है । अतः यह नाट्य-मंडली अपनी कार्यशालाओं तथा कार्यक्रमों के द्वारा एक ऐसे स्पेस को विकसित करने की कोशिश करती है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी सृजनात्मकता को द्योतित कर सकता है । बाल रंगमंच से जुडी कार्यक्रमों में क्रिएटीव ड्रामा, कविता, गीत, आर्ट एंड क्ले बर्क, फोटोग्राफी, रचना, कथावाचन आदि का प्रयोग किया है । इस नाट्य-मंडली की प्रमुख प्रस्तुतियों में आधा चाँद, संपदा, रूप-अरूप, बहू, लाडो मौसी, बदलाव आदि काफी लोकप्रिय हैं ।
7. बीईंग एसोसियेशन, जिसकी स्थापना राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय स्नातकों के एक ऐसे समूह द्वारा की गई जो उद्देश्यपूर्ण रंगमंच के प्रति कटिबद्ध थे, और अपनी

प्रस्तुतियों द्वारा दर्शकों को उद्वेलित करने के लिए आशान्वित थे । अब तक समूह की चार प्रस्तुतियों को अत्यधिक सफलता मिली है । वे थीं – इस कंबख्त साठे का क्या करें, रामू रामनाथन की पटकथा पर आधारित कोलैबोरेटर्स ; धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' का रूपांतरण; युद्धोपरांत और म्यूज़ियम...ऑफ़ स्पीशीस इन डेंजर । समूह का उद्देश्य सार्थक नाटक के माध्यम द्वारा लिंग भेद से लेकर वर्ग संघर्ष तक के पुराने, गहरे व गंभीर विवादास्पद मुद्दों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करना है ।

8. निरीक्षा, जिसकी स्थापना सी.वी. सुधी तथा डॉ.राजराजेश्वरी के संयुक्त तत्वावधान में हुई । सन् 1999 में निरीक्षा की स्थापना के पश्चात के रंगकार्यों की शुरुवात बच्चों के लिए आयोजित कार्यशालाओं से हुई । स्कूलों में औपचारिक रूप से बच्चों को देने वाली शिक्षा में लिंग-समानता के बोध का अभाव होता है । अतः जेंडर से संबंधित सूक्ष्म बोध रखने वाली रंगकर्मियों के कार्यान्वयन में आयोजित कार्यशालाएं लिंग-समानता का बोध बच्चों में फैलाने में अवश्य समर्थ होंगे । इसके अलावा स्त्रियों के लिए भी विशेष रूप से कार्यशालाओं का आयोजन निरीक्षा करती आ रही है । रंगमंच से जुड़ने वाली स्त्रियों के संबंध में समाज में प्रचलित जो बुरी धारणा है उसको बदलना तथा स्त्रियों की इनहिबिशन को दूर करके उन्हें रंगमंच की ओर आकर्षित करना आदि इन कार्यशालाओं के उद्देश्य हैं । रंगमंच से जुड़े विभिन्न विषयों पर संगोष्ठियों का आयोजन तथा रंगमंचीय प्रस्तुतियों का रूपायन आदि निरीक्षा के द्वारा करता आ रहा है । निरीक्षा की प्रमुख प्रस्तुतियों में प्रवाचाका, आनुन्गल इल्लात्ता पेंनुन्गल, कुडियोषिक्कल, द ट्रोल, पुनर्जनी आदि काफी बहुचर्चित एवं लोकप्रिय हैं ।

9. क्ले प्ले हाउस, जिसकी स्थापना सुरभी तथा उनके पति रियाज़ के संयुक्त कार्यान्वयन में हुई । इस नाट्य-मंडली की स्थापना सन् 2011 में हुई । रंगकर्म में विशेष रुचि रखनेवाले करीब बीस लोगों का एक समूह है । यह नाट्य-मंडली, जिसमें अभिनय, निर्देशन, लाइट डिसैनिंग, कोस्ट्यूम डिसैनिंग, संगीतकार आदि

विभिन्न पहलुओं में प्रवीण कलाकार शामिल हैं । रंगमंच पर स्त्रियों की उपस्थिति को बढाने के उद्देश्य से स्त्रियों के लिए कार्यशालाएं आयोजित करना इस नाट्य-मंडली का प्रमुख कार्यक्रम रहा है । इसके अलावा लाइट डिज़ाइन, अभिनय, निर्देशन आदि में रुचि रखनेवालों के लिए विशेषज्ञों के भाषण, प्रशिक्षण आदि का आलोचना भी किया जा रहा है । इस नाट्य-मंडली द्वारा प्रस्तुत प्रमुख नाट्य प्रदर्शन है ओच्चा, घोरराक्षसम, आडू पुलियाट्टम, पटप्पाट्टू, पालम आदि ।

10. कला पाठशाला, जिसकी स्थापना के.वी. श्रीजा तथा उनके पति नारायणन के संयुक्त तत्वावधान में हुई । केरल के एक ग्रामीण – क्षेत्र में स्थित इस नाट्य-मंडली के कार्यक्रमों में ग्रामीण जीवन की सादगी, सरलता और लोक-संस्कृति की झलक देखने को मिलता है । फसल की कटाई का उत्सव हर साल यह नाट्य-मंडली के द्वारा अनोखे ढ़ंग से मनाई जाती है । इस दिन गीत, नृत्य, नाट्य आदि की प्रस्तुति भी होती है । कला पाठशाला में अभिनय, नृत्य, मार्शल आर्ट आदि पर विशेष रूप से बच्चों, तथा युवाओं को प्रशिक्षण देता आ रहा है । इन सबके अलावा रंगमंचीय प्रस्तुति से जुडी विभिन्न पहलुओं पर केन्द्रित कार्यशालाओं का आयोजन होता रहता है । इस नाट्य-मंडली के द्वारा प्रस्तुत नाट्य-प्रदर्शनों में प्रमुख हैं – लेबर रूम, कल्याणसारी, ओरोरो कालाङलिल, कलमकारियुडे कथा आदि ।

3.4.2.2.4 महिला एकल रंगकर्मियों की देन

एकल नाट्य-प्रस्तुति एक विशेष मंचन शैली है, जिसमें एक-अकेले अभिनेता मंच पर उपस्थित होकर पूरे नाट्य की अभिव्यक्ति अपनी अभिनय-प्रतिभा के द्वारा करती है । इसमें किसी दूसरे अभिनेता की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं होती और इसकी सफलता भी इसी में है कि दर्शक को किसी भी क्षण किसी अन्य अभिनेता के न होने का अहसास न हो । भारत के विशेषकर हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच के विकास में महिला एकल नाट्य-प्रस्तुतियों का योगदान

अद्वितीय रहा है । लिंग-वर्चस्वी संस्कृति की इच्छाओं के अनुसार रूपायित एवं अनेक प्रकार की कंडीशनिंग प्रक्रियाओं से गुजरने वाली होती है प्रत्येक स्त्री-देह । किन्तु स्त्रीवादी रंगमंच के सन्दर्भ को देखा जाय तो मंच के विशेष स्पेस में प्रदर्शनकारी देह के रूप में ये स्त्री देह लिंग-वर्चस्व के चिह्नों को प्रश्नीकृत करने तथा एक प्रति-दृश्य-संस्कृति को विकसित करने में सफल होती दिखाई देती है । इस प्रकार की विशेषता सबसे ज्यादा एकल नाट्य-प्रस्तुतियों में पायी जाती है । समकालीन दौर में प्रयुक्त महिला एकल नाट्य-प्रदर्शनों ने लिंग-वर्चस्व को प्रश्नीकृत करते हुए रंगमंच पर अपनी अलग अनुभवों की दुनिया को उजागर किया है । मलयालम के प्रमुख रंगकर्मी एवं विचारक शंकर वेंकटेश्वरन के शब्दों में – स्त्रियों के सत्वर एवं अस्तित्वपरक समस्याओं को संबोधित करने वाली महिला एकल रंगाभिव्यक्तियों में स्त्रीत्व संबंधी सभी रूढ़ प्रारूपों (sterotypes) को तोड़ने के साथ-साथ स्त्रीत्व की स्वाभाविक चेतना को आत्मसात करने वाली है । डांस, थिएटर तथा पेफोर्मंस आर्ट आदि के तत्वों को ग्रहण करते हुए रूपायित एकल नाट्य प्रयोगों से नवीन रंगभाषा एवं दर्शकीय आदत उभरकर सामने आती हैं । इस प्रकार की एक प्रवृत्ति भारतीय रंगमंच में नहीं के बराबर थी । समकालीन भारतीय रंगमंच में कोरस वर्क (chorus work) की ही प्रमुखता रही थी । हबीब तनवीर, रतन थियम, बंसी कौर, कावालम नारायण पणिक्कर इत्यादि रंगकर्मियों के रंगकर्मों में कम्यूनिटी कोरस रिप्रजेंटेशन (community chorus representation) की प्रधानता देखी जा सकती है । किन्तु वर्तमान समय में विकसित समकालीन एकल रंगाभिव्यक्तियों में कम्यूनिटी कोरस की प्रधानता नहीं रही है बल्कि ऐसी रंगाभिव्यक्तियाँ स्त्रियों के सोलो म्यूटड वौइस् (solo muted voice) को प्रतिनिधित्व करती हैं ।"[1] इस प्रकार का एक परिवर्तन रंगमंच के क्षेत्र में एक नवीन चेतना को उजागर करती आ रही है ।

[1] शंकर वेंकटेश्वरन से अपर्णा वेणु का साक्षात्कार, देशाभिमानी पत्रिका, जून 19, 2016, पृ.38

भारत में विशेषकर हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच में आजकल महिलाओं की एकल नाट्य-प्रस्तुतियाँ काफी लोकप्रिय एवं बहुचर्चित होती आ रही हैं । माया राऊ, ज्योति दोगरा, मीरा अरुण, पद्मिनी चेतूर, मल्लिका तनेजा, जिषा, आशा देवी, सुरभी, सजिता मठत्तिल आदि रंगकर्मियों के द्वारा रूपायित नाट्य-प्रस्तुतियाँ स्त्री की अस्मिता को गहरे रूप में अभिव्यक्त करने वाली हैं । स्त्रीवादी विचारों से किसी न किसी रूप में प्रभावित इन एकल रंगाभिव्यक्तियों की अंतर्वस्तु में स्त्री के विशेष अनुभव, स्त्री का स्वत्व बोध, स्त्री की समस्याएँ आदि की गहरी अभिव्यक्ति पायी जा सकती है । साथ ही साथ इन एकल नाट्यों की नवीन रूप-संरचना एक अलग ढ़ंग की दर्शाकीय आदत या देखने की एक नयी शैली को विकसित करने में काफी सफल हुई दिखाई देती है ।

3.5 निष्कर्ष

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारत के सन्दर्भ में, विशेषकर हिन्दी तथा मलयालम के सन्दर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच जैसी विशेष परिकल्पना का अपना अद्वितीय एवं महत्वपूर्ण स्थान है । सदियों से भारतीय रंगमंच पर रूढ़ हो गयी तथाकथित सौन्दर्य-बोध की पुरुष-केन्द्रित संरचना को परिवर्तित करने का यह सृजनात्मक उद्यम काफी प्रभावशाली रहा है । सामाजिक सन्दर्भ में स्त्रीवादी रंगमंच स्त्री सशक्तीकरण के साधन के रूप में प्रयुक्त हुआ है तो कलात्मक सन्दर्भ में यह एक नवीन सौन्दर्य-चेतना को रूपायित करने का क्रियात्मक प्रयास है । यहाँ स्त्रीवादी रंगमंच स्त्रियों की अपनी अलग एवं अनन्य भाषा, संरचना एवं अभिव्यंजनात्मक शैली को विकसित करने का कलात्मक अथवा प्रदर्शनकारी माध्यम है । यह भारत की अपनी अनन्यता है कि यहाँ स्त्रीवादी रंगमंच ने दो विशिष्ट शैलियों में अपना विकास प्राप्त किया है । वे हैं पारंपरिक रंगमंच का स्त्रीवादी पुनर्रूपायन तथा समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच । रंगमंच की अन्यान्य पहलुओं को छूने वाले स्त्रीवादी हस्तक्षेप ने एक ओर आधुनिक रंगमंच में सालों से परिव्याप्त पुरुष-केन्द्रिता को चुनौती दिया है

तो दूसरी ओर पारंपरिक रंगमंच में सदियों से निहित पितृसत्तात्मक तत्वों को तोड़ने का प्रयास भी किया है । भारत में स्त्रीवादी रंगमंच के तत्वों का सही प्रयोग महिला रंगकर्मियों द्वारा निर्देशित समकालीन स्त्रीपक्षीय रंगमंचीय प्रस्तुतियों में तथा महिला कलाकारों के द्वारा सुव्यवस्थित एवं प्रदर्शित पारंपरिक रंगमंच के पुनर्रूपायित प्रस्तुतियों में ही पाया जा सकता है । स्त्रीवादी रंगमंच से जुडी रंगकर्मियों में प्रत्येक का अनुभव स्तर भिन्न होने के कारण नाट्य-प्रस्तुतियों में भी विविधता पायी जा सकती है । किन्तु सभी प्रस्तुतियों के मूल में भारतीय समाज के महिला-जीवन के विभिन्न आयाम तथा स्त्री-मुक्ति के विचार, पुरुष-वर्चस्व के प्रति प्रतिरोध आदि मौजूद हैं ।

अध्याय चार

पारंपरिक रंगमंच के समकालीन पुनर्रूपायन का स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य : हिंदी और मलयालम के सन्दर्भ में

4.1 विषय प्रवेश

कलाओं के सन्दर्भ में समसामयिक बोध का तात्पर्य है , प्रयोक्ता व प्रेक्षक दोनों का अपने परिवेश के प्रति सजग होना | रंगमंच वह सृजनात्मक विधा है जो समसामयिक जीवन के विविध व व्यापक परिदृश्यों से सीधा जुडता है | समसामयिकता न केवल रंगमंच की अंतर्वस्तु को अपितु उसके रूप तथा रूपायन की प्रक्रिया को भी व्यापक स्तर पर प्रभावित करती है | कलात्मकता एवं सौन्दर्यशास्त्रीय संकल्पनाओं को प्रभावित करने वाला इस समसामयिक बोध ने पारंपरिक प्रदर्शनधर्मी कलाओं को एक नवीन परिप्रेक्ष्य से देखने की दृष्टि प्रदान की | विशेषकर स्त्रीवादी चिंतन के प्रभाव ने पारंपरिक दृश्य कलाओं को अपनी रुढ़िवादी एवं पुरुष वर्चस्वी संरचना को तोड़कर स्वतंत्र व समसामयिक होने का अवसर भी प्रदान किया | अतः रंगमंचीय कलाओं के सन्दर्भ में समसामयिकता की प्रवृत्तियों में सबसे प्रमुख है पारंपरिक नृत्य-नाट्यादी रूपों का वर्त्तमान संवेदनाओं के साथ पुनर्रूपायन |

भारत के सन्दर्भ में देखा जाए तो सदियों से पुरुषसत्ता के द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में नियंत्रित एवं संचालित कुछ पारंपरिक रंगमंचीय कलाएं वर्तमान समय में अपने में निहित लिंग-भेदीय पूर्वग्रहों को चुनौती देते हुए तथा पितृसत्तात्मक तत्वों को तोडते हुए ऐसा सृजनात्मक माध्यम बन गया है , जो स्त्री की अस्मिता को गहराई से अभिव्यक्त करने में सफल होती जा रही है | भारत में नृत्य- नाट्य प्रभृति कुछ ऐसी प्रदर्शन धर्मी कलाओं में यह विशेष प्रवृति पायी जाती है , जो परंपरया सुरक्षित व पीढ़ियों से हस्तांतरित है | ऐतिहासिक दृष्टी से ये सभी कलाएं अपने आप में महत्वपूर्ण है | किन्तु प्रस्तुत शोध प्रबंध रंगमंच या नाट्य कलाओं पर केन्द्रित होने की कारण यहाँ अध्ययन केलिए मात्र नाट्य या अभिनय रूपों को लिया गया है | अर्थात् हिंदी तथा मलयालम के क्षेत्रों में प्रचलित ऐसी तीन प्रदर्शन धर्मी कला रूपों को यहाँ अध्ययन केलिए चुना गया है , जो स्त्रीवादी दृष्टि से पुनर्रुपायन की समसामयिक

रंगमंचीय प्रवृत्ति को बिलकुल आत्मसात करने वाले हैं तथा अपनी क्षेत्रीय सीमाओं को पार करते हुए देश विदेश में ख्याति आर्जित किये जाने वाले भी हैं | वे कलारूप हैं – नंङियार्कूत्त , पंडवानी तथा कथकलि | इन कलारूपों को अपनी विशेषताओं के आधार पर अध्ययन केलिए इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है –

1 . पारंपरिक महिला रंगमंचीय कलारूप का स्त्रीवादी पुनर्रूपायन : नंङियार्कूत्त | अर्थात् ऐसा रंगमंचीय कलारूप जो परंपरया मात्र स्त्रियों के द्वारा प्रस्तुत होता है किन्तु सदियों से पुरुष सत्ता के द्वारा नियंत्रित एवं संचालित है | उसका वर्तमान समय में स्त्रीपक्षीय पुनर्रूपायन |

2 . पुरुष प्रधान रंगमंचीय कलारूप का स्त्रीवादी पुनर्रूपायन : पंडवानी और कथकलि | अर्थात् परंपरया मात्र पुरुषों के द्वारा प्रस्तुत रंगमंचीय कलारूप जो वर्तमान समय में स्त्रियों के द्वारा भी प्रस्तुत होता जा रहा है तथा स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपायित भी होता जा रहा है | इन तीनों रंगमंचीय कलारूपों को आधार बनाकर इस अध्याय में अध्ययन- विश्लेषण किया जाएगा |

4.2 पारंपरिक कला का आधुनिक स्वरूप : लोक तथा क्लासिकी के सन्दर्भ में

जिन कलाओं को हम शास्त्रीय या क्लासिकी कहते है उनका उद्भव वर्ग-विभाजित समाज के विकास के विशेष सन्दर्भ में हुआ है | वर्ग-रहित समाज में कला जीवन तथा मेहनत के साथ जुड़ी हुई थी | परन्तु समाज में वर्ग विभाजन के आने के बाद कला जीवन से विस्थापित हो गयी | वर्ग विभाजित समाज की उत्पत्ति होने पर मेहनत करने वाले एक बहुसंख्यक विभाग तथा उनके मेहनत का शोषण करते हुए समाज में वर्चस्व स्थापित करने वाला एक अल्पसंख्यक विभाग दोनों जन्म लिये | इन अल्पसंख्यक विभागों केलिए मेहनत का समय कम तथा खाली समय ज्यादा बचा रहा | खाली समय का जब इन्होंने एक अलग मेहनत के रूप में बदला तब ऐसी

कलाएं रूपायित हुई , जिन्हें शास्त्रीय या क्लासिकी कहा जा सकता है | इस तरह कला मेहनत का एक विशेष रूप बन गयी | ठीक उसी प्रकार भारत के क्लासिकी रंगमंच के विकास को भी सामंती व्यवस्था के उद्भव के साथ जोड़कर देखना समीचन होगा | ये कलाएं ऊंची जाति के लोगों के बीच में ही व्यापृत थी | अर्थात् इसके प्रयोक्ता एवं प्रेक्षक दोनों ही ऊँची जाति के होते थे | इसके आस्वादन केलिए संस्कृत निष्ट या मानक भाषा की जानकारी आवश्यक थी , जो उस समय ,में निम्न जाती के लोगों केलिए संभव नहीं थी |

कालगत विशेषताओं , सत्तात्मक संबंधों तथा सांस्कृतिक पृष्टभूमि का प्रभाव किसी भी दृश्य कला के रूपगत , भावगत, स्थलगत एवं प्रेक्षकीय मंडलों में अवश्य रहता है | उदाहरण केलिए 'बरांक' नामक यूरोपीय सामंती सौंदर्यशास्त्र को ले सकते हैं | 'बरांक' के अनुसार नृत्य या नाट्य कला की प्रस्तुति राजा या शासक पर केन्द्रित होना चाहिए | अर्थात् प्रेक्षकीय स्थल में जहाँ शासक बैठा हुआ होता है उस स्थल के बिलकुल सामने खड़े हो कर ही नर्तक या अभिनेता को अपना अभिनय प्रदर्शित करना चाहिए | शासक के पीछे ही बाकी प्रेक्षक बैठ सकते थे | यहाँ अभिनेता के शारीरिक विन्यासों की संरचना मात्र शासक रूपी एक विशेष बिंदु पर केन्द्रित होती थी | भारतीय कलाओं की प्रदर्शन रीती में निहित सामने प्रज्ज्वलित दीप या ईश्वर जैसे बिंदुओं पर अभिनय को केन्द्रित करने वाली शैली में भी इसी बरांक सौंदर्यशास्त्र का प्रकार भेद पाया जा सकता है |

सामंती व्यवस्था के ह्रास के साथ–साथ कला संबंधी संकल्पनाओं में भी परिवर्तन आने लगे | सामंती व्यवस्था के समय दृश्य कलाओं में निहित अभिजात वर्गीय सौंदर्यशास्त्र तथा उसके वर्चस्वी तत्वों एवं एकत्ववादी परिप्रेक्ष्य को समग्र रूप से परिवर्तित करते हुए ही आधुनिकता ने रंग कला के क्षेत्र में भी कदम रखा | तब से शासक को केंद्र बिंदु बनाने वाली सौन्दर्यशास्त्रीय परिकल्पना के संकुचित स्तर पर अभिनय या रंगप्रदर्शन को पूरे प्रेक्षक समाज पर

केन्द्रित करने वाली एक विकेंद्रीकृत लोकतंत्रीय संकल्पना के उदार या विशाल स्तर पर ले जाने के व्यापक प्रयास होने लगे |

प्रदर्शनधर्मी लोक – कलाओं के सन्दर्भ में समसामयिक होने की यह प्रवृत्ति एक अलग रीती में प्रयुक्त होता दिखाई देता है | लोक कलाओं का स्वभाव क्लासिकी कलाओं से बिलकुल भिन्न है | वर्ग रहित समाज में उपजने के कारण लोक कलाएं जीवन तथा मेहनत के साथ जुड़ी हुई है | सामान्य जनता के कर्म-जीवन के साथ गहरे रूप में जुड़ी रहने वाली ए कलाएं सामान्य जन जीवन की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति का रंगमंचीय स्वरूप हैं | सामान्य जन समुदाय के विशिष्ट जनपदीय विशवास , आचार – विचार , अनुष्ठान, रूढ़ियाँ , सामुदायिक संस्कृति आदि का सशक्त प्रभाव लोक कलाओं में उपस्थित होते हैं | सामुदायिक संस्कृति तथा रुढियों की सीमाओं को पार करके जब इन कलाओं ने अपने रंगमंचीय पक्ष को प्रधानता के साथ उजागर करने लगा तथा वस्तु और रूप के स्तर पर नवीन प्रयोगों को स्वीकारते हुए समकालीन जीवन के विविध आयामों का उद्घाटन करने लगा तब से लेकर लोक कलाएं आधुनिक एवं समसामयिक होने लगी |

4.3 पारंपरिक रंगमंच का पुनर्रुपायन : स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य

पारंपरिक रंगमंच के वर्त्तमान स्त्रीवादी पुनारुपायन के दो प्रमुख रूप पाए जा सकते हैं –

1 . पारंपरिक महिला रंगमंच का स्त्रीवादी पुनर्रूपायन – नंङियार्कूत |

2 . पारंपरिक पुरुष प्रधान रंगमंच का स्त्रीवादी पुनर्रूपयन : पंडवानी और कथकलि |

दो रूपों में विभक्त इन तीनों रंगमंचीय कलाओं के आधार पर भारत के स्त्रीवादी रंगमंच के दूसरे चरण की इस विशिष्ट स्वरूप या प्रवृति का अध्ययन किया जाएगा |

4.3.1 नंङियारकूत्त

केरल में अतिप्राचीन काल से ही संस्कृत नाटकों के मंचन की एक शास्त्रीय परंपरा प्रचलित रही है , जो कूटियाट्टम नाम से विख्यात है | इस प्राचीन रंगावशेष की विभिन्न अभिनय शैलियों में एक है ' निर्वहणम' अर्थात् पूर्वकथा की प्रस्तुति | नाटक के किसी एक पात्र अपनी या अन्य किसी प्रमुख पात्र की पूर्वकथा का विवरण देता है , जिसे निर्वहणम् कहते है | कूटियाट्टम में प्रस्तुत सभी पात्र पुराणों से जुड़े हुए होते है , इसलिए किसी पात्र की पूर्वकथा के कथा सन्दर्भ को लेने केलिए पुराण ग्रंथों का आश्रय लेते है | राजा कुलशेखर वर्मा के द्वारा रचित सुभद्रधानंजयम नाटक के द्विदीय अंक मिश्रविष्कंभ में एक चेटी (सखी) का प्रवेश है | यह चेटी पात्र नाटक की नायिका सुभद्रा की सखी है , जिसका नाम है कल्पलतिका | इस कल्पलतिका के द्वारा निर्वहणम् के रूप में सुभद्रा के भाई श्री कृष्ण की कथा का अभिनय इसमें होता है | 217 श्लोकों से युक्त श्रीकृष्ण चरितम् नामक ग्रन्थ ही इसका आधार है | कल्पलतिका का यह निर्वहणम कूटियाट्टम से अलग से अलग स्वतन्त्र रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है , जो नंङियार्कूत्त या नंङियारम्माकूत्त नाम से जाने जाते है |

शास्त्रीय ढंग से प्रस्तुत इस एकल अभिनय रूप की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके प्रस्तुतीकरण के अधिकार मात्र स्त्रियों पर निर्भर होता है | इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत में प्राचीन समय से ही महिलायें रंगमंच के प्रयोगाधिकारी रही है | निस्संदेह इस दृश्य कला को भारत में प्रचलित महिला रंगमंच की एक जीवित प्राचीनतम प्रादेशिक अवशेष माना जा सकता है |

अन्य कई स्त्री पात्रों के एवं पुरुष पात्रों के भी निर्वहणम कूटियाट्टम में देखा जा सकता है | परन्तु मात्र काल्पलतिका का निर्वहणम ही नंङियार्कूत्त के नाम से स्वतन्त्र रूप में विद्यमान रहा | इससे दो बातों का अनुमान लगाया जा सकता है |

1 . श्री कृष्ण की कथाओं को एकल शैली में अभिनीत करने वाली किसी महिला रंग कला

यहाँ मौजूद रही होगी तथा कालक्रम में उसे कूटियाट्टम के साथ जोड़कर कल्पलतिका के निर्वाहणम की संभावनाओं को प्रयोग में लाया होगा |

2 . जो स्त्रियाँ अभिनय में काफी प्रवीण है उनकेलिए कूटियाट्टम में अभिनय के लिए उतना सन्दर्भ न मिल पाने के कारण उनकी अभिनय प्रतिभा को मंच पर प्रयुक्त करने के उद्देश्य से कल्पलतिका के निर्वहणम को कृष्ण कथाओं से जोड़कर विकसित किया गया होगा |

4.3.1.1 नाट्याभिनय एवं निर्वहणम

जैसा कि पहले ही सूचित किया गया है कि नाटक के किसी पात्र अपने या अन्य किसी प्रमुख पात्र की पुर्वकथा का विवरण प्रस्तुत करने की शैली को निर्वहणम कहता है | रसाभिनय की परिपुष्टि एवं कथानक को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने केलिए ही निर्वहणम शैली का रूपायन हुआ है | नाटक से सीधा संबंध न रखने वाले इस कथा सन्दर्भ या कथांश की प्रस्तुति की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें अभिनेताओं की स्वतंत्रता मौजूद रहती है | अपनी प्रतिभा अथवा प्रवीणता के अनुसार अभिनेता / अभिनेत्री इसे विस्तार से प्रस्तुत कर सकता है | कूटियाट्टम की तुलना में निर्वहणम की विशेषता यह है कि इसमें कथानक की प्रस्तुति वाचिक ढंग से नहीं बल्कि अभिनयात्मक ढंग से होती है | अर्थात् कूटियाट्टम में आंगिक , वाचिक , सात्विक एवं आहार्य चारों अभिनय शैलियों का प्रयोग होता है , लेकिन निर्वहणम में वाचिक अभिनय को छोड़कर बाकी तीनों शैलियों का प्रयोग होता है | विशेषकर मुद्रभिनय , मुखाभिनय एवं नेत्राभिनय के द्वारा ही अभिनेत्री कथा सन्दर्भ को प्रस्तुत करती है | अभिनय के बाद ही श्लोकों का आलापन होता है , वह भी अभिनेत्री के द्वारा नहीं बल्कि ताल बजाने वाली नंङियार के द्वारा होती है | इसके दो कारण होंगे –

1 . इसमें दृश्य की प्रस्तुतीकरण होती है , इस कारण से ही अभिनय के पहले और श्लोकों के उच्चारण बाद में होने की रीती स्वीकृत है |

2 . इस प्रस्तुतीकरण की कथानक का नाटक से सीधा संबंध न रहता है तथा यहाँ पूर्वकथा का विवरण नाटक के किसी पात्र के द्वारा होने के कारण कवि कल्पित वाक्यों के अलावा और कुछ बोलने की अनुमति अभिनेताओं को नहीं होती |

4.3.1.2 नंङियार्कूत्त की उत्पत्ति : प्रचलित दंतकथा

नंङियार्कूत्त की उत्पत्ति से संबंधित दंतकथा इस प्रकार है – नवीं शती में केरल का शासन करने वाला राजा कुलाशेखर वर्मा ने अभिनय कला में अत्यंत निपुण एक नंङियार स्त्री की अभिनय प्रतिभा में आकृष्ट होकर उनसे विवाह संबंध स्थापित किया | ऐसा होने के कारण उस नंङियार का स्व समुदाय से भ्रष्ट हो गयी | अपने कुलाचार एवं अनुष्ठान का पालन करने में उन्हें बाधा पड गयी , और इसके निवारण केलिए राजा कुलाशेखर वर्मा ने अपने नाटक 'सुभद्रधनंजयम' के द्विदीय अध्याय में कल्पलतिका के 'निर्वहणम' के रूप में 'श्रीकृष्ण चरितम्' को जोड़ दिया तथा अपने राज्याधीन मंदिरों में प्रतिवर्ष अनुष्ठान के रूप में 'श्रीकृष्ण चरितम्' को अभिनीत करने की अनुमति भी थी , जो नंङियार्कूत्त नाम से जानने लगी |

4.3.1.3 नंङियार्कूत्त की कथावस्तु

नंङियार्कूत्त की विषय वस्तु का संबंध राजा कुलाशेखर वर्मा द्वारा रचित सुभद्राधनंजयम से है | इस नाटक के द्वितीय अंक के मिश्रविष्कंभ में एक चेटी (सखी) पात्र का प्रवेश है | चेटी नाटक की नायिका सुभद्रा की सखी है , जिसका नाम है कल्पलतिका | कल्पलतिका के द्वारा निर्वहणम के रूप में श्रीकृष्ण कथा का अभिनय नंङियार्कूत्त का मूल है | २१७ श्लोकों से युक्त श्रीकृष्ण चरितं नामक ग्रन्थ ही इसका आधार है | भागवतम, कंसावाहो , गीतगोविन्दम , धनंजयम आदि विभिन्न ग्रंथों से

उद्धत श्लोकों को सम्मिलित करके श्रीकृष्ण चरितं का निर्माण हुआ है ,जो नंङियार्कूत्त का नाट्य पाठ है |

नंङियार्कूत्त की कथागति इस प्रकार है | एक बार तीर्थस्नान करते हुए अर्जुन ने प्रभास तीर्थ के तट पर भूत के द्वारा एक सुंदरी कन्या का अपहरण करके ले जाते हुए देखा | राजधर्म के अनुसार अर्जुन ने उस कन्या की रक्षा की | बिना पहचाने वे दोनों आपस में प्रेमासक्त हुए | वह कन्या श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा थी | भूत के द्वारा अपहरण करके ले जाते समय सुभद्रा की चोली कहीं गिर गयी थी | अर्जुन के दश नामों से उल्लिखित उस चोली को ढूंढकर लाने केलिए सुभद्रा अपनी सखी कल्पलतिका को प्रभासतीर्थ भेजती है | इस प्रकार अपनी स्वामिनी के आदेश का पालन करती हुई चोली को ढूंढकर प्रभास तीर्थ पर पहुचने वाली कल्पलतिका नामक पात्र नंङियार्कूत्त में रंगप्रवेश करती है | प्रभास तीर्थ के तट पर पहुंची कल्पलतिका के मनोविचारों में आने वाली श्रीकृष्ण की कथाएँ नंङियार्कूत्त की अंतर्वस्तु है |

मधुरापुरी के उद्भव से लेकर उग्रसेन का शासन काल, कंस और उसकी बहन देवकी का जन्म , उनके विवाह , कंस शाप , श्रीकृष्ण तथा बलराम का अवतार, वृन्दावन में कृष्ण का पालन पोषण , कृष्ण की बाल लीलाएं ,पुतानामोक्ष , शकटासुर वध , कालियमर्दन गोपिकाओं का वस्त्रापहरण , रासक्रीडा , गोवर्द्धनोद्धरण, मधुरागमन , कंस वध , जरासंध युद्ध , द्वारका पुरी का निर्माण , सुभद्रा का जन्म आदि प्रमुख प्रसंगों का विस्तार से अभिनय होता है | उसके बाद सुभद्रा की बाल्यावस्था, यौवनारंभ की दशा आदि से वर्णित पूर्वकथा ही नंङियार्कूत्त की कथावस्तु है |

4.3.1.4 नंङियार्कूत्त का रंगमंडप

परंपरया नंङियार्कूत्त का प्रस्तुतीकरण मंदिरों में ही होता है | और वहाँ मात्र इसके प्रदर्शनार्थ एक अलग प्रासाद का विधान है , जो 'कूत्तम्बलम' (नाट्य

मंदिर) कहा जाता है | इन्हीं कूत्तम्बलों में नंङियार्कूत्त का प्रदर्शन होता है | अभिज्ञों का विचार है कूत्तम्बलम की गणना नाट्यशास्त्रोक्त विकृत मध्यम कोटि के नाट्य मंडप में की जा सकती है | इसमें नेपथ्य, कुतपस्थान , रंगशीर्ष , रंगपीठ आदि ठीक उसी प्रकार अवस्थित है , जिस प्रकार नाट्यशास्त्र में व्यवस्थित किया गया है | यह नाट्य मंडप मंदिर परिसर के पंचप्रासादों में एक अलग अलग होता है | केरल के कई प्राचीन व प्रसिद्ध मंदिरों में कूत्तम्बलम विद्यमान है | तृशूर में स्थित वटकुन्नाथन मंदिर , इरिङालक्कुडा में स्थित कूटलमानिक्यम मंदिर , तिरुविल्वामला, पषयन्नुर , मुलाऩ्रूर , तिरुमान्धाकुन्न , कुषुर , तृप्पुनित्तुरा , चोट्टानिक्करा , चोव्वरा का शिव मंदिर, कृष्ण मंदिर , प्रलयक्काड , अम्बलाप्पूष , तकषी , कुमारनेल्लुर , तिरुवट्टा , आर्प्पुक्कारा , तिरुनाक्कारा , कवियूर आदि प्रदेशों के मंदिरों में नंगियार्कूत्त का प्रस्तुतीकरण होता था | जहाँ कूत्तम्बलम नहीं होता , ऐसे मंदिरों में भी नंगियार्कूत्त के प्रदर्शन हेतु अलग स्थान निर्धारित होता है | और वहीँ पर इसका अभिनय होता है | प्राचीन परंपरा के अनुसार मंदिरेतर किसी भी मंच पर इस कला का अभिनीत होना मना है | आजकल स्थिति बदल गयी है , अब तो मन्दिरेतर मंचों पर ही नहीं , विदेशों में भी यह कला अभिनीत हो रही है |

4.3.1.5 प्रस्तुतीकरण के अधिकारी

मंदिरों के कूत्तम्बलम में अनुष्ठान के रूप में प्रयुक्त होने वाले नंङियार्कूत्त के प्रस्तुतीकरण के अधिकारी नंपियार समुदाय के परिवारों के लोग है | ये लोग परंपरा या अपनी कुलवृत्ति के रूप में इस कला को अपनाते आ रहे है | इसका अभिनय नंपियार समुदाय की स्त्रियाँ , जो नंङियार कही जाती है , संपन्न करती है | श्लोकों का आलापन तथा करलाल बजाने का काम भी नंङियार स्त्रियों पर निक्षिप्त है | पृष्टभूमि में मिषाव (वाद्यमंत्र) का वादन नंपियार समुदाय के पुरुषों के द्वारा होता है | इसके प्रस्तुतीकरण केलिए उन्हें मंदिर से प्रतिफल भी मिलते है |

केरल में एक छोटी संख्या में नंङियार स्त्रियाँ आज भी मौजूद हैं , जो परंपरया अभिनय, नृत्य, गायन इत्यादि को अपनी कुलवृत्ति के रूप में स्वीकार करती है | प्राचीन काल में इन्हीं से वे अपनी आजीविका चलाती थी | ये अम्बलवासी (मंदिर से जुड़े विभिन्न कार्यों का पालन करने वाले) समुदाय के है | मंदिर से ही इन्हें अपनी आजीविका चलाने का आय मिलती थी | केरल में एक ऐसा समय रहा था जब स्त्रियों का रंगमंच में पुरुषों के साथ प्रवेश करना मना था तथा जो स्त्रियाँ रंगमंच से जुड़ी हुई थीं , उनकी सामजिक प्रतिष्ठा सर्वाधिक निचले स्तर की होती थी | ऐसे एक समय में भी कूटियाट्टम तथा नंङियार्कूत्त में स्त्रियों का रंग प्रवेश कभी मना नहीं था , और नंङियार की सामजिक स्थिति भी उच्च स्तर की थी | इनके परिवार के पुरुष सदस्य भी रंगकर्म से जुड़े हुए होती है तथा प्रस्तुतीकरण प्रदर्शन में इनका साथ देते हैं | नतीजा यह था कि वे अपने वंशानुगत अभिनय पेशों में लगे रहने पर भी अच्छे पारिवारिक जीवन बिता सकती थी | आजकल स्थिति बदल गयी है | अपनी पारिवारिक वृत्ति का पालन करने वाली नंगियार स्त्रियों की संख्या काफी कम होती जा रही है | लेकिन इन्होने रंगमंचीय कला केलिए जो योगदान दिए है , वह काफी महत्वपूर्ण है |

परंपरा के अनुसार नंङियार समुदाय की लड़की का अरंगेट्टम (पहला सार्वजनिक प्रदर्शन या अभिनय प्रस्तुति का श्रीगणेश) दस साल के उम्र के आसपास में मासिक धर्म शुरू होने के पहले होते है | उसके बाद ही लड़की नंङियार नाम से जाने जाती है तथा कूत्तम्बलम में अभिनय भी कर सकती है | स्त्रियाँ अपनी दिनचर्या के साथ अपने ही घर में इस कला का अभ्यास करती है |

नंङियार के प्रमुख तीन कर्त्तव्य होते हैं | वे हैं -

1 . कूटियाट्टम में स्त्री पात्रों की भूमिका निभाना

2 . नंङियारकूत्त का प्रदर्शन

3 . रंगवेदी में मिषाव के साथ करताल बजाना तथा आवश्यक सन्दर्भों में श्लोकों तथा गीतों का आलापन करना |

4.3.1.6 अनुष्ठान

भारत में प्राचीन काल से ही नाट्य को अनुष्ठान के रूप में प्रयुक्त करने की परंपरा विद्यमान है | जैसा कि महाकवि कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्रम' में नाट्य के बारे में स्पष्ट ही बताया है कि –

" देवानामिदामामानान्ति मुनयः कान्तं क्रतु चक्षुषम |"

ठीक उसी प्रकार नंङियार्कूत्त का प्रदर्शन भी एक पुनीत चाक्षुष यग्न के रूप में होता है | इस प्रकार मंदिरों के कूत्तम्बलम की पवित्र वेदी में प्रस्तुत नंङियार्कूत्त से जुडी अनुष्ठान क्रियाओं का अपना विशेष महत्त्व है |

नंङियार्कूत्त का प्रारंभ एक आनुष्ठानिक नृत्त से होता है , जो 'पुरप्पाड' नाम से जाने जाते है | अभिनय करने वाली नंङियार सबेरे उठकर स्नान करके अपने देह की शुद्धि करती है | उसके बाद वह कूत्तम्बलम में आकर नेपथ्य में दीप जलाती है | उस दीप के सामने पूर्वी दिशा की और बैठकर अपने माथे पर लाल रंग का फीता बांधती है | इसके बाद साज श्रृंगार शुरू होता है | इस वक्त मंदिर के पुजारी मंच पर गणेश की पूजा करता है | पूजा के बाद नंपियार प्रेक्षकों को नट्यारंभ की घोषणा देते हुए मिषाव बजाना शुरू करता है | उसके साथ रंगवेदी में करताल बजाने वाली नंङियार , गणेश , सरस्वती , शिव आदि के स्तुति गीत गाती है | उसके बाद नंपियार एक श्लोक का आलाप करता है , जिसे 'अरंगुतली श्लोक' कहा जाता है | दो आदमी आकर पर्दा पकड़ने पर अभिनय करने वाली नंगियार मंच पर आती है और पर्दा के पीछे खड़ी होकर मिषाव की वंदना करती हुई नृत्त प्रारंभ करती है | इसे 'मरविल क्रिया' कहते है | 'मरविल क्रिया' पूरा होने के बाद पर्दा हटाया जाता है तथा अभिनेत्री प्रेक्षकों के सामने खड़ी होकर 'कूत्त' प्रारंभ करती है | नंङियार कल्पलतिका (पात्र)

के स्थायी भाव में अभिनय करती है | इसके बाद विशेष नृत्त की प्रस्तुति है , जो 'नित्यक्रिया' नाम से जाना जाता है | इसके बाद भगवान शिव एवं देवी पार्वती का केशादिपाद वर्णन एवं दिकपालकों की वंदना है | ये सब पूरा करने के बाद अभिनेत्री मंदिर में मूर्ती के सामने खड़ी होकर घंटी बजाती हुई प्रार्थना करती है , नंपियार और करताल बजाने वाली नंङियार भी उसका अनुगमन करती है | एक और बार अभिनेत्री मंच पर आकर रंगवेदी की वंदना करती है | इसके बाद दूसरे दिन निर्वहणम से शुरू होता है | नंङियार श्रीकृष्ण चरितम की कथानक का अभिनय नाट्यधर्मी शैली में करती है |

4.3.1.7 अभिनय शैली

नंङियार्कूत्त की अभिनय शैली बिलकुल शास्त्रीय एवं नाट्यधर्मी है | नाट्यशास्त्रोक्त नाट्यधर्मी अभिनय पद्धति का अक्षरशः अनुसरण करने वाली इस कला में सात्विक, आंगिक तथा आहार्य तीनों अभिनय प्रकारों का सामंजय सम्मलेन पाया जाता है | नंङियार्कूत्त के रंगपाठ का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसके अभिनय संकेत एवं अभिनय शैली कूटियाट्टम से बिलकुल भिन्न नहीं है |

अभिनय प्रकारों में सबसे प्रमुख है सात्विकाभिनय , जिसका नंङियार्कूत्त में सर्वोत्तम स्थान दिया गया है | इसका सहायक रहना ही आंगिक आदि इतर अभिनय शैलियों का धर्म मन जाता है | रोमांच , वेपथु आदि सात्विक भावों के सहारे मूल कथानक की अंतरात्मा का रस रूप में प्रस्तुतीकरण जो सात्विकाभिनय कहलाता है , नंङियार्कूत्त के सन्दर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है | अभिनेत्री अपने मुख राग एवं आँखों के चाल के सहारे विविध भावों व रसों को बड़ी तन्मयता के सहारे प्रस्तुत करती है | अभिनय में नेत्रों या दृष्टि का जैसा उपयोग कूटियाट्टम व नंङियार्कूत्त में पाया जाता है , वैसा अन्यत्र नहीं है | नाट्याशात्र में भी बताया गया है –

" इह भावा रसाश्चैव दृष्ट्यामेव प्रतिष्ठिता: |

दृष्ट्या हि सूचितो भाव: पश्चादङ्गैर्विभाव्यते ||"[1]

नंङियार्कूत्त में यद्यपि सर्वोत्तम स्थान सात्विकाभिनय को दिया गया है , यथापि आंगिक अभिनय भी कम महत्वपूर्ण नहीं है | अंगों और उपांगों की विविध चेष्टाओं एवं भाव मुद्राओं के सहारे अर्थ की अभिव्यक्ति की जो पद्धति है , वही आंगिकाभिनय कहलाती है | नंङियार्कूत्त में आंगिकाभिनय में हस्त मुद्राओं के अतिरिक्त आकाशाचारी , भौमाचारी जैसी विविध चारियाँ तथा विविध प्रकार से ताल – लयों से युक्त नृत्त – नृत्य आदि का भी प्रयोग किया जाता है | नंगियार्कूत्त में प्रेत्येक शब्द और शब्दांश केलिए ही नहीं ,विभक्ति ,उपसर्ग , प्रत्यय आदि केलिए भी अलग अलग मुद्रायें होती है | इनके सहारे सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ का भी यथाविधि विस्तृत अभिनय किया जाता है | ऐसा बताया गया है कि –

" यातोहस्त ततो दृष्टि

यतो दृष्टि ततो मन:

यतो मन: ततो भाव:

यतो भाव : ततो रस: "[2]

इसमें अभिनय विस्तार की पद्धति पायी जाती है | प्रत्येक श्लोक का पूरा विस्तृत अभिनय होता है | श्लोक के अर्थ की विस्तृत व्यवस्था के बाद अंत में ही श्लोक का उच्चारण होता है , वह भी अभिनेत्री के द्वारा नहीं बल्कि करताल बजाने वाली नंङियार के द्वारा होता है | नंङियार्कूत्त की अभिनय शैली की और एक विशेषता यह है कि यह कला एकाहार्य प्रधान होते हुए भी अनेकाहर्यों के अभिनय का वाहन करने वाली है | एक ही पात्र या अभिनेत्री के द्वारा अनेक पात्रों की स्थायियों में

---

[1] भरत मुनि- नाट्यशास्त्र-14, श्लोक 31

[2] मितेश जोशी- सुसंस्कृत, अगस्त 25, 2018, www.loksatta.com

अभिनय करना , जो 'पकर्न्नाट्टम्' कहा जाता है , इस कला की गंभीरता का सूचक है |

नंङियार्कूत्त में श्लोकों का उच्चारण प्रसंगानुसार अन्याय रागों में किया जाता है | नंगियार्कूत्त और कूटियाट्टम में साधारनतया बीस राग प्रयुक्त होते है | जिनके नाम इस प्रकार है – मुंड , श्रीकंठी , तोण्ड , आर्त , इंदल , मुरलिंदल , वेलाधूलि ,दाणं , तर्क , वीरतर्क , कोरकुरिंजी , पौराली , पुरानीर , दुखगंधर , चेटीपंचम , भिन्नपंचम , श्रीकामर , कैशिकी , घटंतरी तथा अंतरी | अभिज्ञों का कथन है कि इन रागों अथवा स्वरों का संबंध शास्त्रीय संगीत से कम और वैदिक रागों से अधिक है | इन स्वरों या रागों के उपयोग की व्यवस्थाएं निश्चित है | भावों के अनुसार ही इनकी प्रयुक्ति होती है | उदाहरण केलिए श्रृंगार रस एवं रतिभाव के अभिनय में 'आर्त' नामक राग का उपयोग होना चाहिए |-

"शृंगारे रतिभावे च

प्रायेनार्तौ निगद्यते |"[1]

इसी तरह अन्य रागों के उपयोग की भी व्यवस्थाएँ है |

उपरोक्त दोनों अभिनयों के समान ही नंङियार्कूत्त का आहार्याभिनय भी विशेष उल्लेखनीय है | वेश भूषा , रंग प्रसाधन आदि आहार्य संविधान के अंतर्गत आते है |

4.3.1.8 नंङियार्कूत्त का पुनर्रूपायन (समकालीन सन्दर्भ)

प्रदर्शन एवं दृश्यानुभूति की दृष्टि से वर्तमान समय में प्रयुक्त एवं प्रचलित नंङियार्कूत्त मंदिरों में अनुष्ठान के रूप में प्रस्तुत अभिनय के रूप से भिन्न है मंदिरों में अनुष्ठान के रूप में प्रदर्शित होने वाले नंङियार्कूत्त की स्थिति आज बिलकुल

---

[1] पी.के. वेणु- संस्कृत रंगमंच और कूटियाट्टम, केरल की सांस्कृतिक विरासत, सं. जी. गोपीनाथन, पृ.91

शोचनीय है | आनुष्ठानिक प्रदर्शनों को देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर बाकी सभी प्रदर्शनों की संरचना में कालोचित परिवर्तन एवं सुघटित अभिनय पद्धति की भद्रता नहीं देखा जा सकता है | और यह बात स्पष्ट रूप से जानना समझना काफी मुश्किल है कि मंदिरों में प्रदर्शित कल्पलतिका के निर्वहणम का आदि रूप किस प्रकार का था | मंदिर से संबंधित अनुष्ठान होने के कारण तथा नंङियार समुदाय के सदस्यों केलिए अपना कुलधर्म होने के कारण इस कला को बस एक आनुष्ठानिक क्रिया के रूप में संक्षेप में वे करते आ रही है | अनुमान लगाया जा सकता है की इसके कुछ विशेष कारण होंगे | वे निम्नलिखित हैं–

1 . सामजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में आए परिवर्तन |

2 . प्रशिक्षित अभिनेत्रियों का अभाव |

3 . परिवर्तित समाजिक स्थिति में स्त्रियों के जीवन एवं सुरक्षा की समस्याएं |

4 . बदलते नैतिक मूल्य |

5 . मंदिरों से मिलने वाले प्रतिदत्त की कमी |

6 .आस्वादकों तथा मंचों की कमी |

7 . घटिया तौर पर पूरी शास्त्रीय कलाओं पर पड़ी शोचनीयता |

इन सभी कारणों से ही शायद नंङियार्कूत्त के विस्तृत अभिनय की प्रक्रिया नष्ट हो गयी होगी | आज प्रचलित एवं विख्यात जो नंङियार्कूत्त है वह तो रूपगत दृष्टी से इस आनुष्ठानिक प्रस्तुतीकरण की संक्षिप्त प्रदर्शन क्रिया से थोड़ा बहुत भिन्न है |

नंङियार्कूत्त नामक निर्वहणम का प्रचार – प्रसार एक ऐसे समय में काफी बढ़ने लगा था जबकि कूटियाट्टम में निर्वहणम की प्रधानता कम होती जा रही थी |

अभिनय संकेत तथा प्रदर्शन शैली में कूटियाट्टम से बिलकुल अभिन्न नंङियार्कूत्त का प्रचार प्रसार बढ़ने के तथा यह कला काफी लोकप्रिय होने के कई कारण है | उनमें प्रमुख है –

1 . मंदिरेतर मंचों में प्रदर्शन

2 . जातीयता के वर्चस्व से मुक्ति

3 . अनुष्ठान से ज्यादा कलात्मकता का महत्त्व

4 . कला प्रशिक्षण संस्थाओं का विकास तथा आचार्यों के द्वारा किये गए उद्धार कार्य

5 . स्त्री पक्षीय विचारों की सामजिक प्रतिष्ठा

6 . समकालीन भावबोध

नंङियार्कूत्त के पुनरुद्धान के समय की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति का अपना विशेष महत्त्व है | केरल में कलामंडलम नामक कला प्रशिक्षण संस्था की स्थापना के उपरांत कलाओं को राष्ट्र निर्माण को प्रबल करने वाले इतिहास निर्माण के हिस्से के रूप में स्वीकार किये जाने लगे | मात्र कूत्तम्बलम में प्रदर्शित कूटियाट्टम, कलामंडलम मार्गी जैसी संस्थाओं में प्रदर्शित होने लगा | वहीं से नंङियार्कूत्त का पुनरुद्धान भी शुरू हुआ | कलाओं को स्वत्व, इतिहास निर्माण एवं राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के रूप में देखने वाला आधुनिकता की भावुकता अत्यंत साहित्यात्मक थी | इतिहास एवं कला समीक्षा जैसी आधुनिकता की उपाधियों ने साहित्य के संगत को आधुनिकता के संगत के रूप में अभेद किया | चित्र कला तथा शिल्प कला के अर्थों की साहित्यिक व्याख्या करने वाली आस्वादन भी इससे भिन्न नहीं रहा | आधुनिक साहित्य बोध के सबसे बड़ी विशेषता यह थी की उसकी अंतर्वस्तु की दृढ़ता एवं आधुनिक समय बोध ने नंङियार्कूत्त की नवीन संरचना को उसकी आतंरिक ऊर्जा को नष्ट किये बिना आधुनिक भावबोध से जोड़ दिया |

कृष्ण कथाओं के विशेष खण्डों को उसकी क्रमबद्ध श्रेणी से अलग करके प्रत्येक खंड का स्वतन्त्र रूप से अभिनय किये जाने लगा | उदाहरण केलिए पुतनामोक्ष , गोवर्द्धनोद्धारण , कालियामर्दन , कंस वध , रासक्रीडा जैसे विशेष अभिनय सन्दर्भों को तैयार करके एक या दो घंट में प्रदर्शन का कार्य | इससे एक ऐसी संरचना रूपायित हुई जो विषय वस्तु के सन्दर्भ में संपूर्ण तथा आधुनिक समय बोध से संपन्न था | कृष्ण कथाओं के खण्डों की लोकप्रियता एवं नंङियार्कूत्त के संरचनात्मक सौंदर्य एवं रूप की सरलता के कारण यह परिवर्तन आधुनिक समय में आस्वादकों के बीच काफी स्वीकृत हुए |

नंङियार्कूत्त की वेश भूषा में भी आधुनिक दृश्य बोध के अनुरूप परिवर्तन हुई | इसका श्रेय कलामंडलम में आचार्यों के द्वारा दिए गए उद्धार कार्यों को दिया जाता है | शास्त्रीय कलाओं की वेश भूषाओं की विशेषता उसकी लोकधर्मिता से भिन्न स्वभाव है | परन्तु आधुनिक नंङियार्कूत्त की वेश भूषा कूटियाट्टम की अभौमिकता से भिन्न व्यक्ति प्रधान आधुनिकता बोध के आदर्श रूप से कतिपय मिलने जुलने वाली है | हरा , लाल या काला इत्यादि रंगों से मुख को अलंकृत करने वाला कूटियाट्टम की वेश भूषा से मनुष्य की त्वचा से समता रखने वाले स्वाभाविक रंग से मुख का अलंकरण करनेवाली नंङियार्कूत्त की वेश भूषा आधुनिकता बोध के काफी अनुरूप है |

4.3.1.9 स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप

जैसा कि पहले ही सूचित किया गया है कि प्राचीन समय से भारतीय रंगमंच में निहित महिलाओं की सजीव उपस्थिति का सशक्त प्रमाण है केरल में प्रचलित नंङियार्कूत्त नामक नाट्य शैली | सामंती व्यवस्था के सत्तात्मक संबंधों तथा पुरुष वर्चस्व की जड़ों के जकड में पड़कर सदियों से शुष्क हुई इस महिला रंगाभिव्यक्ति शैली का पुनरुद्धार तथा स्त्री पक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपायन वर्तमान समय में हुआ है | सन 1980 के बाद के समय में केरल में अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों में स्त्री की

अस्मिता का प्रश्न विचार बहस का विषय बन गया था| नंङियार्कूत्त का क्षेत्र भी इस नवीन स्त्री चेतना से वंचित नहीं रह गया| नंङियार्कूत्त की जड़ों में ग्रस्त पुरुष वर्चस्व के बंधन को पहचान लिया गया तथा उसे तोड़कर स्वतंत्र व स्त्री पक्षीय रूप से प्रतिष्ठित करने का प्रयास भी किया गया| स्त्री पक्षीय विचारों से प्रभावित कलाकारियों ने महिला रंगमंच की प्राचीनतम शैली विशेष को स्त्री की स्वत्वाभिव्यक्ति केलिए सृजनात्मक ढंग से उपयुक्त भी किया|

नंङियार्कूत्त के क्षेत्र में स्त्री पक्षीय हस्तक्षेप प्रमुखत: तीन रूपों में दिखाई देता है|

1 . मात्र अनुष्ठान के रूप में सीमित हो गए नंङियार्कूत्त की स्त्री स्वत्वाभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में प्रयुक्ति| मात्र एक विशेष समुदाय की स्त्रियों के द्वारा मंदिर के भीतर अनुष्ठान के रूप में प्रदर्शित होने वाली इस प्रदर्शन धर्मी कला को उसके जातीय रुढ़िवादी बंधन से मुक्त करके मंदिरेतर मंचों में बिना किसी भेद भाव से सभी जातियों की स्त्रियों को प्रस्तुत करने का अवसर स्त्री कलाकारों की अदम्य कोशिश से प्राप्त हुआ| मंदिरों के भीतर प्रस्तुत नंङियार्कूत्त सालों से मात्र एक आनुष्ठानिक क्रिया के रूप में संक्षेप में प्रस्तुत हुआ करते थे| किन्तु बुजुर्ग लोगों की मौखिक सूचनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सालों पहले एक ऐसा समय रहा था जबकि नंङियार्कूत्त का प्रदर्शन एवं आस्वादन सजीव रूप से हुआ करते थे| अपनी अभिनय प्रतिभा से दर्शकों के मन को बहलाने वाली प्रवीण अभिनेत्रियाँ भी नंङियार्कूत्त के क्षेत्र में मौजूद थी| किन्तु बदलती सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों एवं पुरुष सत्ता के प्रभाव ने स्त्रियों की सजीव उपस्थिति में बाधा उपस्थित किया| केरल कलामंडलम की स्थापना के पश्चात् नंङियार्कूत्त के सुधार को केंद्र में रखते हुए कई प्रयास कलाकारियों में किये| नंङियार्कूत्त के प्रदर्शन के लिए आवश्यक अभिनय-प्रशिक्षण की योजना कलामंडलम में हुई| कलामंडलम गिरिजा, कलामंडलम शैलजा तथा मार्गी सती - इन तीनों कलाकारियों के सामूहिक प्रयास से

नंङियार्कूत्त की पुनर्प्रतिष्ठा हुई | इन कलाकारियों ने इस कलारूप के प्रदर्शनकारी तत्वों को या इस कला के रूप संरचना और अभिनय शैली में निहित अनंत संभावनाओं को उजागर करने का प्रयास किया | इनके साथ साथ उषा नंगियार , मार्गी उषा , कलामंडलम प्रसन्ना आदि कलाकारियों ने भी गौरव से नंङियार्कूत्त का अभ्यास किया तथा स्वतन्त्र रूप से मन्दिरेतर मंचों में इसे प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया | एकल नाटक शैली की यही विशेषता है की उसमें अभिनय की अनंत संभावनाएं अवश्य रहती है | अर्थात एक ही व्यक्ति के द्वारा कई पत्रों के स्थायी भाव में अभिनय करने की संभावना एकल नाट्य में मौजूद है | इन अनंत संभावनाओं को बड़ी तन्मयता के साथ प्रयुक्त करने वाली महिला कलाकारों ने स्त्री के निजी अनुभवों और उसकी अस्मिता को अभिव्यक्त करने केलिए उपयुक्त एक सशक्त माध्यम के रूप में नंङियार्कूत्त के प्रदर्शनकारी स्वरूप को स्वीकार किया |

2 . वस्तु तथा रूप के स्तर पर पुरुष सत्ता के द्वारा प्रतिष्ठित रूढ़ियों का खंडन असल में नंङियार्कूत्त की रूप संरचना के मूल में कोई लिंग भेदिय तत्व मौजूद नहीं है | पुरुष केन्द्रित मानसिकता ने इस कलारूप में अपने वर्चस्व को स्थापित करने केलिए अलग तरीका अपनाई है | अर्थात् नंङियार्कूत्त के क्षेत्र में कुछ ऐसी रूढ़ियों को प्रतिष्ठित किया गया है , जो सचमुच स्त्री विरोधी है | पारंपरिक रूप से नंङियार्कूत्त के ऊपर थोपे गए इन स्त्री विरोधी तत्वों और रूढ़ियों को तोड़कर स्त्रीपक्षीय दृष्टि से उसे पुनः प्रस्तुत करने का जो प्रयास महिला कलाकारों ने किया है वह नंङियार्कूत्त के क्षेत्र में होने वाला सबसे सशक्त स्त्री पक्षीय हस्तक्षेप था | इस हस्तक्षेप ने नंङियार्कूत्त को पूर्ण रूप एक स्त्री पक्षीय कला के स्वरुप में परिणत किया | कूटियाट्टम और नंङियार्कूत्त के संबंध में यह रुढ़ि प्रचलित थी कि मंच पर पंचकन्याओं को प्रस्तुत नहीं किया जाना है |

अहल्या , द्रौपती , सीता , तारा , मंडोदरी आदि पौराणिक स्त्री पात्र पंचकन्याओं के नाम से विख्यात हैं | इन पंचकन्याओं की स्तुति करने वाला श्लोक भी प्रसिद्ध है | वह इस प्रकार है –

"अहल्या द्रौपती सीता

तारा मंडोदरी तथा |

पंचाकथा: स्मरेनित्यं

महापातकनाशनम् ||"[1]

महाकवि भास के द्वारा रचित प्रतिमानाटक , अभिषेक नाटक , भवभूति का उत्तर रामचरित , महावीर्चारित , शक्तिभद्र का आश्चर्य चूड़ामणि , भट्टनारायण का वेणीसंहार, कुलशेखर वर्मा का सुभद्रधनंजयम , नीलकंठ का कल्याणसौगंधिकम आदि संस्कृत नाटकों में इन पंचकन्याओं की उपस्थिति देखी जा सकती है | किन्तु मंच पर इनका प्रस्तुतीकरण नटों में होता था | असल में ये पांच स्त्रियाँ नाटक में सशक्त एवं व्यक्तित्व वाले चरित्र के रूप में उपस्थित है | अतः इन पात्रों की प्रस्तुति एवं अभिनय की संभावनाएं भी अनंत है | कूटियाट्टम और नंङियार्कूत्त के क्षेत्र में निहित पुरुष वर्चस्व ने ही इन पात्रों को मंच से दूर रखकर प्रदर्शन में स्त्रियों की भूमिका को अप्रधान बनाया है | सन 1980 के बाद के समय से लेकर कूटियाट्टम और नंङियार्कूत्त के संबंध में कलाकारियों के बीच विचार बहस शुरू हुए तथा पंचकन्याओं को मंच पर प्रस्तुत करने का ऐतिहासिक कदम उठाया गया | कलामंडलम की स्नातक मार्गी सती ने नंङियार्कूत्त के मंच पर सीता की भूमिका को प्रस्तुत किया | उसके बाद उषा नंङियार नामक मशहूर कलाकारी ने द्रौपदी , मंडोदरी , अहल्या इत्यादि अन्य स्त्री पात्रों को भी नंङियार्कूत्त के रूप में मंच पर प्रस्तुत किया | शक्तिभद्र के आश्चर्य चूड़ामणि के निर्वहणम के रूप में सीता की

---

[1] उषा नंङियार- कूटियाट्टत्तिले स्त्री, पेन्नरंङ, सं. डॉ.राजलक्ष्मी, डॉ.प्रिया नायर, पृ.45

भूमिका को प्रस्तुत किया गया | भट्टनारायण द्वारा रचित वेणीसंहार से द्रौपदी कथासंदर्भ को तथा शामिभद्र के आश्चर्य चूड़ामणि से मंडोदरी के कथासन्दर्भ के उद्धृत करके नंङियार्कूत्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है | अहल्या का पात्र किसी नाटक में उपस्थित नहीं है | अत: अहल्या के कथा सन्दर्भ को पौराणिक एवं मिथकीय ग्रंथों से लिया गया है | अभिनय की अनंत संभावनाओं से भरी इन स्त्री पात्रों के कथा संदर्भ के वैविध्य और चरित्र की विशेषताओं एवं सूक्ष्म भावों को मंच पर मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने वाले इन नंङियार्कूत्त प्रदर्शन आस्वादकों को आकर्षित करने में सफल हुए है |

मंच पर अभिनय करने वाली स्त्री की देह भाषा , चाल आदि के संबंध में नेंगियार्कूत्त में कुछ रूढ़ियाँ प्रचलित थी | सामंती संस्कृति और पुरुष सत्तात्मक विचारों के द्वारा निर्तित नैतिक बोध ही इस प्रकार की रुढियों के मूल में है | स्त्री की देहभाषा और चाल की स्वतंत्रता समाज में सदियों से पुरुषों के द्वारा नियंत्रित एवं कंडीशंड (conditioned) है | इसका स्पष्ट प्रभाव नंङियार्कूत्त में भी पाया जाता है | मंच पर उपस्थित स्त्री को भी इन सामंती पुरुष नैतिक मूल्यों का पालन करना पड़ता था | अतः नंङियार्कूत्त में उपस्थित प्रदर्शन कारी स्त्री देह को अपनी इच्छा के अनुसार स्वाभाविक रूप से अभिनय करने की स्वतंत्रता नहीं होती थी | पुरुषों के द्वारा निर्मित ए रूढ़ियाँ अभिनेत्रियों केलिए मंच पर अपनी अभिनय प्रतिभा को पूर्ण रूप से प्रकट करने में बाधा स्वरूप उपस्थित हो जाती है | उदाहरण केलिए युद्ध की तैय्यारी , युद्ध का वर्णन , पर्वत का उत्थान आदि विशेष प्रसंगों के अभिनय केलिए हाथ पैर को तोडा ऊपर उठाना, छलांग मरना आदि शारीर चेष्टाएँ का सहारा लेना पड़ता है | किन्तु पुरुष निर्मित रुढियों ने ऐसी एक धारण को प्रतिष्ठित किया है कि मंच पर अपने शारीर को मुक्ति गति के साथ उपयुक्त करना भद्र महिलाओं केलिए बिलकुल शोभाकारक नहीं है | इस प्रकार की रूढ़ियों के कारण पूर्व प्रस्तावित अभिनय प्रसंगों को सही ढंग से स्त्रियाँ मंच पर प्रस्तुत नहीं कर पाती | अतः वर्तमान समय में महिला

कलाकारों ने ऐसी रूढ़ियों को तोड़कर नंङियार्कूत्त स्वतन्त्र बनाने की कोशिश की है | इससे कलाकारियाँ अपनी अभिनय प्रतिभा को मंच पर पूर्ण रूप से प्रकट कर सकती है तथा किसी भी कठिन अभिनय प्रसंग को मंच पर बिना किसी संकोच के साथ प्रस्तुत भी कर सकती है | इस सन्दर्भ में उषा नंङियार , मार्गी सती , कलामंडलम गिरिजा , मार्गी उषा , अपर्णा नंङियार , कलामंडलम सिंधु , इंदु. जी, कपिला वेणु आदि कलाकारियों के योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं |

3 . नवीन विषय वस्तुओं की स्वीकृति तथा स्त्री पक्षीय दृष्टी से उनकी व्याख्या | वर्तमान समय में नंङियार्कूत्त के क्षेत्र में होने वाले सबसे सशक्त एक और स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप है नवीन स्त्री केन्द्रित विषय वस्तुओं का समावेश | परंपरया नंङियार्कूत्त में विषयवस्तु के रूप में श्रीकृष्ण की कथाएं प्रयुक्त होती है | वर्तमान समय में इस स्थिति में परिवर्तन आया है | कृष्ण की कथाओं के अलावा कुछ ऐसी पुराण कथा सन्दर्भों को भी विषय वस्तु के रूप में स्वीकार किया जाने लगा जो विस्तृत अभिनय के योग्य हो | समकालीन स्त्री की संवेदनाओं को अभिव्यंजित करने वाली विषय वस्तुओं को नेंगियार्कूत्त में प्रयुक्त करने का प्रयास वर्त्तमान समय में व्यापक तौर पर होता जा रहा है | नंङियार्कूत्त में विषय वस्तु के स्तर पर हुए समकालीन एवं स्त्री पक्षीय हस्तक्षेप प्रमुखतः दो रूपों में होता है | वे हैं –

1 . प्रचलित विषय वस्तु की स्त्री पक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या |

2 . नवीन विषय वस्तुओं की स्वीकृति जिसके मूल में स्त्री पक्षीय चेतना मौजूद हो |

3 . स्त्री पात्रों के चरित्र की विशेषताओं पर ध्यान देते हुए उनकी मनोव्यापारों से गुजरने वाली रंगमंचीय व्याख्या की नवीन रीति |

वर्तमान समय में नंङियार्कूत्त में कृष्ण कथाओं की प्रस्तुति में कही कही स्त्री दृष्टि की झलक भी नजर आती है | स्त्री पात्रों प्रमुख रूप से आने वाले प्रसंगों की व्याख्याओं में स्त्री की विशेष मानसिक स्थिति , विचार आदि को प्रधानता के साथ

अभिव्यक्त करने वाली प्रस्तुतियां वर्तमान समय में पायी जाती है | उदाहरण केलिए 'पूतना मोक्ष' कथा सन्दर्भ | बालक कृष्ण के द्वारा राक्षसी पूतना के वध की कथा काफी विख्यात है | राजा कंस की आज्ञा के अनुसार राक्षसी पूतना कृष्ण को मारने केलिए अपनी वेश भूषा बदलकर नन्हे कृष्ण को अपनी गोद में लेकर स्तनों पर विष लगाकर स्तन पान करवाती है | भगवान कृष्ण तो स्तन पान करते हुए राक्षसी का वध करता है | रंगपाठ में प्रतिपादित इस प्रसंग का सीधा आख्यान प्रस्तुत करने के स्थान पर पूतना नामक स्त्री के मन और विचोरों से गुज़रने का प्रयास वर्तमान समय में कलाकारियों ने किया है | सार्वजनिक दृष्टी से पूतना एक राक्षसी है, क्रूरता का पर्याय भी है | पर वह एक स्त्री भी है जब एक छोटे बच्चे का वध उसके कन्धों पर सौंप दिया जाता है तब उसके स्त्री-मन में क्या क्या सोच विचार पैदा हुए होंगे , चाहे वह राक्षसी हो या मनुष्य हो अपने अंतर मन में बिना किसी संघर्ष के साथ क्या एक स्त्री एक छोटे बच्चे का वध कर सकते है ? एक बच्चे का स्तन पान करवाते समय एक स्त्री के मन में मातृभाव या वात्सल्य नहीं जाग उठता ? इस प्रकार के अनेक स्त्रीत्व परक प्रश्नों से गुज़रते हुए ही पूतना के कथा सन्दर्भ को मंच पर व्याख्या करने की कोशिश वर्तमान स्त्री कलाकारों ने की है , जिसे सशक्त स्त्री पक्षीय हस्ताक्षेप कहा जा सकता है |

कृष्ण कथाओं की प्रस्तुति के अलावा वर्तमान समय में नंङियार्कूत्त के प्रदर्शन केलिए और भी कई विषय वस्तुओं को स्वीकार करने का क्रांतिकारी कदम महिला कलाकारों ने उठाया है | पौराणिक एवं मिथकीय कथा सन्दर्भों के विशेष प्रसंगों के माध्यम से समकालीन स्त्री जीवन के संघर्षों के विविध पक्षों को विवेचित व विश्लेषित करने का प्रयास नंङियार्कूत्त की प्रस्तुतियों में खूब होता जा रहा है | सामाजिक , सांस्कृतिक एवं पारिवारिक स्तर पर पुरुष द्वारा स्त्री के ऊपर किये जाने वाले शोषण के प्रति स्त्री का निजी विद्रोह प्रकट करना वर्तमान नंङियार्कूत्त की एक प्रमुख प्रवृत्ति है | नंङियार्कूत्त की विषयवस्तु में इस प्रकार की एक स्त्री चेतना को

जागृत करने का सर्वप्रथम प्रयास मार्गी सती ने किया है | मार्गी सती के द्वारा रचित एवं प्रदर्शित श्रीराम चरितम नंङियार्कूत्त इसका स्पष्ट प्रमाण है | मार्गी सती ने श्रीराम चरितम के मंचीय आख्यान सीता की दृष्टि से किया है | सीता का चरित्र शोषित, पीड़ित तिरस्कृत एवं अपमानित है | शुद्धता और पातिव्रत्य उसके चरित्र की विशेषताएं हैं | उन विशेषताओं के होते हुए भी सीता को अग्नि परीक्षा तक लेनी पड़ती है | उसका पूरा जीवन संघर्षों से भरा हुआ है | यहाँ मार्गी सती ने सीता के पक्ष को स्त्री दृष्टि के साथ मंच पर व्याख्यायित करने की कोशिश की है |

उषा नंङियार के द्वारा रूपायित एवं प्रदर्शित द्रौपदी, मंडोदरी ,अहल्या आदि प्रस्तुतियां भी समकालीन स्त्रीवादी दृष्टि के परिचायक है | पहले सूचित किया गया है कि पंचकन्याओं में आने वाले पात्रों को मंच पर प्रस्तुत करना ठीक नहीं माना जाता था | दौपदी , मंडोदरी , अहल्या इत्यादि स्त्री पात्र पंच कन्याओं के अंतर्गत आने वाली है | पुरुष सत्तात्मक रूढ़ियों द्वारा तिरस्कृत इन पात्रों को मंच पर प्रस्तुत करने का कदम ही अपने आप में पुरुष वर्चस्व के प्रति स्त्री का कलात्मक व सृजनात्मक विद्रोह है | इसके साथ-साथ पितृसत्तात्मक शोषण , अपमान और व्यथाओं की शिकार के रूप में मिथकों में पाए जाने वाली इन स्त्री पात्रों के जीवन सन्दर्भों को समकालीन स्त्री जीवन की दुरवस्था के साथ जोड़कर देखने की कोशिश भी उषा नंङियार की प्रस्तुतियों में पाया जा सकता है | उषा नंङियार के द्वारा अभिनीत द्रौपदी नामक प्रस्तुति में महाभारत की प्रमुख स्त्री पात्र द्रौपदी को समकालीन सन्दर्भ में देखने का प्रयास है | द्रौपदी के संबंध में समाज में स्थापित समस्त पारंपरिक धारणाओं के मूल को तोड़कर समकालीन दृष्टिकोण के साथ उस विशेष पात्र के चरित्र की व्याख्या की गयी है | इस प्रस्तुति में द्रौपदी के ज़रिए स्त्री हृदय की वास्तविक पीडा उसके अंत संघर्ष आदि मार्मिक ढ़ंग से चित्रित है | द्रौपदी के जीवन के तीन महत्वपूर्ण घटनाओं को प्रस्तुत करते हुए उषा नंङियार ने अपने ही मन की स्त्री चेतना को दर्शाने की कोशिश की है | कलामंडलम में चली नंङियार्कूत्त संबंधी एक संगोष्ठी में उठाये गए

विचार बहस से ही उषा नंङियार को द्रौपदी नामक प्रस्तुति का रूपायन केलिए प्रेरणा मिली थी | चर्चा में उठायी गयी आलोचना यह थी कि स्त्रीत्व के विभिन्न आयामों जैसे माता , बहन , पुत्री आदि भावों को उसकी गहराई के साथ समकालीन दृष्टी से प्रस्तुत करने वाली कोई प्रस्तुति नंङियार्कूत्त में नहीं हुई है | इस चर्चा को सुनने पर उषा नंङियार ने सोचा कि द्रौपदी के जीवन की महत्व पूर्ण घटनाओं को लेकर एक नंङियार्कूत्त प्रस्तुति का रूपायन क्यों न किया जाय | इरावती कारवे , प्रतिभा राय जैसी आधुनिक लेखिकाओं की महाभारत मिथक पर केन्द्रित रचनाओं को उन्होंने इस प्रस्तुति के रूपायन केलिए उपयुक्त किया |[1] केरल के प्रमुख कला विचारक एवं आलोचक डॉ .के .जी . पौलोस से उषा नंङियार के द्वारा प्रस्तुत द्रौपदी के बारे में कहा है कि – "उषा नंङियार ने द्रौपदी के प्रक्षुब्ध मन से गुज़रने का प्रयास किया है | द्रौपदी के जीवन के तीन महत्वपूर्ण सन्दर्भों को चुनकर उसी के जरिए स्त्री के मानसिक संघर्षों को प्रस्तुत किया गया है | स्वयंवर , द्यूत सभा में सहने वाला अपमान , पुत्रों की मौत होने वाला निशा युद्ध आदि है वे तीन महत्वपूर्ण संदर्भ | दौपदी अपने मन को दृढ़ करके इन उलझनों का सामना करती है | वह अपने आपको पहचानती है कि पांच मोतियों को पिरोया हुआ स्वर्ण सूत्र है द्रौपदी | सूत्र का बल ही मोतियों की शक्ति है |"[2]

द्रौपदी के समान रामायण कथा की पात्र मंडोदरी को भी उषा नंङियार ने मंच पर सफलता से प्रस्तुत किया है | मंडोदारी को एक सशक्त स्त्री के रूप में उषा नंङियार ने प्रस्तुत किया है | अपने पति राक्षस राजा रावण के द्वारा किए जाने वाले अन्यायों के प्रति मंडोदरी अपना घोर विरोध बिना किसी संकोच के साथ प्रकट करती है | रावण सीता को अपनी वंश में लाने की कोशिश करता है, किन्तु सीता उससे इनकार कर लेती है | रावन कुपित होकर जब सीता की हत्या केलिए तलवार उठाता

---

[1] डॉ. के.जी. पॉउलोस - क्लासिकल कलकलिले स्त्री सान्निध्यम, पेन्नरंङ, सं. डॉ. राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.25

[2] वहीं, पृ.20

है तब मंडोदरी उसे रोकती है तथा ऐसे अन्याय के बारे में रावण में बोध दिलाने की कोशिश करती है | मंडोदरी वहाँ एक स्त्री के पक्ष में खड़ी होकर रावण से तर्क उठाती है | सीता के प्रति वासना में पड़कर रावण जब राज्यकार्यों से व्यतिचलित होता है , तब मंडोदरी बेचैन होती है , तथा रावण को उपदेश भी देती है | एक पतिव्रता स्त्री के प्रति किये जाने वाले अन्यायों का परिणाम पूरे राज्य को सहना पड़ेगा तथा वह अत्यंत भयंकर भी होगा| शत्रु की शक्ति के बारे में भी वह रावण को याद दिलाती है तथा सीता को वापस लौटाने केलिए मजबूर भी करती है | इस प्रकार मंडोदरी एक स्त्री होने की नाते सीता के प्रति सहानिभूति करती है , पत्नी होने के नाते रावण को सद्‌बुद्धि देने की कोशिश करती है तथा रानी होने के नाते अपने राज्य के भविष्य पर चिंताकुल भी होने वाली एक सशक्त , अपने दायित्वों के प्रति सजग और व्यक्तित्व वाली स्त्री के रूप में नंङियार्कूत्त में प्रस्तुत होती है |

समकालीन स्त्री अवस्था के प्रति अपनी संवेदन शीलता को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने वाली और एक नंङियार्कूत्त प्रस्तुति है उषा नंङियार द्वारा रूपायित 'अहल्या-मोक्ष' | रामायण की पात्र अहल्या पुरुष की कामुकता और वासना की शिकार है | ब्रह्मा द्वारा रचित विश्व की सुन्दरतम स्त्रियों में से एक है अहल्या, जो महर्षि गौतम की पत्नी है | इंद्र द्वारा इसके शीलहरण और परिणामस्वरूप गौतम द्वारा दिए गए घोर से शाप से वह शिला बनती जाती है |अंत में श्रीराम के चरणस्पर्श से उसे शापमुक्ति मिलती है | उषा नंगियार ने अहल्या की इस कथा को वर्त्तमान समय में स्त्रियों पर होने वाले अन्याय और अत्याचारों के सन्दर्भ से जोड़कर व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है | उषा नंङियार की व्याख्या में अहल्या कर्तव्यनिष्ठ भद्र और पतिवृता महिला है | उसके प्रति इंद्र में कामुकता और वासना पैदा हो जाती है तथा इंद्र अपना वेश बदलकर गौतम महर्षि के वेश में अहल्या के पास जाता है और उससे दुर्व्यवहार करता है | असल में अहल्या यहाँ निष्कपट है | किन्तु महर्षि उसे दोषी मानकर शाप देकर शिला बनाती है | शिला के रूप में बदली

अहल्या के मन में क्या क्या चलता होगा ; इस अवस्था का सहन उसने किस प्रकार किया होगा, आदि बातों को केंद्र में रखते हुए उषा नंङियार ने प्रस्तुति का रूपायन किया है | उषा नंङियार की व्याख्या में अहल्या का बाहरी रूप पत्थर का होने पर भी उसके भीतर एक मन और संवेदनाएं अवश्य रहती है | बाहर जो कुछ होता है उसका अहसास अहल्या को होता है किन्तु वह कुछ प्रतिक्रिया नहीं कर पाती | उषा नंङियार की अहल्या प्रस्तुति के बारे में केरल की प्रमुख विचारक रेनू रामनाथ ने जो कहा है वह उल्लेखनीय है | उनके शब्दों में-"usha nangiar,the renowned performer of kutiyattam and nangiarkooth in her interpretation of ahalya in analyamoksham nangiarkooth,composed and choreographed by her ,explores the mentalscape of ahalya especially during the millions of years she was forced to spend in the form of a stone."[1]

मशहूर कलाकार जी इन्दु के द्वारा रूपायित नंङियार्कूत्त प्रस्तुति है "गान्धारी" | वर्तमान स्त्री की समस्याओं को चित्रित करने का सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम के रूप में गांधारी के मिथक को प्रयुक्त किया गया है | पि. गीता द्वारा रचित मलयालम की प्रमुख कहानी 'अम्मक्कल' की विषय वस्तु को लेकर गांधारी नामक प्रस्तुति का रूपायन हुआ है | महाभारत युद्ध के पश्चात अपने पुत्रों की मृत्यु का साक्षी होने वाली गांधारी अपनी पुरानी यादों में स्वयं खो जाती है | गांधार देश में उसका बचपन , माँ का अभाव, पिता की कर्कशता आदि ने उसके बच्चे मन पर जो प्रभाव डाला है उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या जी . इंदु सफलतापूर्ण करती है | जंगल , पेड़ , पौधे आदि में अपनी माँ को खोजने वाली छोटी गांधारी के माध्यम से प्रकृति और स्त्री के बीच के अटूट और भावुक संबंध पर प्रकाश डाला गया है | इसके बाद यौवन में एक अंध राजा से उसकी इच्छा के बिना जबरदस्ती से की गयी शादी, उसकी

[1] Renu Ramanath- Tracing the agencies of Ahalya, Narthaki, January 29, 2013, www.narthaki.com

मानसिक व्यथाएँ, उसके मन का विद्रोह आदि को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने वाली जी.इंदु की प्रस्तुति समकालीन स्त्री के जीवन के साथ जुडती है | इस प्रस्तुति के संबंध में डॉ के.जी.पॉउलोस का कथन उल्लेखनीय है | "गांधारी नामक नंङियार्कूत्त की प्रस्तुति में जी.इंदु ने एक पौराणिक स्त्री पात्र के मन के रूप में नहीं बल्कि संघर्ष से गुजरने वाली सशक्त आधुनिक स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है |"[1]

स्त्री शोषण के विभिन्न आयामों तथा स्त्री प्रतिरोध को चित्रित करने वाली दो प्रस्तुतियां है मार्गी सती के द्वारा रूपायित एवं प्रदशित 'कन्नकी' तथा कलामंडलम गिरिजा के द्वारा रूपायित एवं प्रस्तुत 'माधवी' | तमिल के प्रसिद्ध कवि 'इलांगो आटीकल' के द्वारा रचित 'चिलाप्पतिकारम' नामक महाकाव्य की नायिका पात्र है कन्नकी | जो कोविलन नामक एक व्यापारी की पत्नी है | इस महाकाव्य में और एक प्रमुख स्त्री पात्र भी है जो एक गणिका है | इन स्त्री पात्रों के जीवन सन्दर्भों से दो प्रमुख मुद्दों को उठाने का प्रयास मार्गी सती ने अपनी प्रस्तुति में किया है | कन्नकी एक साधारण पतिव्रता स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है , जिसका जीवन परिवार और पति के हितों केलिए समर्पित है | जब माधवी नामक गणिका से कोविलन को प्रेम हो जाता है तब कन्नकी का पारिवारिक जीवन टूटने लगता है | माधवी एक रुपोपजीवी गणिका है , जिसे किसी से प्यार करने का अधिकार नहीं होता | फिर भी उसका कोविलन से प्यार हो जाता है | यहाँ कन्नकी के कथा सन्दर्भ के द्वारा पारिवारिक जीवन में स्त्री के द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं तथा माधवी के कथा सन्दर्भ से रुपोपजीवी गणिका या कलाकार की समस्याओं जैसे दो कथा तंतुओं को प्रस्तुत किया गया है | जब कोविलन माधवी को छोड़कर वापस कन्नकी के पास आ जाता है तब कन्नकी को अपनी खुशियाँ वापस मिलती है किन्तु आर्थिक रूप से उनका जीवन दुष्कर हो जाता है | पैसा कमाने केलिए कन्नकी अपने सोने के

---

[1] डॉ. के.जी. पॉउलोस- क्लासिकल कलकलिले स्त्री सान्निध्यम, पेन्नरंङ, सं. डॉ. राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.21

नूपुर बिकने केलिए कोविलन के पास देती है | कोविलन उसको बाजार में जाकर बिकता है , तब राजा के सैनिक उसे पकड़ लेता है | इसका यही कारण था कि रानी के नूपुर को किसी ने चुरा लिया था | कोविलन के पास जो नूपुर था वह रानी के नूपुर से मिलता जुलता है | चोरी करने का आरोप लगाकर कोविलन को मृत्यु दंड दिया जाता है | यह सुनकर कन्नकी क्रुद्ध हो जाती है तथा राज दरबार में जाकर कोविलन की निरीहता स्थापित करती है | निरीह व्यक्ति पर जुर्म का आरोप लगाकर मृत्यु दंड देने वाली उस घटना को वर्तमान 'स्टेट टेररिसम' से जोड़कर देखा जा सकता है | उस प्रकार की एक व्याख्या का अहसास मार्गी सती की प्रस्तुति में दर्शकों को महसूस होता है | अपनी पति की हत्या के प्रतिरोध में क्रुद्ध कन्नकी अपने स्तन को उखाड़ देती है तथा उस कोपाग्नि में पूरा राज्य जल जाता है | मार्गी सती ने यहं स्त्री के इस प्रतिरोध भाव को अत्यंत गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है |

कलामंडलम गिरिजा द्वारा रूपायित एवं प्रस्तुत 'माधवी' नामक प्रस्तुति राजा ययाति की बेटी माधवी की मार्मिक कथा पर केन्द्रित है | यौन शोषण के भयावह स्वरूप का चित्रण इस प्रस्तुति में हुआ है | माधवी को उसकी इच्छा के विरुद्ध पिता ययाति अपने गुरु गालव को भेंट देता है | यहीं से माधवी के जीवन की बर्बादी शुरू हो जाती है गुरु गालव अपने गुरु विश्वामित्र को गुरुदाक्षिण में मूल्यवान घोड़े देने केलिए माधवी को तीन राजाओं को एक एक साल केलिए भेंट में दे देता है | प्रत्येक राजा से गलाव 200 मूल्यवान घोडे ले लेते है | प्रत्येक राजा माधवी से पुत्रोत्पात्री भी कर लेता है | माधवी के बदले में गालव को राजाओं से प्राप्त घोड़ों को विश्वामित्र पर सोंप दिया जाता है किन्तु बचे हुए 200 घोड़ों के इंतजाम न हो पाने पर वह माधवी को विश्वामित्र के पास दे देता है | जब विश्वामित्र को माधवी में एक पुत्र पैदा होता है तब गालव माधवी को पास ले लेता है तथा उसे राजा ययाति को लौट देता है | इस कथा की प्रस्तुति के द्वारा कलामंडलम गिरिजा ने स्त्री को मात्र एक वस्तु के रूप में

समझ जाने तथा उसका यौन शोषण करने वाले पितृसत्तात्मक समाज के भयावह रूप को दिखाया है |

कपिला वेणु के द्वारा रूपायित एवं प्रस्तुत चित्रांगदा नामक नंङियार्कूत्त प्रस्तुति रवीन्द्र नाथ ठाकुर के 'चित्रांगदा' नाटक से प्रेरित है | चित्रांगदा मणिपुर के राजा की इकलौती बेटी है | बेटा पैदा होने के कारण राजा अपनी बेटी चित्रांगदा को पुरुष के सामान पालता है , अस्त्र शास्त्र का शिक्षा देता है | इससे चित्रांगदा पुरुष के सामान हो जाती है | उसमें स्त्रीत्व का भाव नष्ट हो जाती है | किन्तु जब वह पांडव पुत्र अर्जुन से मिलता है, तब उन दोनों के बीच प्यार हो जाती है और चित्रांगदा में स्त्रीत्व का भाव लौट आ जाता है | चित्रांगदा के अंतर्मन में निहित पुरुश्वत और स्त्रीत्व के बीच के यह द्वंद्व को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से कपिला वेणु ने प्रस्तुत किया है |

4.3.2. पंडवानी

भारतीय लोक – रंगमंच की परम्परा में छत्तीसगढ़ की प्रमुख लोक-नाट्य शैली 'पंडवानी' का अपना अद्वितीय एवं महत्वपूर्ण स्थाना अवश्य रहा है । छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक प्रचलित इस नाट्य -शैली विशेष की ख्याति आज-कल देश -विदेशों में व्याप्त होता दिखाई देता है ।श्री राम हृदय तिवारी के शब्दों में –"पंडवानी छत्तीसगढ़ अंचल के मनोरंजन का पारंपरिक साधन ही नहीं, श्रद्धा, भक्ति ,शौर्य और पराक्रम के प्रति ललक की मोहक अभिव्यक्ति है ।यह एक मौलिक गायन, वादन एवं आंगिक अभिव्यक्ति की बहु चर्चित लोक तात्विक विधा है ।देश में ही नहीं विदेशों में भी विख्यात पंडवानी ऐसी विशुद्ध एवं अनूठी लोक वाचिक परंपरा है जो मूलतः छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक प्रचलित, परिचित और चर्चित हैं।"[1]

1.राम हृदय तिवारी, संगीत और शौर्य का संगम:पंडवानी आरंभ, 07 अक्टूब 2007.aarambha blogspot.com

4.3.2.1 स्वरूप और विकास

पंडवानी एकल शैली में प्रस्तुत एक विशेष लोक जो भारत का महान आख्यान 'महाभारत ' पर आधारित है । पंडवानी का शाब्दिक अर्थ होता है पांडव वाणी,यानी पांडवों की कथा। अपने आरंभ कालीन समय में पंडवानी का स्वरूप गाथा रूप में था, जिसका गायन गोंड जाति के लोगों के द्वारा होता था । उन्होंने ही संपूर्ण गोंडवाना में इस विशिष्ट गाथा शैली का प्रचलन किया था । पंडवानी इस संपूर्ण क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण लोक-गाथा के रूप में प्रचलित है । गोंड जनजाति में प्रमुखतः चार महाकाव्य या गाथाएं प्रचलित है, जिनमें पांडवानी को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है । अन्य तीन महाकाव्यों में गोंडवानी,रामायनी एवं करमसैनी के नाम आते है, जिनमें करमसैनी तो आज-कल लुप्तप्राय हो चुका है । पंडवानी का अत्यधिक प्रचलन नर्मदा तट के जबलपुर तथा मंडला जिलों में हुआ है । परंपरा से इस का गायन गोंड समुदाय के भाट जिसे परधान कहते है, गाता आ रहा है । गोंड जाति की एक उपजाति है परधान । परधानों का धंधा समुदाय के लोगों को गोंड जाति की परकथाएँ सुनाना तथा वंशावली से अवगत कराना है । "परधान शब्द प्रधान शब्द का ही बिगड़ा हुआ स्वरुप है, ऐसा प्रतीत होता है कि कभी ये परधान ही गोंड के पुरोहित रहे होंगे, इस कारण प्रधान कहलाते रहे होंगे । कालान्तर में जातीय ह्रास तथा जजमानों से दान-दक्षिणा स्वीकार करने के परिणाम स्वरूप इनकी सामाजिक हैसियत में गिरावट आ गयी और से चारण या भाटों के सद्दश्य सामाजिक स्थिति में पहुँच गये ।परधान भी भाटों की ही भान्ति फसल कहने के उपरान्त अपने जजमानों के यहाँ सुदूर अंअंचलों तक यात्राएँ करते हैं और उनसे दान-दक्षिणा एकत्र कर कई महीनों बात अपने घरों को बापस लौटते हैं ।"[1]

[1] निरंजन महावर,पंडवानी:महाभात की एक लोक-नाट्य शैली,पृ.24.

परधानों से इस गायन शैली को देवार जाति के कलाकारों ने अपनाया। उन्होंने ही संपूर्ण छत्तीसगढ़ में इस कला-रूप को फैलाया।देवर और परधान दोनों गोडों की उपजाति हैं। इन दोनों के द्वारा गाये जाने वाली गाथाओं में भी समानता पाया जा सकता है। दोनों जाति के गायक सारंगी नामक वाद्य का प्रयोग करते हैं। निरंजन महावर जी के शब्दों में –"गाथाओं का कथानक, भाषा एवं गायन की शैली भी अत्यधिक मिलती-जुलती है। देवार अपनी मूल भाषा को फारसी कहते हैं ,जो मंडला की छत्तीसगढ़ी के अधिक समीप है।यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है, कि फारसी बोली से उनका तात्पर्य फारसी भाषा से कदापि नहीं है। मध्यप्रदेश की अनेक जनजातियाँ अपने ठेठ बोलियों को फारसी विशेषण से संबोधित इसलिए करती हैं क्योंकि उन्हें समझने में अन्य लोगों को कठिनाई होती है।"[1]

परधान और देवार के संबन्ध में मूल अन्तर इस रूप में पाया जाता है कि- "परधान प्रवास के उपरांत अपने घर वापस आ जाते हैं, जबकि देवार किसी समय विशेष में अपनी भूमि से उखड़ गए और उन्होंने घुमन्तु जीवन शैली अपना ली।संभावना है कि या तो किसी भीषण दुर्भिक्ष या प्राकृतिक विपत्ति के कारण या किसी बाह्य आक्रमण के परिणाम स्वरुप ये मंडला क्षेत्र से निकलकर रतनपुर पहुँचे होंगे फिर वहाँ से भी बेदखल होकर छत्तीसगढ़ में घुमन्तु जीवन शैली अपनाकर जीवन यापन करने हेतु विवश हुए होंगे।"[2]

परधान और देवार जाति के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत करने वाली पंडवानी को निषाद, बहोलिला,कंबर,सतनामी,तेतेली आदि अनेक निम्न जाति के कलाकारों ने भी स्वीकार किया।"एक ओर द्विजों के बीच महाभारत या भागवत का पारायण ब्राह्मण कथावाचकों द्वारा किया जाता था, जहाँ दलित जातियों को जाने की मनाही होती थी,तो दूसरी ओर लोक में महारत की ऐसी शैली का प्रचार-प्रचार हो रहा था,जिसके

[1] निरंजन महावर, पंडवानी : महाभात की एक लोक-नाट्य शैली, पृ.26.

[2] वहीं,पृ.26-27

प्रस्तोता और श्रोता दोनों ही सर्वसाधारण जनन थे जो नीची जातियों के थे।"[1] इसी कारण से महाभारत की लोकनाट्य-शैली को छत्तीसगढ़ में एक व्यापक जनाधार एवं प्रचलन प्राप्त हुआ ।

पंडवानी का संपूर्ण विकास उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों में लोक-नाट्य के रूप में होने लगा तथा बीसवीं सदी में पूर्ण रुप से नाट्य -शैली में विकसित होकर जनमानस में प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगी।इस वर्तमान स्वरूप में गायन के साथ -साथ अभिनय भी सम्मिलित हुई तथा एक नवीन रोचक शैली का विकास हुआ । पंडवानी का यह वर्तमान रुप बुर्रा कथा नामक तेलुगु भाषी प्रदेशों में प्रचलित महाभारत की अभिनय-प्रधान शैली का प्रभाव पाया जा सकता है । निरंजन महावर के मत में – "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम युद्ध के बाद छत्तीसगढ़ में स्थायी रूप से बसने वाले तेलुगु भाषी लोगों के संपर्क के परिणामस्वरुप ही इस क्षेत्र से दक्षिण के बुर्श कथा वाचकों का संपर्क स्थापित हुआ और बुर्रा कथा की शैली पर पंडवानी की प्रस्तुति में भी अभिनय का समावेश किया गया ।"[2] पंडवानी एवं बुर्रा कथा के अभिनय में बहुत अधिक समानता पायी जाती है | यह तो इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ये दोनों ही कला स्वरुप कभी न कभी संपर्क में आए हैं ।

प्रारंभ में पंडवानी का स्वरूप पूर्णत: वाचिक शैली पर आधारित था। किन्तु बीसवीं शताब्दी के शुरुआत में श्री झाडूराम देवांगन ने थोडे बहुत अक्षरज्ञान की वजह से महाभात आधारित ग्रन्थों का अध्ययन किया और पंडवानी के विकास के दूसरे दौर का सूत्रपात किया । वर्तमान समय में पंडवानी के मशहूर कलाकारों में झाडूराम देवांगन, पुनाराम निशाद,रेवाराम तीजन वाई आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है ।

---

[1] निरंजन महावर, पंडवानी : महाभात की एक लोक-नाट्य शैली, पृ..30

[2] निरंजन महावर, पंडवानी : महाभात की एक लोक-नाट्य शैली, पृ.30-31

आज -कल पंडवानी देश -विदेशों में विख्यात होती जा रही है और उसके भविष्य के प्रति आशाएँ भी बढ़ रही है । वर्तमान समय में पंडवानी गाथा गायन शैली रंगमंच समन्वित स्वरुप में उपस्थित होता जा रहा है ।

4.3.2.2 प्रदर्शन शैली

पंडवानी लोक-समाज की संकल्पना और लोक -मानस की संवेदनाओं को आडम्बरहीन एवं अनौपचारिक ढंग से प्रस्तुत करने वाली एकल् नाट्याभिव्यक्ति शैली है।यह किसी शास्त्रों या नियमों के बन्धन में बन्धे न होकर जन सामान्य के जीवन की सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति का सृजनात्मक उपक्रम होता है ।इस विशेष एकल नाट्य – रूप की प्रदर्शन शैली सरल व सर्वगम्य होती है । जीवन के सघन अनुभवों से जो सहज लय उत्पन्न होती है, वही पंडवानी के प्रदर्शन का मूल स्रोत है । किसी शास्त्रधर्मी विषयों से आबद्ध या औपचारिक नहीं है कहने का यह मतलब नहीं होता है कि बिना किसी तैयारी के साथ कोई भी पंडवानी का प्रस्तुतीकरण कर सकता है । पंडवानी का एक विशिष्ट रूप-विन्यास और प्रदर्शन शैली अवश्य हैं । इसको प्रस्तुत करने के लिए प्रशिक्षण या अभ्यास की ज़रूरत भी है। किन्तु नंङियारकूत्त या कथकलि जैसी क्लासिकी कलाओं के समान इसका रूप -पक्ष एवं अभिनय शैली शास्त्रधर्मी एवं शैलीकृत नहीं होता है । पंडवानी गायन, वादन, अभिनय एवं आंगिक विन्यासों का सहज,स्वाभाविक एवं सृजनात्मक रचना -विधान होता है । इसीलिए राम हृदय तिवारी जी ने इस लोकाभिव्यक्ति शैली को स्वांग और संगीत का मनोरम संगम तथा छत्तीसगढ़ के आम लोगों की सहज सरल जीवन शैली से, उनके भोले हृदय की धड़कनों के संगीत का अविराम स्रोत बताया है ।"[1]

---

[1] राम हृदय तिवारी, संगीत और शौर्य का संगम : पंडवानी आरंभ, 07 अक्टूब 2007.aarambha blogspot.com

राष्ट्रीय -अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर शीर्षस्थ विराजमान तथा निरन्तर विकास की दिशा में चलने- वाले नाट्य रूप पंडवानी के प्रदर्शन की दो शैलियाँ प्रचलित हैं ।

1 वेदमती

2 कापालिक

सामान्य रूप से कहा जाय तो पंडवानी की वह शैली जो पूर्णतः महाभारत पर आधारित है और वेदसम्मत है, वह शैली वेदमती कहलाती है तथा जो शैली वाचिक परंपरा और स्मृतियों पर आधारित है, साथ ही जिसमें छत्तीसगढ़ के मिथक भी अनायास जुड़ गए हैं ,वह कापालिक है । श्री निरंजन महावर ने पंडवानी की इन दो शैलियों के बारे में सूचित करते हुए कहा है कि – "छत्तीसगढ़ में पंडवानी की दो शैलियाँ पाई जाती हैं, कापालिक और वेदमती । कापालिक शैली से तात्पर्य पंडवानी की उस शैली से है जो पूर्ण रूप से लोकोन्मुखी है, और जिसे गायक स्वतंत्रता पूर्वक गाता है तथा इस शैली में लोक तत्वों, लोक कथाओं, क्षेत्रीय एवं जातीय मिथकों का बेधड़क समावेश करता है।यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी प्रासंगिक होगा कि कापालिक शब्द का अर्थ यहाँ तांत्रिक समुदाय विशेष नहीं है । वरन् यहाँ यह लोक की स्मृति का पर्यायवाची है,जो कथाएँ कपाल में सुरक्षित है उसे स्थानीय संबोधन में कापालिक कहा जाता है । वेदमती का अर्थ वे काव्य अथवा गाथायें हैं जो लिपिबद्ध होकर ग्रन्थ रूप में आ चुकी है । लिखित शब्द को स्थानीय बोली में वेद कहकर संबोधित किया जाता है । "[1]

निरंजन महावर जी के अनुसार वेदमती वह शैली है जो ब्राह्मण हस्तक्षेप के परिणामस्वरुप विकसित हुई है । इसमें लोक तत्वों का अधिकाधिक त्याग कर दिया गया है ।

[1] निरंजन महावर, पंडवानी : महाभात की एक लोक-नाट्य शैली, पृ.27

डॉ. परदेशीराम वर्मा इन दो शैलियों को एक ओर रूप में परिभाषित करते हैं । उनके अनुसार -“पंडवानी विधा में दो शैलियाँ प्रचलित है । एक मंच पर बैठकर गाने की शैली ।इसे वेदमती शैली कहते हैं । कापालिक शैली में कलाकार खड़े होकर अभिनय सहित मंच पर कला का जौहर दिखाता है ।”[1] पंडवानी की इन दोनों प्रदर्शन शैलियों को लेकर विद्वानों, कलाकारों आदि के बीच कई बहस चल रहे है, जो आज भी शांत नहीं हुआ है । इसके संबंध में भिन्न-भिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत है । जैसा कि हमने पहले देखा कि निरंजन महावर और परदेशीराम वर्मा दोनों के मत भिन्न है । डॉ. पी.सी लाल यादव ने पंडवानी की प्रदर्शन शैली को ‘लिखित ’और ‘मौखिक’ में बाँटा है। वे कहते हैं कि – “ मौखिक परंपरा के अन्तर्गत पंडवानी गायकों के पास कोई लिखित साहित्य नहीं होता ।वह मूल कथाओं को श्रुति परंपरा के अनुसार सुनकर उनका गायन करते हैं । इसका मुख्य कारण इनकी निरक्षरता है ।”[2]

लिखित रूप के संबंध में कहा है कि – “चूँकि ये पढ़े -लिखे और अध्ययनशील होते हैं, अतः श्री सबल सिंह रचित महाभात के अतिरिक्त महाभात से संबंधित अन्य साहित्य सामग्री का अध्ययन करते हैं और प्रसंगानुकूल उसका उल्लेख करते हैं।”[3]

पंडवानी और छत्तीसगढ़ की लोक परंपराओं पर अध्ययन करने वाले डाँ. निर्मलकर ने वेदमती और कापालिक शैलियों के संबंध में अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है कि – “वेदमती पंडवानी से आशय उन गीतों से है,जिनकी कथा महाभारत सम्मत है ,अर्थात् बुद्धिमानों से सम्मत या जो वेद से अनुमोदित हैं ,वह कथा गायन इसके अन्तर्गत सम्मिलित है । इसे बैठकर गाया जाता है । वेदमती पंडवानी के अन्तर्गत आदिपरब, सभापति, उद्यमपरब, भीष्म परब, द्रोण परब,कर्ण परब, सैल परब, तिलक परब ,अश्वमेध, स्वर्गारोहण परब,मूल परब आदि छत्तीसगढ़ी रूपों में

---

[1] परदेशीराम वर्मा, संजीव तिवारी के लेख में उद्धृत, संजीव तिवारी, पंडवानी की वेदमती व कापालिक शैली, 30 जून 2010 आरंभ, aarambha. Blogspot.com

[2] डाँ पी.सी. लाल ,पंडवानी परंपरा और प्रयोग पृ.42

[3] डाँ पी.सी लाल, पंडवानी परंपरा और प्रयोग पृ.43

समाहित है । संदर्भित शाखा के गायकों का विश्वास है कि शांत परब की कथा कहने से गायक शान्त (मृत)हो जायेगा । इस अन्धविश्वास के कारण शान्त परब का गायन वर्जित है ।"[1] वेदमती के प्रमुख गायक श्री झाडूराम जी देवांगन और श्री पूनाराम जी निषांद हैं । कापालिक गीत कथाएँ कपोल कल्पित होती हैं । इस में लोक विश्वास की इतने गहरे रूप में समाहित है कि कथाएँ कपोल कल्पित होकर भी पाण्डवों से संबंद्ध होती हैं । इसे खडे होकर गाया जाता है । इसकी प्रमुख गायिका श्रीमती तीजनबाई है ।

छत्तीसगढ़ के प्रमुख लोक कला निदेशक राम हृदय तिवारी जी ने इन दो पंडवानी शैलियों के बारे कहा है कि – "वेदमति और कापालिक शाखाओं के नाम से विभक्त इस पंडवानी के जिस स्वरुप से हम सब ज़्यादा परिचित हैं -कापालिक शाखा की विख्यात शैली है ,जो शास्त्रीय कथा को लोक रंग के नये परिधान देकर पूरे आत्मविश्वास के साथ हमारे सामने लाती है । ऐसा कहा जाता है कि कापालिक शाखा का अभ्युदय वेदमति शाखा की पारंपरिकता के विरोध स्वरूप हुआ ।"[2] कापालिक शाखा के गायकों ने समयानुकूल अनुकूल के वाद्यों का प्रयोग में किया। प्रस्तुति को अंचल की प्रचलित लोक धुनों में बाँधा और एकल अभिनय की शुरुआत भी हुई | गायन के साथ आंशिक नृत्य -नाट्य का भी आनंद देने में वर्तमान पंडवानी पूर्णतः सक्षम है, इसीलिए कुछ विद्वानों ने इसे फोक बेले की संज्ञा से भी अभिहित किया है । इस विधा में संगीत, भावाभिनय और कथा व्याख्या ,तीनों का अनुपातिक सम्मिश्रण पाया जाता है ।

राम हृदय तिवारी जी का पूर्वसूचित कथन वर्तमान समय में प्रचलित और विख्यात पंडवानी नाट्य रूप की प्रदर्शन शैली के संबंध में काफी उचित है ।

---

[1] संजीव तिवारी, पंडवानी की वेदमती और कापालिक शैली, आरंभ, 30 जून 2010, aarambha. Blogspot.com

[2] वहीं

वेदमति, कापालिक इन दोनों शैलियों को शास्त्रीय -अशास्त्रीय की बाईनरी में विभाजित करते देखने की रीति को असंगत बताने वाले डॉ. विनय कुमार पाठक के मत में – "यह सही है श्रीमती तीजन बाई के पूर्व के प्रायः सभी पंडवानी गायक बैठकर गाथा प्रस्तुत करते रहे हैं लेकिन तीजन बाई होती हैं; तब पंडवानी थिरथिरकने लगती है । क्या इसका यह अर्थ है कि कापालिक शैली की जन्मदात्री श्रीमती तीजन बाई है ? इससे पूर्व यह शैली किस रूप में थी, क्या किसी के पास उत्तर है?स्पष्ट है, ये दोनों शैलियाँ ज़रूर प्रचलित हैं लेकिन इसमें शास्त्रीयता दिखलाकर लक्ष्मण रेखा खींचना लोकगाथा के साथ अन्याय करना होगा ।"[1] इन विद्वानों के मतों के अलावा मुख्य पंडवानी कलाकारों के मत भी यहाँ प्रासंगिक हैं । झाडूराम देवांगन के शब्दों में – " मेरे मतानुसार वेद के आधार पर जो लोग पंडवानी गाते हैं वे वेदमती शाखा वाले कहलाते हैं । कापालिक शाखा वाले पांडवों से संबंधित कथा प्रस्तुत करते है ।"[2] पुनाराम निषाद का मत थोडा भिन्न है | उन्होंने स्पष्ट बताया है कि – "जहाँ तक मेरी जानकारी है सभी पंडवानी गायक सबल सिंह चौहान लिखित महाभारत के आधार पर पंडवानी गाते हैं ।"[3] तीजन बाई का विचार भी यहाँ प्रासंगिक है | वे कहती हैं – "वेदमति और कापालिक शैली में अन्तर बताना बहुत कठिन है । सामान्यतः कापालिक शैली में मंच पर व्यास गद्दी पर बैठकर पंडवानी की प्रस्तुति की जाती है । वेदमति शाखा के लोग पौराणिक ग्रन्थानुसार कथा प्रस्तुत करते हैं । कापालिक शाखा के लोग कथा में किंचित कल्पना के रंग भी भरते हैं ।"[4] ऋतु वर्मा की दृष्टि में – "मेरी जानकारी के अनुसार, सभी पंडवानी गायक सबल सिंह चौहान लिखित

---

[1] बलदाऊ प्रसाद निर्मनिर्मलकर, पांडव गाथा:पंडवानी और महाभारत, भूमिका (डॉ. विनय कुमार पाठक)

[2] महावीर अग्रवाल, छत्तीसगढ़ की लोकधर्मी :पंडवानी, पृ.32

[3] वहीं, पृ.48

[4] वहीं,पृ.26-27. 96

महाभारत के आधार पर पंडवानी गाते हैं वेदमति और कापालिक दोनों शाखा और शैली के बहद बारीक भेद को मैं पूरी तरह नहीं समझती।"[1]

विद्वानों के विभिन्न मतों से हम यह देख सकते हैं कि पंडवानी की दो शैलियाँ अवश्य अस्तित्व में रही हैं । किन्तु वर्तमान समय में पंडवानी में किसी एक शैली का वर्चस्व नहीं देखा जा सकता है । इसलिए पंडवानी की वर्तमान प्रदर्शन शैली में विभाजन रेखा खींचकर देखना भी समीचीन नहीं होगा ।वर्तमान समय में पंडवानी में गायन और कथावाचन के साथ -साथ नृत्य और अभिनय का भी महत्वपूर्ण स्थान है । नये अन्दाज़ के साथ प्रस्तुत करने का शौक भी आज पंडवानी कलाकारों में देखा जा सकता है ।आज-कल पंडवानी किसी विशेष धारा में बन्धित न होकर अनेक शैलियों का समन्वित रूप बन गयी हैं ।

पंडवानी की प्रदर्शन शैली में कथावाचन और गायन के साथ आंगिक अभिनय का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इसका प्रदर्शन एक ही व्यक्ति द्वारा होता है । उसके हाथ में एकतारा होती है । एकतारा को बजाते हुए प्रदर्शक अभिनय करता है । पृष्ठभूमि में कुछ कलाकार बैठकर वाद्यों का प्रयोग करते है तथा कोरस गाते हैं । इन वाद्यों के धुन के साथ कथावाचन, गायन और अभिनय होता है । यह एक ऐसी एकल् नाट्याभिनय शैली है जिसमें भावों की अभिव्यक्ति स्वरों के आरोह-अवरोह से संपन्न होती है । पृष्ठभूमि में बैठकर हुंकारू देने वाले की भूमिका प्रस्तुतीकरण में अहम है । पूरी प्रस्तुति को लयात्मकता और गतिशीलता के सहारे रोचक बनाने में हुकारू देने वाले की महत्वपूर्ण भागीदारी होती है । इसके संबंध "अपने हुंकारू द्वारा और बीच -बीच में रोचक प्रश्नों के द्वारा कथा को दो स्तरों पर विभाजित करता हुआ रागी समकालीन व्याख्या के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में दक्ष होता है । "[2]

---

[1] महावीर अग्रवाल, छत्तीसगढ़ की लोकधर्मी :पंडवानी, पृ.121

[2] राम हृदय तिवारी, संगीत और शौर्य का संगम : पंडवानी, आरंभ, 07 अक्टूब 2007,aarambha. Blogspot.com

पंडवानी की प्रस्तुति के लिए कोई विशेष मंच-व्यवस्था या नियमित प्रदर्शन-स्थल की ज़रूरत नहीं है । किसी भी जगह पर इसका प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है । प्रदर्शन के समय में प्रदर्शक के लिए उसके हाथ में उपस्थित एकतारा एक रंग-सामग्री के रूप में प्रयुक्त होती है । कभी-कभी एकतारा भीम की गदा, अर्जुन का धनुष, द्रोपदी का बाल आदि विभिन्न रूपों में प्रयुक्त होती है । हारमोनियम,ढोलक,तबला,मंजीरा आदि वाद्य यंत्रों के सहारे ही प्रदर्शक गीत गाता है । प्रत्येक प्रदर्शक अपनी -अपनी सृजनात्मकता एवं मनोधर्म के अनुसार आशु-अभिनय का प्रयोग भी कर सकता है । इसके साथ-साथ समकालीन सामाजिक समस्याओं पर परिहास पूर्ण व्यंग्य करने की स्वतंत्रता भी पंडवानी के प्रदर्शक पर निक्षिप्त होता है।मुख्य गायक या प्रदर्शक सहायक गायकों के साथ लगातार संवाद करते हुए प्रदर्शन को आगे बढ़ाता है । इस प्रकार पूरा पंडवानी प्रदर्शन आखिर में एक सरल कहानी के रूप में शुरू होता है जो पूर्णतः एक गाथा के रूप में बदल जाता है ।

4.3.2.3 विषय- वस्तु

भारतीय साहित्य का श्रेष्ठ एवं गौरवशाली आख्यान है 'महाभारत '। शताब्दियों से यह महाकाव्य भारतीय जन-मानस को निरन्तर प्रभावित करता आ रहा है । भारत की प्रदर्शनधर्मी कलाओं के विकास में इस महाकाव्य की अद्वितीय भूमिका रही है । अनेक लोक एवं क्लासिकी कला रूपों ने अपनी विषय -वस्तु के रूप में महाभारत की कथाओं को स्वीकार किया है । पंडवानी की विषयवस्तु भी महाभारत की कथाओं पर आधारित है । पंडवानी की विषय-वस्तु मूलतः महाभारत पर ही केंद्रित है, किंतु पंडवानी कलाकार सबल सिंह चौहान के द्वारा हिन्दी (अवधी) भाषा में रचित महाभारत को आधार बनाकर पंडवानी का प्रस्तुतीकरण करता है ।

परधानों द्वारा गायी जाने वाली पंडवानी की मूल गाथा तो महाभारत पर ही आधारित है, किन्तु उस में अनेक लोक कथाएँ, लोक नायक एवं स्थानों के नाम

स्थानीय प्रभाववश जुड़ गए हैं । गाथाओं के गायक लोकरंजन हेतु ऐसे अनेक लोक तत्वों का कवित्त में समावेश प्रायः कर लिया करते हैं । महाभारत की मूल कथा एवं पात्रों के साथ कुछ मिथकों का भी सम्मिश्रण पंडवानी में देखा जा सकता है । महाभारत एक ऐसा महान् ग्रन्थ है, जिसमें न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, ज्योतिष, युद्धनीति,योगशास्त्र,अर्थशास्त्र, वास्तुशास्त्र, शिल्पकार, कामशास्त्र, खगोलविद्या तथा धर्मशास्त्र का विस्तार से वर्णन हुआ है । धर्म और अधर्म के बीच का संघर्ष और अधर्म पर धर्म का विजय ही महाभारत कथा की मूल वस्तु है । इस महाकाव्य में सैकड़ों कथाएँ तथा उपकथाएँ विद्यमान है । महाभारत की इस मूल कथा को लेकर उसे यूगीन सन्दर्भ के परिवेश के अनुसार ही सबल सिंह चौहान ने अपनी महाभारत ग्रन्थ रचा है। सबल सिंह चौहान के इस महाभारत ग्रन्थ से उद्धृत कथा सन्दर्भों की वाचिक एवं आंगिक व्याख्या ही पंडवानी के कलाकारों द्वारा मंच पर होता है । दूसरे शब्दों में महाभारत से उद्धृत कथा सन्दर्भों की समकालीन रंगमंचीय व्याख्या ही पंडवानी का प्राण है। "एक ओर जहाँ महाभारत के नायक के रूप में अर्जुन को लिया जाता है तो वहीं पंडवानी के नायक के रूप में भीम को दिखाया जाता है । भीम ही पांडवों की सभी विपत्तियों से रक्षा करता है । पंडवानी में पांडवों की माँ कुन्ती को माता कोतमा कहा गया है और गान्धारी को गन्धारिन। गन्धारिन के 21बेटे बनाए गए हैं । पंडवानी में जिस क्षेत्र को दिखाया गया है, वह छत्तीसगढ़ ही है । पांडव जहाँ रहते थे उसे 'जैतनगरी' कहा गया है ।"[1]

पंडवानी की विषय-वस्तु के संबंध में राम हृदय तिवारी ने जो बताया है वह बिल्कुल प्रासंगिक है । तिवारी जी के शब्दों में – " पंडवानी स्वाँग और संगीत का ऐसा मनोरम संगम है,जहाँ महाभारत के अमर पात्रों की शौर्य गाथा हिलोरे लेती है । मुनि व्यास द्वारा वर्णित एवं गणाधिदेव गणेश द्वारा अंकित महाभारत केवल युद्ध-

---

[1] दिवेन्द्र सिंह, महाभारत का नाट्य रूपांतरण है पंडवानी, गाँव कनेक्शन पत्रिका, 21-03-2017,www.gaonconnection.in

कथा नहीं, अपितु समस्त मानवीय मूल्यों आवेगों, मनोभावों और सबसे ऊपर मनुष्य की आदिम वृत्तियों और कामनाओं का सूक्ष्म चित्रण है । यह महाकाव्य मानव मन के गूढ़तम सत्य को उजागर करते है कि मनुष्य का केवल कर्म ही, धर्म -अधर्म का निर्णायक है और सत्य असत्य के निर्णायक युद्ध में विजय अन्ततः सत्य की ही होती है । इस शाश्वत निष्कर्ष के साथ -साथ राग औऔर विराग ,प्रेम और घृणा ,मानवीय विसंगतियों और विरोधाभासों से भरे हुए महाभारतीय पात्रों का लोक निरूपण अद्‌भुत ढंग से हुआ है पंडवानी में । छत्तीसगढ़ी बोली में कितना माधुर्य और विस्तार है ,जीवन के सूक्ष्म और गूढ़तम भावों को अभिव्यक्त करने की कितनी अपार क्षमता है -यह पंडवानी की मूल्य शक्ति है तथा उसकी मोहकता और पहचान की आधारशिला भी।पंडवानी वस्तुतः महाभारत की शाश्वत कथा का छत्तीसगढ़ी संस्करण है । "[1]

इस प्रकार पंडवानी की विषय-वस्तु महाभारत की शाश्वत कथाओं का समसामयिक पुनराख्यान है । महाभारत महाकाव्य की यही विशेषता है कि इसके जो कथातत्व है उनमें नवीन सामाजिक परिस्थितियों एवं जीवन -सन्दर्भों को अभिव्यक्त करने वाली कालातिक्रमी प्रवृत्तियाँ मौजूद हैं।अतः समकालीन जीवन के विभिन्न आयामों को नवीन दृष्टि से साथ प्रस्तुत करने में पंडवानी की विषयवस्तु बिलकुल समीचीन ही है।निरन्तर परिवर्तित होने वाली सामाजिक,सांस्कृतिक और राजनीतिक स्थितियों का चित्रण भी पंडवानी में होता है।महाभारत कथा की लोकप्रियता है,उसी के कारण ही पंडवानी भी जन-मानस को प्रभावित करती आ रही है ।

जैसा पहले सूचित किया गया है कि पंडवानी में भीम के चरित्र को ही सबसे प्रधानता दी गई है । भीम को नायक के रूप में चित्रित करते हुए महाभारत की कथा

---

[1] राम हृदय तिवारी, संगीत और शौर्य का संगम : पंडवानी, आरंभ, 07 अक्टूब 2007.aarambha. blogspot.com

को मंच पर प्रस्तुत किया जाता है । इसका यह मतलब नहीं है कि बाकी पात्र अप्रधान है। महाभारत की कथा में पात्रों की इतनी विविधता है कि उन्हें चरित्रों की विशेषता को ध्यान में रखते हुए पंडवानी में चित्रित एवं अभिव्यक्त किया जाता है । फिर भी पंडवानी की प्रस्तुति की मूल में भीम की शौर्य गाथा की प्रधानता नज़र आती है । महाभारत में भीम की चरित्र को शौर्य, साहस ,ओजस्व आदि विशेषताओं से शक्तिशाली युक्त एक योद्धा के रूप में चित्रित किया है । दुर्योधन, दुशासन जैसे शत्रु पक्ष के सबसे पराक्रमी योद्धाओं का वध भीम के हाथ से ही होता है । जब द्यूत सभा में द्रौपदी का अपमान होता है, तब कौरवों से बदला लेने का फैसला भी भीम ही लेता है । मगध के राजा जरासन्ध को द्वन्द्व युद्ध में पराजित कर के पूरे पांडवों को राजसूय यज्ञ में भाग लेने का अनुमति भी भीम ही कमायी थी । भीम के इस पराक्रमी चरित्र को ही पंडवानी के कलाकार बड़ी ओजस्विता और वीरता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इसके संबंध में राम हृदय तिवारी का दृष्टिकोण यहाँ उल्लेखनीय है । तिवारी जी के शब्दों में – " महाभारत के इतने विविध चरित्रों में पंडवानी गायकों ने भीम को ही इतनी प्रमुखता और महता क्यों दी इसके अपने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते हैं । यह एक रोचक तथ्य है कि पंडवानी गायन परंपरा में संलग्न लगभग सभी कलाकार द्विजेतर जातियों के हैं । सदियों से उपेक्षित, तिरस्कृत और दबे कुचले इन जातियों के लोग अपने दमित आक्रोश की अभिव्यक्ति और संतुष्टि भीम के चरित्र में पाते हैं । भीम की अतुल शौर्य गाथा गाकर ये कलाकार अपने भीतर छुपे प्रतिशोध की चिरजीवि सासाध को संतुष्ट करते हैं, साथ ही अपने बीच भी किसी महान पराक्रमी भीम के अवतरण की अंशा संजोए कथा में डूबते उतराते रहते हैं ।"[1] भीम के कथा सन्दर्भ को बहुत ही तन्मयता और गंभीरता के साथ ये कलाकार प्रस्तुत करते हैं, उसमें उनकी जातिगत मौलिकता और आदिम लोक तत्व की ऊर्जा अवश्य दिखाई देते हैं|

---

[1] राम हृदय तिवारी, संगीत और शौर्य का संगम : पंडवानी,आरंभ, 07 अक्टूब 2007.aarambha blogspot.com

4.3.2.4 स्त्रीपक्षीय पुनर्रूपायन

छत्तीसगढ़ की सबसे सशक्त एवं लोकप्रिय एकल् नाट्य–शैली है पंडवानी आधुनिक समय में जिसकी ख्याति आज देश -विदेशों में व्याप्त है । किन्तु इस प्रदर्शनधर्मी लोक कला रूप की सबसे बड़ी कमी यह थी कि इसमें स्त्रियों की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । इसके प्रदर्शन में पुरुषों का ही एकाधिकार रहा था । इस कला रूप के तथा प्रदर्शन में गायन अभिनय और पृष्ठभूमि में वाद्यों का प्रयोग सब पुरुष कलाकार ही परंपरया करते थे । भारत के कुछ प्रदर्शनधर्मी लोक कलाओं में स्त्रियों की उपस्थिति अवश्य मौजूद थी। किन्तु ऐसी प्रदर्शनधर्मी कलाएँ स्त्री -समूह के भीतर ही प्रस्तुत हुआ करते थे । सार्वजनिक स्थानों में प्रस्तुत होने वाली लोक – कलाओं में स्त्री कलाकारों की भूमिका बिलकुल नहीं के बराबर थी । नौटंकी, भवई,कीर्तनिया,जात्रा,माच,यक्षगान, रामलीला, रासलीला, इत्यादि सार्वजनिक और लोकप्रिय कला रूपों में परंपरया स्त्रियाँ नहीं के बराबर थी । इन लोक नाट्य कलाओं के प्रदर्शन में स्त्रियों की भूमिका पुरुषों के द्वारा ही स्त्री की वेश-भूषा में निभाये जाने की प्रणालि प्रचलित थी । समाज के सभी वर्गों में अलग-अलग रूपों में व्याप्त पुरुष -सत्तात्मक मानसिकता ने ही सार्वजनिक लोक- कलाओं से भी स्त्रियों को हटा दिया था । पंडवानी का सन्दर्भ भी इससे भिन्न नहीं है ।लोक -समाज भी पुरुष प्रधान रहा है । अतः इस पुरुष प्रधान समाज में रूपायित एवं विकसित पंडवानी में भी स्त्री कलाकारों की भागीदारी नहीं देखा जा सकता । मात्र दर्शकों के रूप में ही पंडवानी के क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति रही थी । किन्तु इन स्त्री दर्शकों के द्वारा मंच पर देखे जाने वाले प्रदर्शन में स्त्री स्वत्व के नैसर्गिक रूप के स्थान पर एक निर्मित (constructed) स्वत्व को ही पाया जा सकता था । पंडवानी लोक-नाट्य शैली के उदय एवं विकास के समय की सामाजिक स्थिति के प्रभाव ने ही इस कला रूप के प्रस्तुतीकरण के क्षेत्र से स्त्रियों को दूर करा दिया । पंडवानी के उद्भव काल के संबंध में कोई स्पष्ट एवं प्रामाणिक जानकारी अभी तक नहीं मिली है । कुछ विद्वान मानते

है कि पंडवानी का आरम्भ परधान गोंड के द्वारा गाये जाने वाले गाथा रूप में था । आरंभिक समय में पंडवानी के क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति थी या नहीं इसके बारे में भी कोई प्रामाणिक जानकारी मौजूद नहीं है । उन्नीसवीं सदी से लेकर कोई स्त्री-कलाकार पंडवानी के क्षेत्र में उपस्थित नहीं थी । पुरुषों का ही एकाधिकार इस कलारूप में जम गया था । महाभारत की कथा में ऐसे अनेक प्रसंग मौजूद हैं, जिनमें स्त्री पात्रों की सजीव समक्षता अवश्य दिखाई देता है । इन स्त्री -पात्रों के कथा सन्दर्भों की व्याख्या भी पुरुष दृष्टि से ही हुई है । अतः प्रस्तुति की अन्तर्वस्तु और रूप- विधान दोनों स्तरों पर स्त्रियों की मौजूदगी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बिलकुल नहीं के बराबर ही थी ।

4.3.2.4.1 स्त्रियों का प्रवेश

छत्तीसगढ़ की सबसे लोकप्रिय और देश -विदेशों में काफी विख्यात पंडवानी नामक एकल् नाट्य शैली में लंबे समय तक स्त्रियों की मौजूदगी नहीं रही थी । पंडवानी के क्षेत्र में स्त्रियों की सजीव उपस्थित तो सन् 1970 आसपास के लेकर ही हुई है । पद्मभूषण तीजन बाई के परिश्रम से ही आज इतनी अधिक महिलाएँ पंडवानी के क्षेत्र में उतर आ रही हैं । तीजन बाई के पहले इस क्षेत्र में उपस्थित हो गयी दो महिलाओं का नाम यहाँ उल्लेखनीय है -सुखिया बाई और लक्ष्मी बाई। प्रथम ज्ञात पंडवानी गायक के रूप में झाडूराम देवांगन का नाम लिया जाता है तो प्रथम महिला पंडवानी कलाकार के रूप में सूखिया बाई को स्स्वीकार किया गया है । पुरुषों के परंपरा माने जाने के कारण पंडवानी को सुखिया बाई पुरुष वेश धारण करती हुई मंच पर प्रस्तुत करती थी । इस के संबंध में डॉ. परदेशी राम वर्मा कहते हैं कि – "रायपुर के पास स्थित 'मुनगी' गाँव की सुखिया बाई मर्दों के वेश में मंच पर आती थी । तब पंडवानी के विविख्यात कलाकार रावनझीपन वाले मामा-भाँजे ही चर्चा में आये थे सुखिया बाई को लगा होगा कि यह महाभारत की लड़ाई का किस्सा है

इसलिए यह मर्दाना विधा है । इसलिए वे मर्दों के वेश में मंच पर आती थी ।"[1] सुखिया बाई के समय में पंडवानी मंच पर स्त्रियों के द्वारा प्रदर्शन निषिद्ध माना गया होगा । इसलिए ही उन्हें पुरुष वेश का धारण करना पड़ा होगा ।

सुखिया बाई के बाद लक्ष्मी बाई नामक महिला कलाकार ने पंडवानी के क्षेत्र में प्रवेश किया । लक्ष्मी बाई पहली ऐसी कलाकार है जिन्होंने असली स्त्री के रूप में ही मंच पर पंडवानी का प्रस्तुतीकरण किया । लगभग पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही इन्होंने पंडवानी का प्रदर्शन करना प्रारंभ किया । उन्होंने अपनी पिता दयाराम बंजारे से यह कला सीख लिया जो मशाल नाच के प्ररव्यात कलाकार थे । उन्होंने अपने पिता जी से गोंपीचंदा कथा गायन, भरदरी गायन एवं पंडवानी गायन की कला को सीख लिया ।मंच पर बैठकर गायन और अभिनय करने की शैली, यानि वेदमती शैली को ही उन्होंने स्स्वीकार किया था । वे आकाशवाणी की प्रथम महिला पंडवानी कलाकार हैं । सन् 1972 से लेकर वे आकाशवाणी में पंडवानी की प्रस्तुति करती आ रही है । "चौथी कक्षा उत्तीर्ण लक्ष्मी बाई महाभारत ग्रन्थ का पारायण किया और कथा के मूल सूत्रों को पकड़ा ।वे 18 दिन तक पंडवानी गाती है । सभी पर्वों का उन्हें भरपूर ज्ञान है । वे महिला कलाकारों में वरिष्ठतम ही नहीं है,प्रथम साक्षर महिला कलाकार भी है । रामायण गायन की कला में भी वे सिद्ध है । प्रसिद्ध गायक झाडूराम का गाँव बासिंग श्रीमती लक्ष्मी बाई का नन्हीहाल है।झाडूराम जी को वे मामा मनाती थी । इसलिए जब तक बासिंग जाकर मामा झाडूराम से भी पंडवानी पर खूब चर्चा करने की सुविधा उन्हें मिली ।गिटौदपुरी धाम में इस प्रख्यात कलाकार को स्वर्ण -पदक से सम्मानित किया गया ।"[2]

---

[1] डाँ . परदेशीराम वर्मा, पंडवानी की पुरखिन दाई श्रीमती लक्ष्मी बाई, आरंभ, aarambha.blogspot.com,22 फरवरी, 2010

[2] डाँ . परदेशीराम वर्मा, पंडवानी की पुरखिन दाई श्रीमती लक्ष्मी बाई.22 फरवरी 2010,aarambha.blogspot.com

पंडवानी लोक-नाट्य विधा के देश -विदेशों में ख्याति के शिखर पर पहुँचाने वाली मशहूर महिला कलाकार है तीजन बाई ।।छत्तीसगढ़ के अटारी गाँव के एक आदिवासी बहेलिया परिवार में जन्मी तीजन बाई ने अपनी छोटी उम्र में ही पंडवानी कला के क्षेत्र में पदार्पण किया था । अपने बचपन में ही वे गायन और नृत्य में बड़ी रुचि रखने वाली थीं किन्तु उनका बचपन बहुत ही कठिनाइयों से भरा हुआ था । "तीजन बाई का परिवार घुमक्कड़ शिकारी परिवार था । जंगल से चिडियाँ,साँप आदि पकड़ना, पशुओं की चमड़ी उतारना, शहद एकत्रित करना, खजूर के पत्ते काटकर उनसे झाडू और चट्टाइयाँ बनाना, गाँव -गाँव घूमकर उन्हें बेचना, फिर भी भूख और गरीबी में जीवन -यापन करना इस परिवार की नियति रही । इस तरह डेटरा जाति के घुनुक लाल परिधि की बेटी तीजनबाई बचपन में घुमक्कड़ी और अभावों में पलती हुई और सुबह से रात तक श्रम करती हुई माँ -बाप के कानों में ही हाथ बँटाती थी,लेकिन यह बालिका छत्तीसगढ़ी लोकगीतों और फिल्मी गीतों को को पूरी तल्लीनता से गाया करती थी । उसका स्वर ददरिया ,कर्मा, बहाव, गौरा, भोजली,जंवारा आदि छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में भी सधता गया था ।"[1] उनके गीत सुनकर आस-पास के लोग ऐसा कहा करते थे कि एक दिन यह लड़की बड़ा नाम कमाएगी।जनता की यह भविष्यवाणी आज सच हुई है । आज देश विदेश में पंडवानी कलाकार के रूप में विख्यात इस स्त्री का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है ।

गायन में तीजन की रुचि को सबसे पहले उनके नाना बृजलाल से पहचाना था । उन्होंने छोटी तीजन को पंडवानी गाना सिखा दिया|ऐसा करने पर उन्हें परिवार वालों की आलोचनाएँ भी सुननी पड़ी ।सबल सिंह चौहान के महाभारत की कहानियाँ बृजलाल हमेशा तीजन को सुनाता था । तीजन ने उन्हें कंठस्थ भी किया ।बाद में औपचारिक रूप से पंडवानी का प्रशिक्षण उन्हें उमेद सिंह देशमुख से मिला।12उम्र में जब उनकी शादी हो गयी तो ससुराल वाले पंडवानी सिखाने से उन्हें रोक लिया

[1] आशा रानी वोहरा ,नारी कलाकार, पृ.107

।उस समय में सिर्फ मर्द ही कापालिक शैली में पंडवानी प्रस्तुत करते थे । कापालिक शैली में महाभारत कथा को खड़े होकर नृत्य एवं अभिनय के साथ प्रस्तुत किया जाता है । तीजन बाई के पहले स्त्रियाँ बैठकर कथा गायन करने की वेदमति शैली ही अपनाती थी । तीजन बाई को पंडवानी में इतना बड़ा शौक था कि वे रात के समय पंडवानी देखने और प्रस्तुत करने के लिए अकेले घर से निकल जाती । एक बार जब वे पंडवानी में भीम की भूमिका में कथा सुनाती थी तब उनका पति क्रुद्ध होकर वहाँ पहुँचा और मंच पर चढकर तीजन को मारा । पति के मार-पीट का निरन्तर शिकार होने वाली तीजन की क्षमा की सीमा लाँघ गयी थी । उन्होंने अपने हाथ के एकतारे से पति को भी पीटा। इससे उनका अलगाव भी हो गया । तीजन बाई को घर -परिवार से बाहर भी कर दिया गया । किन्तु तीजन बहुत ही कर्मठ युवती थी । अपने इस छोटी उम्र में उन्होंने अपने लिए एक झोंपडी खुद बनायी और अकेले जीवन जीने का फैसला लिया और अपना पूरा जीवन पंडवानी को समर्पित भी किया ।

तीजन बाई को सार्वजनिक प्रदर्शन का पहला न्योता अपने 13 उम्र में मिला था । उस समय में खुले मंच पर लड़कियों द्वारा नृत्य -नाट्य का प्रदर्शन करना हेय समझा जाता था । इसलिए लोगों ने उनपर मज़ाक भी उठाया । किन्तु धीरे-धीरे तीजन बाई की प्रतिभा को सहृदय लोग पहचानने लगे तथा उनकी प्रस्तुतियाँ लोकप्रिय भी होने लगी । प्रसिद्ध रंगकर्मी हबीब तनवीर के साथ उनका मुलाकात हुआ तथा हबीब जी के परिश्रम से तीजन बाई को बहुत सारे मंच मिल गये। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के सामने अपनी कला पेश करने का अवसर उन्हें मिला ।सरकार की तरफ से पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्मविभूषण आदि पुरस्कारों से सम्मानित तीजन बाई आज देश -विदेश के कई मंचों पर पंडवानी की प्रस्तुति करती आ रही है तथा कला आस्वादकों के बीच काफी लोकप्रिय एवं बहुचर्चित भी हो गयी है । उत्साह ,ओज ,भावों के चमत्कार, अभिव्यक्ति की मार्मिकता आदि विशेषताओं से संपन्न है उनकी प्रस्तुति । महाभारत के किसी भी कथा सन्दर्भ को बड़े जोश के साथ

प्रभावशाली ढंग में वे प्रस्तुत करती है । तीजन बाई की प्रदर्शन शैली के संबंध लेखिका आशा रानी बोहरा ने जो कहा है वह बिलकुल उल्लेखनीय है – "तीजन बाई की पंडवानी गायन की विशेषता है, वाद्य वृंद पर स्वरों के उतार -चढ़ाव के साथ, महाभारत के पात्रों के चरित्र को मंच पर जीवंत करना और हर्ष, विषाद, जोश,शोक,घृणा, क्रोध, ललकार, युद्ध- ध्वनि आदि की विलक्षण अभिव्यक्ति ।"[1]

वर्तमान समय में पंडवानी के क्षेत्र में काफी विख्यात एवं लोकप्रिय नाम है रितु वर्मा का ।इन्होंने देश -विदेश में अपनी प्रस्तुतियों से लोगों के दिल को काफी बहलायी है ।इनका जन्म1979 में भिलाई की श्रमिक रूआबांधा में हुई । अपने दस वर्ष की उम्र में इन्होंने जापान में पंडवानी की प्रस्तुति करके आस्वादकों के बीच गौरव हासिल किया है । इतनी छोटी उम्र से लेकर आस्वादकों के मन में गंभीर स्थान प्राप्त करने वाली रितु वर्मा एक प्रतिभाधनी कलाकार है।एक हाथ में एकतारा लेकर अपने घुटनों के बल पर बैठकर अपनी पूरी ऊर्जा और जोश के साथ पंडवानी गाने वाली छोटी लड़की के प्रदर्शन को देखकर पूरे आस्वादक ज़ोर से तालियाँ बजाने लगे । तब से लेकर रितु वर्मा देश -विदेश के मंचों में काफी प्रस्तुतियाँ करती आ रही है । आदिवासी लोक कला परिषद् भोपाल के द्वारा सन् 1991 में पंडवानी प्रस्तुत करने के लिए रितु वर्मा जर्मनी और इंग्लैंड भेजी गयी ।बंगलौर एशिया सोसाइटी की ओर से सन् 1996 में वे अमरीका भी गयी ।विदेशी मंचों के अलावा देश के विभिन्न प्रदेशों में भी वे खूब प्रस्तुतियाँ करती आ रही है ।

इन्होंने पंडवानी की वेदमति शैली को अपनायी है । वेदमति शैली में मंच पर बैठकर गायन और कथावाचन होता है । इस शैली में ही वे अपनी प्रस्तुतियाँ करती आ रही है । लक्ष्मी बाई के बाद इस शैली को स्वीकारने वाली दूसरी महिला कलाकार है रितु वर्मा ।रितु वर्मा के कला-जीवन के विकास को सूचित करते हुए डाँ. परदेशीराम वर्मा लिखते हैं कि – " रितु वर्मा के मन पर झाडूराम देवांगन का गहरा

---

[1] आशा रानी वोहरा, नारी कलाकार, पृ.108

प्रभाव पड़ा ।पिता लखनलाल भी पोथी उठा लाये।वे कथा रटाते और गुलाबदास कथा को सुर में ढालने का गुर सिखाते ।इस तरह रितु ने पहला पाठ अपने इन दो गुरुओं से सीखा ।रितु पारंपरिक शैली की साधिका है।वही अकेली महिला गायिका है जो पंडवानी की वेदमति शैली में शुरू की उठान वाली पंक्तियों को यथावत गाती है. ....

'रामे रामे रामे रामे गा रामे भइया जी ,

रामे रामे रामे रामे गा भाई,

राजा जनमेजय पूछन लागे भैया,

बइसमपायेन कहन लागे भाई।'

रितु इस तरह कथा की शुरुआत करती है । अन्य महिला कलाकार कका ममा जैसे संबोधनों के सहारे आगे बढ़ती है लेकिन रितु की ठेही 'भइया'है।छोटी सी रितु ने जब थोड़ा सा कर लिया तब रुआबाँधा के बबला यादव के घर के सामने उसका पहला कार्यक्रम हुआ । पहले कार्यक्रम में ही रितु की प्रतिभा का लोहा बस्ती वालों ने स्वीकार कर लिया ।फिर उसे प्रोत्साहन के लिए कुछ कार्यक्रम ओर मिले ।धीरे-धीरे गाँवों में उसकी धूम मचने लगी ।लखनलाल जी ने कुछ साजिंदों को जोड़कर एक दल बना लिया ।'रितु वर्मा पंडवानी दल'चल निकला।रुआबाँधा बस्ती का नाम भी चमक उठा। फिर पहला बड़ा ब्रेक रितु को भिलाई इस्पात संयंत्र के लोकरंगी आयोजन में मिला।एक आठ बरस की दुबली पतली लड़की ने जिस आत्मविश्वास के साथ पंडवानी कथा का गायन किया उसे देखकर आयोजक भी दंग रह गए ।यहाँ से रितु के प्रभामंडल का विस्तार होने लगा ।"[1]

---

[1] डॉ. परदेशीराम वर्मा, प्रख्यात पंडवानी गायिका रितु वर्मा छुटपन में कीर्तिमान, आरंभ,15 फरवरी 2010, aarambha.blogspot.com

पंडवानी के क्षेत्र में अपनी सशक्त भूमिका निभाने वाली और एक प्रमुख कलाकार हैं प्रभा यादव ।इन्होंने भी अपनी छोटी उम्र में पंडवानी सीखना शुरू किया । जब प्रभा जी के गाँव में एक बार पंडवानी का प्रदर्शन हुआ तब तीसरी कक्षा में पढ़ने वाली प्रभा ने उसे देखा और उसे पंडवानी सीखने का शौक भी आयी।उन्होंने महाभारत के कुछ प्रसंगों को लेकर गाना भी शुरू किया ।गाँव के बड़े -भूड़े लोगों ने यह सुनकर उनके घर वालों से उन्हें पंडवानी सिखाने को कहा| प्रभा को झाडूराम देवांगन के पास भेज दिया गया तथा उन्होंने झाडूराम जी से पंडवानी सीख लिया ।सीख लेने के बाद गुरु ने उन्हें मंच भी दिया । उनकी प्रस्तुति से गुरु तथा अन्य दर्शक बहुत ही प्रभावित हो गये।इससे उन्होंने तय किया कि पंडवानी ही उनका प्रोफेरात है । और एक प्रमुख पंडवानी कलाकार है शान्ति बाई चेलक।ये बहुत ही प्रप्रतिभाधनी कलाकार है जिन्होंने पंडवानी प्रस्तुति में नये आयाम जोड़ दिये ।इन्होंने ही सर्वप्रथम अनछुए प्रसंगों को मंच पर लाने की कोशिश की थी । इनके साथ-साथ पुन्नी बाई,उर्मिला बाई आदि भी पंडवानी की मशहूर महिला कलाकार है,जिनका नाम कला जगत् में बड़े आदर से साथ लिया जाता है ।

4.3.2.4.2 स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप

पंडवानी के क्षेत्र में जो स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप हुए है उसके तीन प्रकार पाये जा सकते हैं ।

1. पंडवानी में स्त्री -कलाकारों के पदार्पण तथा उससे पुरुष -केंद्रित सामाजिक व्यवस्था पर सामान्य वर्ग के स्त्रियों का घोर प्रहार ।

पहले सूचित किया गया है कि पंडवानी एक पुरुष प्रधान कलारूप था । सदियों से इस कला के क्षेत्र में पुरुषों का ही वर्चस्व रहा था । पंडवानी के सार्वजनिक प्रदर्शनों में मात्र दर्शकों के रूप में ही स्त्रियों की मौजूदगी रही थी । उसे प्रस्तुत करने का हक पुरूषों पर ही निर्भर रहा था । पंडवानी का प्रदर्शन स्त्रियों के लिए वर्जित माना जाता था, विशेषकर कापालिक शैली में प्रदर्शन । कापालिक शैली की यही

विशेषता है कि उसमें प्रदर्शक खड़ा होकर पंडवानी की प्रस्तुति करता है । सार्वजनिक स्थानों पर जनता के सामने अपने को प्रस्तुत करना स्त्रियों के लिए नैतिक दृष्टि से हेय समझा जाता था । इसका यही कारण था कि सामाजिक व्यवस्था के मूल में पुरुष -सत्ता की जड़ें विद्यमान थी । पुरुष -सत्ता का प्रभाव किसी विशेष वर्ग तक सीमित नहीं रहा है बल्कि वह सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर को निरन्तर प्रभावित तथा नियन्त्रित करता रहा है । लोक – कलाओं का क्षेत्र भी इस पुरुष -केंद्रिता से वंचित नहीं रहा गया है । समाज पर व्याप्त इस पुरुष -सत्ता ने ही पंडवानी के क्षेत्र से स्त्रियों को दूर कर दिया था । इस क्षेत्र में जब स्त्रियों ने अपनी उपस्थिति स्थापित करना शुरू किया तब लोक-समाज में निहित पुरुष -वर्चस्व पर घोर प्रहार पड़ने लगा।सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त स्त्री – पुरुष असमानताओं का प्रभाव ही कलाओं में भी देख सकता है । कला के क्षेत्र में निहित असमानताओं को तोड़ने पर निश्चित रूप से उसका प्रभाव समाज पर भी पड़ता है।महिला पंडवानी कलाकारों के जीवन -संघर्ष उसका सच्चा उदाहरण है ।

पंडवानी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित करने के लिए उतर आयी स्त्रियों को बहुत अधिक संघर्ष झेलना पड़ा ।पंडवानी से जुड़ने वाली अधिकांश स्त्रियाँ निरक्षर या अशिक्षित भी है । कोई स्त्री वादी विचार या प्रगतिशील चिन्तन की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि उनकेलिए नहीं के बराबर है । किन्तु अपने ही समाज के पुरुष -वर्चस्विता से उत्पन्न जो असमानताएँ ऐसी स्त्रियों को झेलनी पड़ती है वे उनकेलिए अपना भोगा हुआ यथार्थ है अपने निजी अनुभव है । इन अनुभवों से उत्पन्न जो सहज स्वाभाविक आक्रोश एवं विद्रोह है उसी ने ही संघर्षों को पार करते हुए पंडवानी के क्षेत्र में उतर आने के लिए स्त्रियों को प्रेरित मिला था । पंडवानी के क्षेत्र में उपस्थित होने वाली पहली महिला है सुखिया बाई का अनुभव इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है सुखिया बाई के सन्दर्भ में ऐसा कहा गया है कि वे मर्दों की वेश-भूषा पहनकर मंच पर पंडवानी प्रस्तुत करती थी । मर्दों की वेश-भूषा पहनने का यही कारण होगा कि उस समय स्त्रियों का पंडवानी के मंच पर प्रप्रवेश वर्जित था,अगर एक स्त्री को स्त्री

के रूप में मंच पर देखने से दर्शक असहमत रहेगें ।अतः उन्हें इस क्षेत्र में अपने को उपस्थित करने के लिए, अपनी कला को सृजनात्मकता को अभिव्यक्त करने के लिए इस प्रकार की एक चालाकी तरीके को अपनाना पड़ा होगा । यह तरीका तो असल में परोक्ष रूप से किया जाने वाला प्रतिरोध ही था । बाद में जब लक्ष्मी बाई इस क्षेत्र से जुड़ गयी तो उन्हें भी कई प्रकार के अचानक, परिहास आदि को झेलना पड़ा ।

पद्मभूषण तीजन बाई के द्वारा झेले गये संघर्ष सबसे मार्मिक है । तीजन बाई ही कापालिक शैली में पंडवानी प्रस्तुत करने वाली पहली महिला है । कापालिक शैली में गायन और कथावाचन के साथ नृत्य, अभिनय आदि करते हुए पूरे शरीर का इस्तेमाल मंच पर किया जाता है । यह स्त्रियों के लिए ज़्यादा वर्जित माना गया था । इसलिए तीजन बाई ने कापालिक शैली में जब प्रस्तुतियाँ करना शुरू की तब उनके परिवार, समुदाय जगहों से निष्कासित कर दिया गया था । अपने बचपन में तीजन बाई जब पंडवानी गाने के अभ्यास करती थी तब उनकी माँ इसके विरुद्ध आवाज़ उठाती थीं । और जब जब माँ ने उसे गाते पकड़ा तब माँ की प्रतिक्रिया भी बहूत कठोर थी । तीजन बाई के शब्दों में – "मुझे बंद कर दिया जाता और भूखा रखा जाता था । कई बार तो माँ मेरे कंठ तक माँ मेरे कंठ तक अपनी ऊँगलियाँ घुसा देती थी, ताकि मेरा गाना बंद हो जाए । मगर मैं कहाँ रुकने वाली थी?मुझे पंडवानी के अलावा कुछ ओर सूझता ही न था ।[1]" माँ इसलिए तीजन को गाने से रोकने की कोशिश की थी कि वे अच्छी तरह जानती थी कि अगर तीजन पंडवानी कलाकार बन जाएगी तो समुदाय और परिवार से बहिष्कार हो जाएगा । इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस दौर में पुरुष –सत्ता के नैतिक स्वरूप का प्रभाव कितना तीव्र था । तीजन बाई के नाना ही बचपन में उन्हें पंडवानी के गीत सिखाते थे । इसकेलिए उन्हें परिवार वालों की कटु आलोचनाएँ भी सुननी पड़ी । जब तीजन की शादी हो गयी तब ससुराल वालों के लिए यह बिलकुल मंजूर न था कि स्त्री होकर वह पंडवानी

---

[1] चन्द्रकान्त सिंह, पति का घर छोडा,पंडवानी नहीं छोडी, 28 अक्टू 2018,m.livehindustan.com

गाएँ । इस कारण से अपने पति का मार-पीट भी तीजन को बहुत अधिक सहना पड़ा । किन्तु इन परिस्थितियों ने तीजन बाई को हताश नहीं कर दिया । एक रात को जब वे पंडवानी के मंच पर भीम के कथा प्रसंग का अभिनय कर रही थी तब उनका पति क्रुद्ध होकर मंच पर चढ़ कर उन्हें मारना-पीटना शुरू किया ।अपना सारा नियन्त्रण खो गयी तीजन ने अपने हाथ के एकतारे को गदा बनाकर पति को खूब मारा ।इस घटना से तीजन घर से विस्थापित हो गयी ।किन्तु तीजन इतना कर्मठ औरत थी कि उन्होंने खुद एक झोंपडी बनायी तथा अपना पूरा जीवन कला को समर्पित करती हुई अकेली होकर जीना प्रारंभ किया ।तीजन बाई ने एकतारा से अपने पति को मारा था,वह तो असल में पूरे पुरुष -सत्तात्मक समाज के प्रति स्त्री के आक्रोश एवं प्रतिरोध का घोर प्रहार था । इन सभी संघर्षों को झेलते हुए भी उन्होंने अपने कला-जीवन नहीं ठुकरा दिया ।तीजन बाई तो निरक्षर है, उन्हें कोई विचारधाराओं की जानकारी भी नहीं है । अपने जीवन के कटु अनुभवों ने ही उन्हें प्रतिरोध करने की शक्ति प्रदान की थी । अतः इन संघर्षों को पार करते हुए पंडवानी के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित करने का जो कदम तीजन बाई ने और अन्य कलाकारों ने उठाया है, उसे पंडवानी के क्षेत्र का सबसे सशक्त स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप माना जा सकता है । महिलाओं के जीवन में कला और परिवार के बीच के चुनाव के संबंध में तीजन बाई अपना विचार प्रकट करती हुई कहती हैं कि – " जीवन में ज़रूरी और गैरजरूरी के बीच चुनना आसाआसान है पर दो समान रूप से ज़रूरी के बीच चुनना मुश्किल ।महिलाओं को अक्सर ऐसे सवालों का सामना करना पड़ता है और ऐसी स्थिति में वह ज्यादातर अपने शौक को तिलांजलि दे देती हैं ।मेरे ख्याल से ऐसा नहीं करना चाहिए ।कोशिश करनी चाहिए कि आपका करियर और परिवार दोनों साथ चलें इसकेलिए ज़रूरी है कि आपका जीवन साथी आपकी ज़िम्मेदारियाँ बाँटे और आगे बढ़ने में आपकी मदद करें । जीवन में सार्थकता की तलाश जितना पुरुष के लिए

आवश्यक है उतना ही ज़रूरी स्त्री के लिए भी है ।"[1] प्रभा यादव, पुन्नी बाई, शान्ति बाई आदि पंडवानी से जुड़ी अन्य महिला कलाकारों को भी प्रारंभिक समय में समाज तथा परिवार से संघर्ष अवश्य करना पड़ा था । किन्तु कला के प्रति इन महिलाओं का जो समर्पण भाव है उसी ने इन्हें पुरुष -सत्ता की जड़ों को तोड़ने की शक्ति प्रदान की ।

2. महाभारत कथाओं की स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या । गायन, वादन, कथावाचन, नृत्य एवं अभिनय के द्वारा मंच पर महाभारत कथाओं के प्रस्तुतीकरण को पंडवानी कहा जाता है । पंडवानी की विषय-वस्तु महाभारत के विभिन्न कथा-संदर्भों पर आधारित है । इन कथा- संदर्भों को समकालीन जीवन के साथ जुड कर व्याख्या करना पंडवानी का प्राण है । अपनी सृजनात्मकता और प्रतिभा के अनुसार कलाकार विभिन्न रूप में महाभारत कथाओं का वर्णन पंडवानी में करते हैं । महाभारत नामक महान आख्यान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें समय और परिवेश के अनुसार कथाओं की आख्या-व्याख्या करने की अनेक संभावनाएँ निहित हैं । अतः एक प्रतिभाधनी कलाकार के लिए पंडवानी मिथक के ज़रिए अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है । एक पुरुष -प्रधान कलारूप होने के कारण पंडवानी की विषय-वस्तु का चयन भी पुरुष -केंद्रित दृष्टि से हुआ करती थी । महाभारत के पुरुष -पात्रों के वीरता और शौर्य को दिखाने वाले कथा-प्रसंग को ही पंडवानी के लिए चुना जाता था । स्त्री पात्रों को अप्रधान या गौण रूप में ही पंडवानी में स्वीकार किया जाता था । स्त्री पात्रों के चरित्र को भी पुरुष -केंद्रित दृष्टि से रूपायित करके मंच पर प्रस्तुत किया जाता था । स्त्री के प्रति पुरुष -सत्तात्मक समाज की जो धारणाएँ होती है, उन्हीं का द्योतन पंडवानी की विषय – विन्यास में भी पाया जा सकता है । इस प्रकार नैसर्गिक स्त्री स्वत्व के सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के स्थान पर मंच पर

[1] तीजन बाई से डाँ कायनात काज़ी का साक्षात्कार, womenia world,29 मई 2018 ,demotest. Womenia world. com

एक 'निर्मित स्त्री स्वत्व' की प्रस्तुति हो जाती है, जो स्त्री स्वत्व की सहजता उसकी गहराई और स्त्री -संवेदनाओं से बिलकुल दूर होती है ।

जब स्त्रियों ने पंडवानी के क्षेत्र में अपना पदार्पण शुरू किया तब से लेकर पंडवानी की संपूर्ण विषय -वस्तु का परिप्रेक्ष्य ही बदल जाने लगा।स्त्री पात्रों की प्रधानता भी बढ़ गयी तथा स्त्री चरित्रों को गहनता के साथ प्रस्तुत करता हुआ दिखाई देने लगा ।स्त्री -पात्र प्रधान रूप से आने वाले कथा – प्रसंगों को प्रस्तुतीकरण के लिए लिये जाने लगा ।तथा पुरुष- पात्रों को भी स्त्री दृष्टि से मंच पर विश्लेषित किया जाने लगा ।इससे पूरे पंडवानी का परिप्रेक्ष्य भी बदला तथा महाभारत की स्त्रीपक्षीय व्याख्या मंच पर प्रस्तुत होने लगी ।इस प्रकार विषय-वस्तु के स्तर पर जो स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप हुए है उन्हें तीन रूपों में विभाजित किया जा सकता है ।

1 उपेक्षित या अप्रधान स्त्री पात्र को प्रधानता के साथ प्रस्तुत करना ।

2 स्त्रियों से जुड़े कथा – सन्दर्भों की स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या ।

3 स्त्रियों की निन्दा करने वाला हास्य -उक्तियाँ तथा स्त्री -विरोधी टीका टिप्पणियाँ आदि का विध्वंस ।

महाभारत में सशक्त चरित्र वाली ऐसी कई स्त्री -पात्र मौजूद हैं जिनका प्रस्तुतीकरण तथाकथित पंडवानी के मंच पर नहीं हुआ करते थे । किन्तु इन पात्रों के चरित्र में समकालीन स्त्री- जीवन को चित्रित करने की अनन्त संभावनाएँ मौजूद हैं । पंडवानी के पुरुष- प्रधान मंचों में ऐसी स्त्री -पात्रों की उपेक्षा ही देखी जा सकती है । अतः स्त्री कलाकारों ने ऐसी स्त्री पात्रों को बोधपूर्वक मंच पर प्रस्तुत करने की कोशिश की है । पंडवानी की प्रमुख महिला कलाकार शान्ति बाई चेलक उनमें से एक है जिन्होंने उपेक्षित स्त्री पात्रों की मंच पर गहनता से व्याख्या की है । छत्तीसगढ़ की लेखक प्रो. उर्मिला शुक्ल अपने मनस्वी नामक ब्लॉग में इसके संबंध में स्पष्ट किया है कि – " शान्ति बाई चेलक पंडवानी के प्रसिद्ध प्रसंगों के साथ-साथ उन प्रसंगों को उठाती हैं जो अब तक अनछुए हैं, जैसे पंडवानी के स्त्री- पात्र ।स्त्री -पात्रों में भी सर्वधा उपेक्षित दुर्योधन की पत्नी भानुमती, भीष्म पितामह की माता सत्यवती

। इन पात्रों की व्यथा को वर्तमान स्त्री -विमर्श से जोड़ना इनकी विशेषता है ।और यहीं विशेषता इन्हें और इनके गायन औरों से अलग हो उठता है ।"[1]

स्त्रियों से जुड़ने वाले कथा-सन्दर्भों में सबसे प्रमुख है द्रौपदी वस्त्रापहरण, कर्ण और कुन्ती का मिलन, गान्धारी विलाप आदि । इन कथा-सन्दर्भों का पंडवानी में प्रदर्शन हुआ करते थे । किन्तु उस में स्त्रीपक्षीय दृष्टि का सर्वथा अभाव ही रहा था । पुरुष केंद्रित दृष्टि के साथ ही इन स्त्री -पात्रों का मंच पर प्रस्तुतीकरण होता था । जब स्त्रियों के पंडवानी के क्षेत्र में उपस्थिति स्थापित हुई तब से लेकर स्त्रियों से जुड़े इन कथा-सन्दर्भों की व्याख्या भी नवीन ढंग से होने लगी । स्त्री -कलाकारों ने द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी जैसी स्त्री -पात्रों की मानसिक अवस्थाओं को मनोवैज्ञानिक दृष्टि के साथ गहराई से प्रस्तुत किया है । पंडवानी में बस एक आख्यान के रूप में इन कथा-सन्दर्भों की प्रस्तुति हुआ करती थी । किन्तु स्त्री कलाकारों ने इन पात्रों की मनो-व्यथाओं और विडंबनाओं का समकालीन स्त्रियों की समस्याओं के साथ जोड़ कर देखने की कोशिश की है । द्रौपदी के प्रसंग को जब तीजन बाई प्रस्तुत करती है तो अवश्य उस में स्त्रीपक्षीय दृष्टि की झलक पायी जा सकती है । द्यूत सभा में जब द्रौपदी का अपमान होता है तब बुजुर्ग सहित सभी लोग छुपा बैठते हैं । किसी ने भी स्त्री के अपमान के विरोध कुछ नहीं बोला । रोती चिल्लाती हुई द्रोपदी को देखकर कौरव सभा के प्रमुख दुर्योधन और दुशासन खूब हँसते हैं | अपने पाँच पति वहाँ मौजूद थे । फिर भी किसी ने उसकी रक्षा नहीं कर ली । इस प्रसंग को वर्तमान समय में स्त्रियों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों के साथ जोड़कर देखने की कोशिश तीजन बाई की प्रस्तुति में पायी जा सकती है । उसी प्रकार कर्ण और कुन्ती के मिलन के प्रसंग प्रस्तुत करते समय कुन्ती की मनो-व्यथाओं से गुजरने का प्रयास देखने को मिलता है । विवाह के पहले माँ बनना तथा अपने नन्हे बच्चे को उपेक्षित करने की कुन्ती की जो नियति है उसको भी चित्रित करने का प्रयास महिला कलाकारों की

[1] उर्मिला , पंडवानी, मनस्वी ब्लॉग, 6 जुलाई 2011, urimilashukla20.blogspot.com

प्रस्तुतियों में मिलता है । युद्ध-भूमि में अपने दोनों पुत्र एक दूसरे से लड़ते हुए देखने वाली एक माँ की मानसिक अवस्था, व्यथा दु:खख अपने आप के प्रति ईर्ष्या इन सभी भावों को बडी़ तन्मयता के साथ प्रस्तुत करती है महिला कलाकार । उसी प्रकार युद्ध-भूमि में अपने सौ पुत्रों के मृत शरीर को देखकर दिल टूटकर रोने वाली गान्धारी का अति कठिन दु:ख तथा कृष्ण को शाप देते समय उसके मन के क्रोध आदि भावों को बडी़ मार्मिक ढंग से महिला कलाकार अभिव्यक्त करती है । उसी प्रकार स्त्रियों की निन्दा करने वाली हास्य उक्तियाँ तथा स्त्री – विरोधी टीका टिप्पणियों का खंडन स्त्री कलाकारों ने अपनी प्रस्तुतियों में किया है । पाँच पति वाली द्रोपदी को उपहास की दृष्टि के साथ देखने की आदत पंडवानी में रही थीं । किन्तु स्त्री कलाकारों ने द्रौपदी को बड़े आदर के साथ प्रस्तुत किया है । उदाहरण के लिए प्रभा यादव की प्रस्तुति में द्रोपदी का प्रसंग । द्रौपदी को माँ पार्वती का अवतार मानकर जगदम्बा की तरह पूजा करने की जो रीति उनके प्रदेशों में है उसी से प्रभावित प्रभा जी ने द्रौपदी को सम्मान की दृष्टि से देखने की कोशिश की है ।

3. रूप संसंरचना में निहित पुरुष केंद्रित का खण्डन ।एक पुरुष -प्रधान कलारूप होने के कारण पंडवानी की रूप -संरचना में भी कुछ स्त्री -विरोधी तत्व अवश्य मौजूद रहे थे । महिला कलाकारों के पदार्पण के बाद ऐसी स्त्री -विरोधी तत्व मिटाये जाने लगे ।जब स्त्रियों ने पंडवानी का प्रशिक्षण लेना शुरू किया तब कई पुरुष -कलाकार और दर्शक ऐसा सोचते थे कि स्त्रियों के द्वारा इस कलारूप का मंच पर सफलता के साथ प्रस्तुत करना असंभव है । क्योंकि पंडवानी में सबसे अधिक वीर-रस-प्रधान कथा- प्रसंग ही प्रस्तुत हुआ करते थे । वीर-रस- को मंच पर प्रस्तुत करने के लिए प्रस्तुत जोश, ऊर्जा, ओजस्विता आदि का होना आवश्यक है, जो स्त्रियों के लिए अप्राप्य है । पंडवानी के रूप से संबंधित इस तथाकथित मान्यता को चुनौती देते हुए महिला कलाकारों ने पूरी वीरता, जोश, ऊर्जा, तथा ओजस्विता के साथ पंडवानी को प्रस्तुत करने लगी है ।

पंडवानी के कापालिक शैली में मंच पर कथाओं को प्रदर्शित करने का जो साहस महिला कलाकारों ने उठाया है उसी को रूप संरचना में हुआ सबसे बड़ी स्त्री हस्तक्षेप माना जा सकता है । पंडवानी के क्षेत्र में महिलाओं के लिए कापालिक शैली बिलकुल वर्जित था । खड़े होकर तथा नृत्य नाट्य -अभिनय आदि शरीर के भुजाओं को प्रयुक्त करके ही कापालिक शैली की प्रस्तुति संभव होती है । पुरुष -सत्तात्मक समाज की नैतिक मान्यताओं के अनुसार स्त्रियाँ मंच पर खडे होकर नृत्य करती हुई अभिनय -गायन करना अत्यंत हीन है । इस पुरुष -केंद्रित दृष्टि के एकाधिकार को तोड़कर जब तीजन बाई ने सर्वप्रथम पंडवानी की कापालिक शैली को अपनाया तब से लेकर कई महिलाओं ने इस शैली को प्रस्तुति के लिए स्वीकारा । उसी प्रकार पुरुष कलाकारों के द्वारा जब स्त्री पात्रों का प्रदर्शन होता है तब उनकी शरीर भाषा और वाचन की शैली में लास्य या श्रृंगार भाव की अतिप्रसरता पायी जा सकती है । जो स्त्री के नैसर्गिक भाव से बिलकुल भिन्न एक कल्पित भाव है । जब स्त्रियों ने इस कलारूप को अपनाया तब से लेकर इस प्रकार के कल्पित स्त्रीत्व भावों का खंडन मंच पर होने लगा । स्त्री को एक उपभोग वस्तु के रूप में प्रस्तुत करने की आदत भी बदल गयी ।स्त्री कलाकारों ने सहज-स्वाभाविक रूप में स्त्री पात्रों को मंच पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । इससे पंडवानी के मंच पर स्त्री की अस्मिता स्थापित हो गयी है |

4.3.3 कथकलि

भारतीय नाट्यकला की गंभीर तथा सुन्दरतम अभिव्यक्ति केरल की मशहूर नृत्त-नाट्य विधा कथकलि में मौजूद होती है । उसमें संगीत, साहित्य, शिल्प, नृत्त-नृत्य आदि अन्यान्य कलाओं का समन्वय है और इसी कारण शैलीकृत एवं शास्त्रीय होते हुए भी सदियों से शिक्षित-अशिक्षित भेद के बिना समस्त जनों की कलात्मक अभिरुचि को उद्वेलित करती आ रही है । मुख्यतया पौराणिक कथाओं पर आधारित होते हुए भी यह कलारूप आधुनिक जीवन से भी संबद्ध है । भरतमुनि के

नाट्यशास्त्रीय सिद्धांतों का यह अनुसरण करती है पर अपनी सरणी अलग रहती है । केरल की नाट्य परंपरा की उत्कृष्टतम उपलब्धि है यह पारंपरिक कलारूप ।

4.3.3.1 स्वरूप और विकास

कथकलि का शब्दार्थ है कथा की 'कलि' अर्थात् केलि । कलि शब्द संस्कृत के केलि अथवा खेल शब्द से निष्पन्न है । कलि में दो भाव मौजूद हैं - विनोद और क्रीडा । कथकलि को साधारण लोग आट्टम कहकर पुकारते हैं । आट्टम का सभी दक्षिणी भाषाओं में एक ही अर्थ होता है वह है नृत्य । कथा का कथकलि में सर्वोपरी स्थान है । कथाएँ प्रायः पुराणों और इतिहासों से ग्रहण की जाती हैं । कथकलि के आविर्भाव के पूर्व विविध प्रकार के नृत्त-नृत्य केरल में प्रचलित थे । जनवादी नृत्त-नृत्य की एक धारा तथा संस्कृत के क्लासिकी नाटकों की अभिनय की धारा, इन दोनों का कथकलि के विकास में अपना योगदान है । नवें शती के लगभग उत्तर भारत में भी संस्कृत नाटकों का भी अभिनय होता था । पल्लवों के शासन काल में तमिलनाडु के मंदिरों में संस्कृत नाटकों का प्रदर्शन होता था । वहीं से शायद केरल के मंदिरों में भी संस्कृत नाटकों का भी शुरू हुआ होगा । भक्ति आन्दोलन ने साहित्य के समान अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों को भी देशव्यापी बना दिया । कथकलि की प्रणालियों का पुराणों से अटूट रिश्ता है । लोक कला रूपों और धार्मिक अनुष्ठानकर्मों ने भी उसके रूपायन में सहायता दी है ।

कथकलि के स्वरूप को रूपायित करने में कूटियाट्टम, कृष्णनाट्टम, रामनाट्टम आदि कलारूपों का प्रभाव अवश्य है । भारतीय भक्ति आन्दोलन की कलात्मक अनुभूति का सबसे सशक्त उदाहरण है कृष्णनाट्टम और रामनाट्टम । कृष्णनाट्टम एक अत्यंत प्रकृष्ट नृत्त-नाट्य रूप है, जिसमें कृष्ण के जन्म तथा विविध लीलाओं का वर्णन होता है । कथकलि और कृष्णनाट्टम का परस्पर संबंध इतना प्रगाढ़ है कि एक की अवधारणा दूसरे के सम्यक ज्ञान के लिए अत्यंत आवश्यक है । कृष्णनाट्टम से ही रामनाट्टम का प्रादुर्भाव हुआ है, जो वर्तमान कथकलि का प्रारूप

है रामनाट्टम कोट्टारक्करा तंपुरान को रामनाट्टम का उपज्ञाता माना गया है । रामनाट्टम की कथावस्तु रामायण पर अधिष्ठित है । कोट्टारक्करा तंपुरान ने अपनी अद्वितीय कला मर्मज्ञता से पूर्व प्रचलित नाट्य विधाओं से सामग्री ग्रहण करके रामनाट्टम का रूपायन किया । इसके संबंध में डॉ.रामचंद्र देव ने स्पष्ट किया है कि – "रामनाट्टम की उत्प्रेरक शक्ति थी रामभक्ति । उस समय तक केरल में तुञ्छत् एषुत्तच्छन का अध्यात्म रामायण काफी प्रचलित हो चुका था । उसे तंपुरान ने उपजीव्य बनाया । अतिरिक्त उसके वाल्मीकी रामायण, केरलावर्मरामायण आदि से भी उन्हें सहायता मिली । भक्ति मूलतः जन मानस की वस्तु है । रामनाट्टम में भक्ति और कला का मनोरम समन्वय ही मिलता है । अतः वह जनसाधारण के लिए विशेष आकर्षक हुआ । परवर्ती आट्टक्कथाओं में भक्ति की अपेक्षा श्रृंगार को प्रमुखता प्राप्त हुई । फिर भी मूल चेतना भक्ति अव्याहत ही रही । उसका कारण रामनाट्टम की भक्तिपरता है । कथकलि में कालान्तर में सभी रसों को महत्व मिला ।"[1] इस प्रकार कथकलि के विकास में विभिन्न कलाओं का प्रभाव अवश्य देखा जा सकता है ।

कथकलि की विकास-प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाए तो देखा जा सकता है कि प्रमुख रूप से कथकलि के तीन शैली-भेद अस्तित्व में आए हैं ।

1.वेट्टत्तु संप्रदाय, जिसका पुरस्कर्ता वेट्टत्तुनाडु राजा है ।

2.कल्लाडिक्कोड संप्रदाय, जिसकी उपज्ञाता कोट्टयम तंपुरान है ।

3.कप्लिंगाडु संप्रदाय, जिसका प्रवर्तक कप्लिंगाडु नंपूतिरी है ।

वेट्टत्तुनाडु राजा ने ही रामनाट्टम को कथकलि के रूप में परिवर्तित किया था । वेश-भूषा, वाद्य आदि के स्तरों पर अनेक प्रयोग उन्होंने कथकलि में किया । राजा ने एक कथकलि संघ भी स्थापित किया । इसमें उच्चकोटि के अनेक कलाकार सम्मिलित थे । इनमें से बहुतों ने विशेष पात्र के लिए विशेष ख्याति प्राप्त की । अपने

---

[1] डॉ.रामचंद्र देव- कथकलि : कलात्मक साहित्यिक मूल्यांकन, पृ.6

असली नाम की अपेक्षा वे पात्रों के नाम से अधिक विधिदि हुए । इन कलाकारों की अद्‌भुत सिद्धियों की अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं । राजा का कथकलि संघ एक सौ वर्ष तक निरंतर काम करता रहा ।

कल्लाडिक्कोड शैली कोट्टयम तंपुरान की पद्धति के आधार पर अस्तित्व में आया । उनके समय तक कथकलि में अलौकिक पात्रों जैसे दानव देवता आदि की प्रधानता थी । राजा ने ही सर्वप्रथम इन अलौकिक पात्रों के स्थान पर मानव को स्थापित किया । अभिनय, वादन, गायन आदि कथकलि से जुडी विभिन्न पहलुओं में अनेक परिष्कार कोट्टयम तंपुरान ने किया ।

कप्लिंगाडु नामक स्थान के निवासी नारायण नंपूतिरी के द्वारा कप्लिंगाडु शैली का उन्नायन हुआ । वे अच्छे कलाकार थे । उन्होंने ने ही सर्वप्रथम कथकलि के आहार्य पक्ष पर परिवर्तन और सुधार किया । मुखलेपन पर जो सुधार हुआ है वह इनकी देन है । इन परिष्कारों के कारण पात्रों में स्वाभाविकता और सुन्दरता की प्रतीति आने लगी । गीतों में भावानुकूल रागों का समावेश एवं अभिनय शैली में नवीनता लाने का प्रयास इन्होंने किया था । पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इसका विकास इन्हीं की देन है । कथकलि के स्वरूप में नवीनता लाने वाले अन्य कलाकारों में प्रमुख हैं त्रावंकूर नरेश बलराम वर्मा (धर्मराजा), उन्नं तिरुन्नाल महाराजा, कोच्चिन राज्य के वीर केरालावार्मा आदि । आधुनिक काल में महाकवि वल्लत्तोल का नाम भी इस दिशा में अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है ।

आधुनिक युग में कथकलि के विकास में सर्वश्रेष्ठ योगदान महाकवि वल्लत्तोल नारायण मेनन का है । उनके प्रयत्न से ही कथकलि विनाश से बच गयी । उन्होंने केरलकलामंडलम नामक कला संस्था की स्थापना की तथा कथकलि को प्रशिक्षण का विषय भी बनाया | इससे कथकलि का प्रचार हुआ तथा कई कला-कुतुकियों ने इस कला को सीखना भी शुरू किया । डॉ.रामचंद्र देव के शब्दों में- महाकवि ने कथकलि की प्रस्तुतीकरण की रीति और अभिनय विधा में समयानुसार परिमार्जन

किये है । सबसे पहले उनकी दृष्टि हस्तमुद्राओं पर पडी । मुद्राओं से सूचित वस्तुओं और भावों को उन्होंने परिनिष्ठित और मानक रूप प्रदान किया । अब तक नत 'कथा' की साहित्यिक चारुता से प्रायः अनभिज्ञ थे ; फलतः उनका अभिनय पर्याप्त प्रभावी नहीं हो पाता था । महाकवि ने कलामंडलम के अपने छात्रों की साहित्य शिक्षा की समुचित व्यवस्था कहते हुए कथकलि को अधिक अर्थवान एवं आकर्षक बनाया "|[1] आज कथकलि विश्व के मंचों पर प्रतिष्ठित है । उसका भी श्रेय वल्लत्तोल को प्राप्त है ।

4.3.3.2 विषयवस्तु

पुराण कथाओं के आधार पर विद्वानों व साहित्यकारों के द्वारा कथकलि के लिए रचित काव्य, जिन्हें आट्टकथायें कही जाती हैं, ही विषयवस्तु के रूप में स्वीकृत है । आट्टकथाओं के नाम और रचना के नाम निम्नलिखित हैं |

1.कोट्टारक्करा तंपुरान- बकवध, कल्याणसौगंधिक ,किरमीरवध और कालकेयावध ।

2.महाराजा बालराम वर्मा (धर्मराज) - राजसूय सुभद्राहरण, गन्धर्वविजय, पांचाली स्वयंवर, नरकासुर्वध ।

3.अश्वनी युवराज रामवर्मा- रुक्मिणी स्वयंवर, पौन्ड़कवध, अम्बरीषचरित तथा पूतानामोक्ष ।

4.उण्णायि वारियर – नलचरित

5.इट्टिरारीय मेनन – रुगमांगचरित, संतानगोपाल

6.इरयिम्मन तंपी – कीचक वध, उत्तरास्वयंवर, दक्षयाग |

---

[1] डॉ.रामचंद्र देव- कथकलि : कलात्मक साहित्यिक मूल्यांकन, पृ.10

7.किलिमानूर कोयितंपुरान- रावण विजय

8. आर्यन नारायण मूस- दुर्योधनवध

9.नाणुपिल्लई पन्निशेरी – निषलकूत्त, भद्रकाली विजय, पादुक पट्टाभिषेक और शंकर विजय |

10.वी कृष्णन तंपि – ताटकावध, वल्लिकुमारम और चूडामणि |

इन प्रमुख आट्टकथाओं के अलावा और भी कई आट्टकथायें आजकल कथकलि केलिए प्रयुक्त होती जा रही हैं |

4.3.3.2 अभिनय शैली

कथकलि की संप्रेषणीयता उसके अभिनय पक्ष पर अधिष्ठित है । नाट्यशास्त्र में अभिनय के जो चार प्रकार निर्धारित हुए हैं उन चारों अभिनय तत्वों का सौन्दर्यात्मक समावेश कथकलि में पाया जाता है । वाचिक अभिनय का कार्य नटों के द्वारा नहीं बल्कि गायकों के द्वारा होता है । यह तो कथकलि की अपनी विशेषता है । "आंगिक में शरीर के विभिन्न अंगों का विशिष्ट विन्यास तथा परिचालन होता है । कथकलि में नृत्त-नृत्य की बहुलता है, अतः उसमें आंगिक अभिनय का विशेष स्थान है । आंगिक अभिनय के भी तीन भेद हैं – शरीर, मुखज तथा चेष्टाकृत । इनके आधार पर शरीर के अंग भी विभक्त होते हैं – अंग, उपांग तथा प्रत्यंग । अंग छः हैं – सिर, हस्तताल, कमर, वक्ष, पार्श्व तथा चरण । कुछ लोग कंधे को भी मिलाकर अंगों की संख्या सात मानते हैं । नृत्त-नृत्य तथा अभिनय के क्षेत्र में अंगों का बड़ा महत्त्व है ।"[1] उपांगों में नेत्र, भृकुटि, नासा, अधर, कपोल और चिबुक आते हैं । नेत्रों, भौंहों तथा कपोल के द्वारा किया जानेवाला अभिनय रस पूर्ति के लिए सबसे सार्थक माना जाता है । प्रत्यंगों में गला, हाथ, पीठ, पेट और जांघ आते हैं । मुखं के माध्यम

[1] डॉ.रामचंद्र देव- कथकलि कलात्मक साहित्यिक मूल्यांकन, पृ.33

से किये जाने वाला अभिनय सबसे महत्वपूर्ण है । क्योंकि मुख, मनोभावों का दर्पण होता है । भाव संप्रेषण की सबसे बड़ी उपाधि है हस्तामुद्रा । अन्यान्य भावों के सूक्ष्म संवेदन में वह अत्यंत समर्थ है । 'हस्तलक्षणदीपिका' नामक ग्रन्थ को आधार बनाकर चौबीस मुद्राएं प्रयुक्त होती हैं । वाचिक अभिनय का प्रयोग कथकलि में एक विशेष ढ़ंग से होता है । नट के द्वारा कोई वचनों का उच्चारण कथकलि में होता है । बल्कि नट के निकट खड़े होकर दो गायक गीत गाते हैं । इन गीतों से अर्थ संप्रेषण काफी हृदयहारी बन जाता है । कथकलि में आहार्याभिनय का भी विशेष महत्त्व है । उसमें पात्र की वेश-भूषा, साज-सज्जा, मुख-राग आदि की विशिष्ट शैली अवश्य मौजूद है । पात्रों के स्वभाव, आचरण और प्रकृति के आधार पर कथकलि के वेशों को मुख्यतः पांच भेदों में विभक्त किया जा सकता है – मिनुक्क (मुनि, ब्राह्मण, नारी, दूत आदि पात्रों के लिए), पच्चा (सात्विक प्रकृति के पात्रों के लिए), कत्ति (दुर्योधन, कीचक, रावण जैसे नायकों के लिए), दाढी (दुष्ट पात्रों के लिए लाल दाढी, आखेटक पात्रों के लिए काली दाढी, हनुमान, शकुनी आदि पात्रों के लिए सफ़ेद दाढ़ी) करि (भीषण और कराल पात्रों के लिए) ।

सात्विक अभिनय का रसानुभूति से सीधा संबंध है । सात्विक अभिनय में नट पात्रों के भावों या मनोदशाओं का स्वयं आकलन करता है, प्रेक्षकों में उन्हीं भावों का संचार करता है । भावों का संवेदन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका संबंध मानव मात्र की रागात्मक अनुभूति से है । अभिनेता की कुशलता की कसौटी होती है । रसाभिव्यंजन क्षमता । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सात्विक, आंगिक, वाचिक और आहार्य इन चारों प्रकारों के अभिनय से संपुष्ट कथकलि नामक केरल का कलारूप ने नाट्य-कला के क्षेत्र में उच्च कोटि का स्थान प्राप्त किया है |

4.3.3.4 स्त्रीपक्षीय पुनर्रूपायन

केरल में प्रचलित सभी दृश्यकलारूपों को समाहृत कर रूपायित किया गया कथकलि नामक नृत्य-नाट्य रूप ने अपनी अभिनय शोभा तथा आतंरिक भाषा की

उत्कृष्टता के कारण देश-विदेशों में काफी लोकप्रियता हासिल की है । 17 वीं शताब्दी में विकसित इस क्लासिकी नाट्य-रूप के क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । सालों से कथाकलि में पुरुषों का ही एकाधिकार रहा था । अभिनय, वाद्य प्रयोग, संगीत आदि कथकलि के प्रदर्ह्सन की विभिन्न पहलुओं में स्त्रियाँ बिलकुल अनुपस्थित थीं । आधुनिक काल में जब वल्लत्तोल नारायण मनोन के द्वारा केरल कलामंडलम की स्थापना हुई तब भी वहाँ स्त्रियों को कथकलि प्रशिक्षण के लिए भारती नहीं दिया जाता था । कथकलि की कथावस्तु में स्त्री पात्र अवश्य मौजूद थी, किन्तु इन स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष कलाकारों के द्वारा ही निभाई जाने की परंपरा प्रचलित थी । पुरुषों के द्वारा प्रदर्शित स्त्री पात्र भी हमेशा पुरुष दृष्टि से रूपायित स्त्री संकल्पनाओं को उजागर करने वाली थी । स्त्री के नैसर्गिक भाव और स्त्रीत्व की स्वाभाविक चेतना का उसमें सर्वथा अभाव रहा था । कथकलि के प्रदर्शन में सदियों से यह परंपरा चली जा रही थी कि स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष कलाकारों के द्वारा ही निभाई जाती थी । इस प्रकार पुरुषों के द्वारा निभाई जाने वाली ये स्त्री पात्र नाट्य-शास्त्र में प्रतिपादित सौन्दर्य बोध के भीतर दबी गयी नायिका संकल्पनाओं को उजागर करने वाली थी । स्त्री पात्रों के द्वारा पुरुष पात्रों को आलोचनात्मक दृष्टि के विचार-विमर्श करनेवाले काव्यप्रसंगों को बोधपूर्वक कथकलि से हटा दिया जाता था । नायक पात्र के द्वारा कही हुई बातों का सर्वथा अनुसरण करनेवाली तथा पुरुषों के सामने हमेशा नीचे की ओर अपनी दृष्टि रखकर बातें करनेवाली लज्जाशील नारी के आदर्श रूप से संपन्न नायिका भाव को आत्मसात करनेवाली पात्रों को ही कथकलि के मंच पर देखा जा सकता है ।

इस प्रकार कथकलि में स्त्री उपस्थिति के संबंध हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं ।

1.कथकलि में प्रयुक्त स्त्री-पात्र नाट्य शास्त्र द्वारा निर्धारित नायिका-संकल्पनाओं का सर्वथा अनुसरण करनेवाली है, जो पुरुष-केन्द्रित मानसिकता के द्वारा रूपायित है ।

2.पात्रों के स्वभाव, आचरण और प्रकृति के अनुसार निर्धारित विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा एवं श्रृंगार कथकलि में प्रयुक्त पुरुष पात्रों में पाया जा सकता है । किन्तु स्त्री पात्रों के सन्दर्भ में देखा जाए तो वेश-भूषा में इस प्रकार की अनेकता विद्यमान नहीं है । स्त्री पात्र जो भी स्वभाव के हो उनके लिए उनके लिए एक ही प्रकार की वेश-भूषा निर्धारित है ।

3.अभिनय की अनंत संभावनाओं से निहित विशेष कथा वर्णन, सूक्ष्माभिनय, करण, अहंकार आदि का स्त्री पात्रों के सन्दर्भ में देखा जाए तो सर्वथा अभाव ही नज़र आता है ।

4.स्त्री पात्रों के द्वारा पुरुष पात्रों की आलोचना पर बल देने वाले कोई भी प्रसंग मंच पर प्रदर्शित नहीं होता है ।

5. कथकलि में प्रयुक्त स्त्री पात्र पुरुष निर्मित नैतिक बोध का पालन करनेवाली होती है ।

6.स्वत्व बोध से युक्त सशक्त पात्रों से निहित सन्दर्भों का वर्णन कथकलि में नहीं के बराबर है ।

7.समाज में प्रचलित जो वर्ण-लिंग परक वर्चस्व का प्रभाव कथकलि के मंच पर भी देखा जा सकता है ।

8.स्त्री पात्रों के देह विन्यास, चाल, करण एवं अंगविहार पुरुष केन्द्रित दृष्टि को संतुष्ट करने वाले होते हैं ।

9.स्त्री पात्रों में मुख्यतः मात्र श्रृंगार और करुणा भावों की प्रधानता ही मौजूद है ।

10.ऐसा कोई भी कथासन्दर्भ कथकलि में उपस्थित नहीं है जिसमें स्त्री को केन्द्रीय भूमिका में देखा जा सकता है ।

4.3.3.4.1 स्त्रियों का प्रवेश

जैसा कि पहली ही सूचित किया गया है कि आधुनिक समय में केरल कलामंडलम की स्थापना के पश्चात् भी कथकलि के क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति नहीं के बराबर ही थी । जब महाकवि वल्लत्तोल ने कथकलि के समुद्धार कार्य को केंद्र में रखते हुए उस युग के प्रायः सभी विख्यात कथकलि गुरुओं को शिक्षक के रूप में कलामंडलम में नियुक्त किया तब से लेकर इस विशिष्ट कलारूप को सीखने के लिए कई छात्रों ने कलामंडलम में भर्ती ली । कथकलि के प्रस्तुतीकरण की रीति और अभिनय कला में समयानुसार परिमार्जन करते हुए उन्होंने कथाकलि को अधिक अर्थवान और आकर्षक ज़रूर बनाया । किन्तु यह अत्यंत दुर्भाग्य की बात है कि कथकलि के प्रचार-प्रसार बढ़ने पर भी इस कलारूप में स्त्रियों की उपस्थिति को रूपायित करने के संबंध में किसी ने भी विचार नहीं किया । अतः कलामंडलम में कथकलि सीखने के लिए प्रवेश भी मात्र पुरुषों को ही मिलता था । उस समय का कलाकार इसका यही कारण बताते थे कि प्रातःकाल के समय में अभ्यास के लिए प्रशिक्षण केंद्र में पहूंचना स्त्रियों के लिए असंभव है तथा कथकलि के प्रदर्शन के लिए कभी-कभी अकेले सफ़र करना पड़ता है, वह भी स्त्रियों के लिए मुश्किल की बात है । किन्तु स्त्रियों के कुछ निजी अनुभवों से यह बात पक्का हो जाती है कि प्रस्तावित कारण असल में उतना सशक्त नहीं है जो कथकलि के क्षेत्र में स्त्रियों के प्रवेश को रोकने में समर्थ है । प्रमुख मोहिनियाट्टम् नर्तकी एवं कलामंडलम की शिक्षक कल्याणिकुट्टी अम्मा अपना अनुभव व्यक्त करती हुई कहती है कि "कलामंडलम में पाट्टिक्कामतोडी रावुन्नी मेनन जी, कलामंडलम कृष्णन नायर जी तथा वाषेक्काड् कुंजुनायर जी ने मुझे निजी रूप में कथकलि की शिक्षा दी थी ।"[1] प्रातःकाल में अभ्यास के लिए प्रशिक्षण स्थल में आना स्त्रियों के लिए असंभव समझे जाने वालों के लिए कल्याणिकुट्टी अम्मा के अनुभव घोर प्रहार है । अपनी शिष्या एवं नर्तकी निर्मला

[1] सजिता मठत्तिल- मलयाला नाटक स्त्री चरित्रम्, पृ.41

पणिक्कर को कल्याणिकुट्टी अम्मा ने जो ख़त लिखा था, उसमें उन्होंने सुबह दो बजे के समय उठकर साधना करने के अनुभव के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा है । कल्याणिकुट्टी अम्मा के अनुभव से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कथकलि का प्रशिक्षण एवं साधना स्त्रियों के लिए असंभव कार्य नहीं है ।

कथकलि के क्षेत्र में निहित पुरुषों के एकाधिकार को चुनौती देती हुई अपनी उपस्थिति स्थापित करनेवाली प्रथम स्त्री है 'चवरा पारुक्कुट्टी' । लगभग पचास सालों से कथकलि का प्रदर्शन करती आ रही पारुक्कुट्टी इस क्षेत्र में निहित पुरुष वर्चस्व को तोड़ने वाली सशक्त स्त्री हस्तक्षेप का जीवंत प्रमाण है । कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ उन्होंने कथकलि अभ्यास भी पूरा किया । मुतुप्पिलक्काड गोपालपणिक्कर के अधीन में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होंने पूतनामोक्षम कथासन्दर्भ को मंच पर प्रस्तुत करते हुए अपना रंगमंचीय कला सफ़र शुरू की । इसके बाद उन्होंने 'पोरुवषी श्रीकृष्ण विलासम' कथकलि संघ के साथ मिलकर विभिन्न स्त्री पत्रों को मंच पर प्रस्तुत किया । उसके बाद 'मांकुलम विष्णु नंपूतिरी' के अधीन में पारुक्कुट्टी ने कथकलि में उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा स्त्री पात्र और पुरुष पात्र, दोनों को रोचक ढ़ंग से मंच पर प्रदर्शित करती हुई सहृदयों की प्रशंसा का पात्र बन गयी । देवयानी, दमयंती, पूतना, उर्वशी, किरमीरवधम कथा की पात्र ललिता, मलयत्ती, सती, कुंती, प्रह्लाद, कृष्ण, नलचरितम कथा की पात्र केशिनी आदि पात्रों की भूमिका को निभाने में वे अत्यंत निपुण थी । अपने अनुभवों को व्यक्त करती हुई चवरा पारुक्कुट्टी कहती है कि – "कथकलि सीखने की अदम्य इच्छा से जब मैंने गुरु गोपाल पणिक्कर के पास पहुँचा तब उन्होंने मुझसे कहा कि कथकलि सीखने का काम स्त्रियों के लिए बहुत कठिन है । यह सुनकर भी मैंने एक कदम भी पीछे नहीं रखा । मैं उस कठिनाई को अपने कन्धों पर लेने के लिए तैयार हुई तथा गुरु के अधीन अपना अभ्यास कार्य शुरू किया । मेरे अभिनय को देखते हुए कुछ सहृदयों ने पुरुष पात्रों की भूमिका में मुझे अभिनय करते हुए देखने का आग्रह प्रकट किया

। तब मैंने पुरुष पात्रों का अभिनय भी सीख लिया तथा रुक्मिणी स्वयंवर कथा का पात्र श्री कृष्ण और कल्याणसौगंधिक कथा का पात्र भीमसेन को मंच प्रस्तुत किया ।"[1] अपने यौवन काल में ही उनको मशहूर कलाकारों के साथ अभिनय करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है ।

चवरा पारुक्कुट्टी के कला-अनुभवों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कथकलि प्रदर्शन के लिए विभिन्न स्थानों में सफ़र करना स्त्रियों के लिए बिलकुल असंभव कार्य नहीं है ।

कथकलि के क्षेत्र में स्त्रियों के प्रवेश को रोकने वाले और एक कार्य पुरुष कलाकारों ने सूचित किया है कि कथकलि के अभिनय के लिए देह का लचीलापन [Flexibility] अत्यंत आवश्यक है तत्व है । देह को लचीला बनाने के लिए पुरुष कलाकारों को कलामंडलम में अंगों को मालिश करने का विशेष कार्य मौजूद है, जो अभ्यास का एक प्रमुख अंश है । यह कार्य स्त्रियों के लिए संभव नहीं होता है । अतः कथकलि में स्त्रियों को प्रविष्ट करना भी बिलकुल असंगत है । इस बात का खंडन करती हुई चवरा पारुक्कुट्टी कहती है कि "स्त्रियों का देह अपने में लचीला होता है । उसके लिए विशेष मालिश कार्य की ज़रुरत नहीं है । अगर वह इतना ज़रूरी हो जाता है तो ऐसा कर सकता है कि जो स्त्रियाँ मालिश कार्य में प्रवीण है उनको कलामंडलम में नियुक्त करना ।"[2]

कथकलि से जुड़े इन स्त्री-अनुभवों से दो बात स्पष्ट हो जाते हैं कि –

1.कथकलि का प्रशिक्षण और प्रदर्शन स्त्रियों के लिए बिलकुल असंभव-कार्य नहीं है ।

---

[1] चवरा पारुक्कुट्टी- चंकूट्टत्तोड़े चवरा पारुक्कुट्टि अम्मा, जन्मभूमि पत्र, 15 जुलाई 2017

[2] चवरा पारुक्कुट्टी - समन्वयम, जनवरी 14, 2018, www.samanvayam.com

2.कथकलि के क्षेत्र में पुरुष सत्ता का प्रभाव बहुत गहरा है तथा इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित करने के लिए स्त्रियों को बहुत संघर्ष झेलना पडा है ।

4.3.3.4.2 महिला कथकलि संघ

सन् 1975 में अंतर्राष्ट्रीय महिला साल में केरल के त्रिप्पूनित्तुरा नामक प्रदेश में महिला कथकलि संघ की स्थापना हुई । पुरुष वर्चस्व की दुनिया को तोड़कर कथकलि के क्षेत्र में अपनी निजी स्वत्व को स्थापित करने का महिलाओं का यह क्रांतिकारी कदम सचमुच ऐतिहासिक महत्त्व रखने वाला है । कथकलि के इतिहास में यह दूसरा महिला-प्रयत्न था । इसके पहले सन् 1962 में तृशूर जिले में एक महिला कथकलि संघ की स्थापना हुई थी । किन्तु उस संघ की आयु मात्र छः साल ही रही थी । त्रिप्पूनित्तुरा तथा उसके करीब के प्रदेशों में रहने वाली लड़कियों को जब कलासमारोहों में पुरस्कार प्राप्त हुआ तब से लेकर महिला कथकलि संघ जैसी संकल्पना के संबंध में महिला कलाकारों के बीच सोच-विचार शुरू हुआ । जैसा कि पहले सूचित किया गया है कि कथकलि के क्षेत्र में पुरुष वर्चस्व का गहरा प्रभाव है । इस कारण से ही अधिकांश पुरुष-कलाकार महिलाओं के कथकलि में प्रवेश के विरोध में खड़े थे । महिलाओं को कथकलि में प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर भी बहुत कम था । अतः इस पुरुष केन्द्रित दुनिया में कदम रखने के लिए स्त्रियों को पुरुषों के कथकलि संघ के समानांतर महिला कथकलि संघ की स्थापना के लिए तैयार होना पडा ।

कथकलि में प्रशिक्षण प्राप्त कुछ महिला कलाकारों के सामूहिक प्रयत्न का परिणाम स्वरूप महिला कथकलि संघ की स्थापना हुई । इस संघ ने कथकलि की विभिन्न पहलुओं में स्त्रियों की सजीव उपस्थिति स्थापित की । संघ की प्रथम प्रस्तुति था 'कल्याणसौगंधिकम' । शैलजा वर्मा, श्रीमती अंतर्जनम, तारा वर्मा, राधिका अजयन, पद्मिनी, नलिनी, नवरंगम विजयमणि आदि शुरू के समय में महिला कथकलि संघ में प्रमुख अंग थी । शैलजा वर्मा और राधिका वर्मा का भीम, श्रीमती

अंतर्जनम का हनुमान, तारा वर्मा की पांचाली मंच पर काफी लोकप्रिय थे । पालक्काड जिले के गांधी सेवा सदन से प्रशिक्षण प्राप्त पद्मिनी और नलिनी, ये दोनों ही कथकलि के नियामक गायिकाएँ थीं । नवरंगम विजयमणि ने मंच पर वाद्य का प्रयोग किया था । अपने उदय के पश्चात् महिला कथकलि संघ को कई कथकलि प्रस्तुतियों के लिए आमंत्रण मिला । इसके साथ ही कई महिला कलाकार संघ से जुड़ने लगी । कथकलि में प्रचलित अधिकांश कथाओं को मंच पर प्रस्तुत करने में महिला संघ सफल हुई । इसके साथ ही महिला कथकलि संघ केरल में काफी लोकप्रिय हुई तथा महिला कथकलि प्रस्तुतियाँ बहुचर्चित भी होने लगीं । स्त्रीपक्षीय विचारों से प्रभावित कुछ पुरुष कलाकार भी महिला कथकलि के साथ जुड़ने लगे ।

संघ की अधिकांश महिलाएँ कला के प्रति अपनी अदम्य शौक के कारण ही उसमें उपस्थित थी । असल में उनके लिए इस क्षेत्र में कार्य करना उतना आसान नहीं था । संघ से जुडी महिलाओं में नौकरी करने वाली स्त्रियाँ थीं । घर-परिवार का उत्तरदायित्व निभाने वाली स्त्रियाँ भी संघ में मौजूद थीं । उनके लिए इन सभी भूमिकाओं में अपने आपको चलाना बहुत ही संघर्षपूर्ण था । फिर भी कला के प्रति अपनी अदम्य इच्छा ने इन स्त्रियों को संघ में कार्यरत होने के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया । ऐसी परिस्थिति में इड़ुप पालस की सती वर्मा ने संघ का नेतृत्व ले लिया । इनके नेतृत्व में संघ और भी प्रोफेशनल होने लगा । केरल की दक्षिणी इलाकों पर कई प्रस्तुतियाँ की गयीं । साल में करीब पचास प्रस्तुतियाँ तक मिलने वाले संघ की प्रस्तुतियाँ केरल के बाहर भी काफी लोकप्रिय होने लगी । विदेशों में जाने का अवसर भी संघ की सदस्यों को मिला । अपने विकास के साथ-साथ महिला कथकलि संघ से जुडनेवाली कलाकारियों की संख्या भी बढ़ गयी । पच्चा, कत्ति, दाढी, मिनुक्क आदि विभिन्न स्वभाव और प्रकृति के प्रत्येक पात्रों के अभिनय में प्रवीण कलाकारियाँ सामने आने लगीं । इस संघ की यह विशेषता थी कि यहाँ किसी भी प्रकार के उच्च-

नीच भेद-भाव नहीं रहते थे । आवश्यकता के अनुसार किसी भी पात्र को मंच पर प्रस्तुत करने के लिए संघ की हर एक कलाकार तैयार थी ।

राधिका अजयन, गीता वर्मा, पार्वती मेनन, प्रमीला विजयन, सुमा वर्मा, तारा वर्मा, सरिता वर्मा, कोट्टारक्करा गंगा, कोट्टारक्करा भद्रा, इरिञालक्कुडा गीता, माया नेच्चिकोड, कुन्नत्तूर सरस्वती, सुषमा सुरेश, अनुपमा वर्मा, रंजिनी सुरेश, हरिप्रिया नंपूतिरी, आर्चा वर्मा, चवरा पारुक्कुट्टी, जयश्री, आर्चा शरण्या, सुभद्रा वर्मा, क्षमा राजा, मीरा राजमोहन आदि संघ से जुडी मशहूर अभिनेत्रियाँ हैं । इनके साथ कुमारी वर्मा, शैलजा वर्मा, दीपा पालनाड आदि कथकलि संगीत में काफी प्रवीण कलाकारियाँ थीं । कथकलि संघ के विकास के साथ-साथ कई महिलाओं ने कथकलि को अपने प्रोफेशन के रूप में भी स्वीकार किया । अपनी ऊर्जस्वलता और यश के कारण ये महिला कलाकार पुरुष कलाकारों के समान ही सहृदयों की प्रशंसा के पात्र बन गयीं । इस संघ से प्रेरणा पाकर केरल के विभिन्न प्रदेशों में कुछ ऐसे महिला संघ भी स्थापित हुए जो लड़कियों को कथकलि प्रशिक्षण देते आ रहे हैं । केंद्र सरकार के नारी शक्ति पुरस्कार से सम्मानित इस संघ ने आजकल देश-विदेशों में ख्याति अर्पित की है ।

4.3.3.4.3 स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप

वर्तमान समय में कथकलि के क्षेत्र में जो स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप हुए हैं, उसके चार प्रकार पाए जा सकते हैं-

1.कथकलि का क्षेत्र जहाँ पुरुषों का एकाधिकार रहा था, वहाँ स्त्रियों की सजीव उपस्थिति स्थापित करने का स्त्री कलाकारों के द्वारा हुए प्रयास । पहले ही सूचित किया गया है कि सदियों से पुरुष वर्चस्व की जकड में पडी हुई कथकलि जैसी एक प्रौढ़ कला वर्त्तमान समय में अपने में निहित पुरुष-सत्ता की जड़ों को तोड़कर स्वतन्त्र व् लोकतांत्रिक रूप को स्वीकार करते हुए मंच पर प्रयुक्त हो रही है। प्रारम्भिक दौर में प्रचलित कथकलि में महिलाओं की उपस्थिति नहीं के बराबर थी। उस समय की

कथकलि में स्त्री पत्रों की भूमिका भी पुरुष कलाकारों के द्वारा निभायी जाने की प्रणाली प्रचलित थी। कलाओं के सुधार और प्रचार को केंद्र में रखते हुए स्थापित कलामंडल जैसी संस्था भी स्त्रियाँ को मंच पर उपस्थित करने केलिए तैयार नहीं हुई तथा कथकलि सीखने का अवसर भी स्त्रियों को नहीं दिया। कथकलि से जुड़े अधिकांश कलाकार और आस्वादन इस स्त्री विरोधी विचार को लेकर चलने वाले थे। 1970 के आसपास से लेकर कथकलि में रुची रखने वाली कुछ स्त्रियाँ निजी तौर पर इस कला को सीखने लगी। कथकलि के कुछ आचार्य, स्त्रियों को सिखाने केलिए तैयार भी हो गए। किन्तु स्त्रियों के इस प्रयास को अधिकांश पुरुष कलाकारों ने अनदेखा किया तथा वे अपने साथ मंच पर स्त्री कलाकार के उपस्थित होने से बिलकुल सहमत भी नहीं हुए। आस्वादक भी अपने तथाकथित दर्शकीय आदतों को परिवर्तित करने केलिए तैयार नहीं हुए। वे स्त्री द्वारा कथकलि मंच पर अभिनय करने की इस ऐतिहासिक कदम को स्वीकारने केलिए तैयार भी नहीं हुए। ऐसी स्थिति में स्त्रियों को अपनी कलात्मक एवं सृजनात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता केलिए एक अलग कथकलि संघ की स्थापना करनी पडी जो पूर्ण रूप से महिलाओं से संपन्न है।

सन् 1970 का समय भारत में विशेषकर केरल में कला, साहित्य तथा अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों में स्त्री की अस्मिता के सम्बन्ध में विचार-बहस शुरू हुए थे। स्त्रीवादी विचारकों ने रंगमंचीय कलाओं के क्षेत्र में निहित पुरुष वर्चस्व की आलोचना की तथा स्त्री स्वत्व को स्थापित करने के सम्बन्ध में चर्चाएँ भी शुरू की। डॉ.पी.गीता जैसी केरल की प्रमुख स्त्रीवादी चिन्तक कथकलि में पुरुष कलाकारों के द्वारा स्त्री पत्रों की भूमिका निभाने वाली प्रचलित आदत के विरोध में बोली। उन्होंने स्पष्ट ही कहा कि – " जब तक स्त्रियों को कथकलि में नहीं शामिल किया जाता तब तक कथकलि को एक सम्पूर्ण कला की अभिधा से अभिहित नहीं किया जा सकता है। स्त्री पत्रों की भूमिका को उसकी पूर्णता के साथ अभिव्यक्त करने में स्त्री कलाकार ही समर्थ हो जाती है। अतः कथकलि में स्त्रियों का प्रवेश होना अत्यंत

आवश्यक है।"[1]किन्तु पी.गीता के इस विचार को कोट्टक्कल शिवरामन, मार्गी विजयकुमार, जैसे कथकलि कलाकार बिलकुल सहमत नहीं हुए। अपनी असहमति को प्रकट करते हुए कोट्टक्कल शिवरामन ने कहा कि – " जिस ढंग से पुरुष कलाकार मंच पर स्त्री पत्रों की भूमिका को निभाते हैं, उतनी तन्मयता और सौन्दर्य के साथ कोई स्त्री नहीं कर सकती। पुरुष पात्रों को भी पुरुषत्व के साथ सशक्त रूप में प्रस्तुत करना स्त्रियों के द्वारा संभव नहीं है।"[2] मार्गी विजयकुमार भी इसी विचार के पक्षधर थे। इस प्रकार कथकलि के सम्बन्ध में यह सार्वजनिक बोध प्रचलित था कि कथकलि की संरचना और देह-भाषा पुरुषों के अनुरूप रूपायित हुई है। अतः स्त्रियों के लिए उसका प्रशिक्षण कठिन हो जायेगा तथा मंच पर प्रस्तुतीकरण असफल भी हो जायेगा।

कथकलि में रूढ़ हो गयी इस प्रकार की एक पुरुष-केन्द्रित धारणा को चुनौती देती हुई जब स्त्रियाँ कथकलि का प्रशिक्षण एवं प्रस्तुतीकरण करने को तैयार हो गयी तब पूरी कथकलि की संरचना में निहित पुरुष-सत्ता की जड़ें टूटने लगीं। प्रतिकूल परिस्थिति में भी बिना किसी संकोच के साथ अपनी सृजनात्मक इच्छा की पूर्ती केलिए स्त्री कलाकारों ने जो सशक्त कदम उठाया है, वही कथकलि के क्षेत्र में होने वाले सबसे प्रथम स्त्री-पक्षीय हस्तक्षेप था।

पुरुषों के द्वारा संचालित कथकलि संघों में जब स्त्रियों को प्रवेश नहीं मिला तब स्त्रियों ने कथकलि के क्षेत्र में अपने को प्रतिष्ठित करने केलिए महिला कथकलि संघ के रूप में एक दूसरे अलग स्पेस को बनाकर अपनी सृजनात्मकता को प्रकट किया। यह असल में महिला कलाकारों का एक सामूहिक क्रांतिकारी प्रयास था जो स्त्रीवादी रंगमंच के इतिहास में काफी महत्वपूर्ण है। इस महिला संघ की कथकलि

[1] सजिता मठत्तिल, मलयाल नाटक स्त्री चरित्रम्, पृ.43

[2] सजिता मठत्तिल, मलयाल नाटक स्त्री चरित्रम्, पृ.42

प्रस्तुतियों से आस्वादकों के बीच में यह बात साबित हो गयी कि कथकलि का रूप-विधान और संरचना स्त्रियों केलिए बिलकुल अप्राप्य नहीं है।

2.पुरुष-केन्द्रित दृष्टी से रूपायित एवं प्रदर्शित स्त्री पात्रों का स्त्री पक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपायन।

स्त्री-पत्रों का पुनर्रूपयन कथकलि के क्षेत्र में एक सशक्त स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप है। सदियों से पुरुषों के द्वारा रूपायित एवं प्रदर्शित कथकलि की विषय-वास्तु और पात्र चयन की सृष्टि पुरुष-सत्तात्मक दृष्टि से ही हुई है। सालों से इस कलारूप में पुरुष पात्रों की ही प्रधानता रही थी। स्त्री पात्रों को बिलकुल अप्रधान रूप में ही प्रतिष्ठित किया हुआ दिखाई देता है। कथकलि के लिए रचित प्रमुख आट्टकथाओं में सशक्त स्त्री पात्र अवश्य मौजूत है, किन्तु मंच पर स्त्री पात्र अप्रधान ही दिखाई देती थी। स्त्री पात्रों के चरित्र को उसकी गहराई और महत्त्व के साथ मंच पर चित्रित करने का प्रयास पुरुष कलाकारों ने नहीं किया था इसके सम्बन्ध में प्रमुख स्त्रीवादी चिन्तक डॉ.पी.गीता ने अपना विचार प्रकट करते हुए बताया है कि – " नाट्यशास्त्र के द्वारा निरूपित नायिका-संकल्प ने ही कथकलि के मंच पर प्रस्तुत स्त्री चरित्रों को भी रूपायित किया है। जो पुरुष प्रधान दृष्टि का परिचायक है। पुरुष पात्रों और उनके चरित्रों में जो अनेकता और वैविध्य दिखाई देता है, वह स्त्री पात्रों के सन्दर्भ में नहीं के बराबर हैं। आत्मचेतना और कर्तव्य से युक्त स्त्री पात्रों को मंच पर प्रदर्शित करने के लिए नहीं चुना जाता है। उसी प्रकार कथकलि में प्रस्तुत स्त्री पात्र पुरुष केन्द्रित नैतिकता, रूढ़िवादिता और पातिव्रत्य का पालन करने वाली होती हैं। समाज के स्थापित वर्ण-वर्ग परक व्यवस्था का प्रभाव स्त्री पात्रों के चरित्र चित्रण में पाया जा सकता है। धर्म के साथ पुरुष सत्ता के अटूट सम्बन्ध को स्थापित करने वाला है कथकलि का स्त्री पात्र विभाजन। "[1]

---

[1] सजिता मठत्तिल, मलयाल नाटक चरित्रम्, पृ.43

जब महिला-कलाकारों ने कथकलि के क्षेत्र में प्रवेश किया तब से स्त्री पात्रों के प्रस्तुतीकरण एवं उसकी चरित्र संरचना में निहित पुरुष सत्ता की जड़ें टूटने लगी। व्यक्तित्व और आत्मचेतना से युक्त स्त्री पात्रों को मंच पर प्रस्तुत करने का बोधपूर्वक प्रयास महिला कलाकारों ने किया। साथ ही जो स्त्री पात्र सालों से कथकलि में प्रयुक्त है, उन पात्रों के चरित्र को स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपयित करने की कोशिश भी की। इससे पूरी कथावस्तु की स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या भी होने लगी। उदाहरण के लिए हरिप्रिया नाम्पूतिरी के द्वारा प्रस्तुत दमयंती, कुंती, पूतना, द्रौपदी, उर्वशी आदि पात्र। आट्टकथाओं में इन पात्रों का महत्वपूर्ण स्थान अवश्य मौजूत है, किन्तु मंच पर उनका जो प्रस्तुतीकरण पुरुष कलाकारों के द्वारा हुए हैं, उसमें स्त्रीपक्षीय दृष्टि का अभाव दिखाई देता है। उस अभाव को मिटाकर स्त्री-स्वत्व को प्रतिष्ठित करने का प्रयास हरिप्रिया नाम्पूतिरी के अभिनय में देखा जा सकता है। कर्णशपथम कथकलि की प्रमुख पात्र है कुंती। कुंती और उनके पुत्र कर्ण के बीच का संवाद ही कथा का मूल तत्व है। हरिप्रिया नाम्पूतिरी ने स्त्रीपक्षीय दृष्टि से कुंती के अंतर्मन तक पहुँचने का प्रयास किया है। एक स्त्री होने के कारण पितृसत्तात्मक समाज से कुंती को जो विडंबनाएँ झेलनी पडी है, उसको स्त्री केन्द्रित दृष्टि के सहारे पुनर्व्याख्यायित करने की कोशिश की गयी। मातृत्व भाव की अभिव्यक्ति के साथ-साथ पितृसत्तात्मक समाज के नियमों और मर्यादाओं का ज़बरदस्ती से पालन करने केलिए मजबूर हो जाने वाली एक साधारण स्त्री के मानसिक संघर्ष की अभिव्यक्ति कुंती के माध्यम से हरिप्रिया जी मंच पर करती हैं। उसी प्रकार है दमयंती जो नलचरितम आट्टकथा की नायिका पात्र है। कथा का नायक पात्र ' नल ' के पक्ष पर खड़े होकर पूरे नलचरितम की व्याख्या सालों से कथकलि के मंच पर प्रस्तुत होता दिखाई देता है। महिला संघ के द्वारा प्रस्तुत नलचरितम में दमयंती के पक्ष को भी उजाकर करने का प्रयास देखने को मिलता है। पितृसत्तात्मक समाज की मर्यादाओं का पालन करने वाली आदर्श पत्री या नारी के रूप में आट्टक्कथा में प्रस्तुत दमयंति की मानसिक-कुंठाओं और

सूक्ष्म मनोव्यापारों को भी अभिव्यक्ति करने का प्रयास महिला कलाकारों ने किया है।

‘ श्रीराम स्वर्गारोहण ’ कथकलि में उर्मिला के पात्र को स्त्री पक्षीय दृष्टि से पुनर्व्याख्या चवरा पारुकुट्टी के द्वारा हुई है। चवरा पारुकुट्टी ने यहाँ उर्मिला की प्रतिरोधी चेतना को सशक्त रूप से अभिव्यक्त किया है। वनवास काल में श्रीराम और सीता के साथ लक्ष्मण को भी जाना पड़ता है। उस समय अपने पति के विरह में अकेलेपन का एहसास महसूस करनेवाली ऊर्मिला को मार्मिक ढंग से पारुकुट्टी प्रस्तुत करती है। पट्टाभिषेक के बाद श्रीराम सीता को जब छोड़ने का फैसला लेता है तब सीता को जंगल में परित्यक्त करने का दायित्व लक्ष्मण को दिया जाता है। इस प्रकार के एक दुष्कर्म का पाप लक्षम के ऊपर पड जाने के बारे में सोचकर उर्मिला के अंतर्मन में श्रीराम के प्रति ईर्ष्या पैदा हो जाती है। अपने दरबार में हुई एक घटना के नाम पर श्रीराम जब लक्ष्मण को परित्यक्त करने का फैसला लेता है तब उर्मिला उसके विरुद्ध आवाज़ उठाती है। भक्ति भाव के स्थान पर वहाँ उर्मिला के विद्रोही भाव नज़र आता है। इस प्रकार स्त्री के द्वारा प्रस्तुत स्त्री पात्र में स्त्री का प्रतिरोध दिखाई देता है। पूतनामोक्षम कथकलि की पात्र पूतना का भी स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपायन हुआ है। बालकृष्ण की हत्या करने केलिए कंस द्वारा नियुक्त राक्षसी पूतना को बुरे चरित्र के रूप में प्रस्तुत करता आ रहा था। किन्तु महिला कलाकारियों ने पूतना के अंतर्मन की स्त्रीत्व भावना और मातृत्वभाव से गुजरने का प्रयास किया है। पूतना कृष्ण की हत्या के लिए ज़टर से भरेदि स्तन को जब पिलाने लगती है तब बाल-कृष्ण की लाडली चेष्टाओं को देखकर उसके मन में वात्सल्य का भाव उजाकर हो जाता है। कृष्ण की हत्या केलिए उसका स्त्री मन तैयार नहीं हो जाता है। पर कंस के आदेश का पालन उसका कर्तव्य भी है। इस प्रकार के मनासिल-संघर्ष से गुजरने वाली पूतना की वैकारिक स्थिति को महिला कलाकारों ने मार्मिक ढंग में अभिव्यक्ति किया है।

इसी प्रकार द्रौपदी, उर्वशी, सीता, हिडुम्बी जैसे पात्रों को भी सशक्त रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास महिला कलाकारों ने किया है। चारों पात्र पुरुष की शोषण का शिकार है। स्त्री होने के नाते झेले जाने वाले संघर्ष और उनकी दुर्दशा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने वाली स्त्री कलाकारों ने इन पात्रों के चरित्र के विभिन्न आयामों को अभिव्यक्त करने में सफल हुई दिखाई देती है। अप्रधान समझे जानेवाले स्त्री अनुभवों को विशेष दृष्टि के साथ पात्रों के द्वारा निरूपित करने का प्रयास महिलाओँ के द्वारा अभिनीत कथकलि प्रस्तुतियों में पाया जा सकता है। इन पात्रों के अलावा उषा, चित्रलेखा, सैरन्ध्री, देवयानी, मलायत्ती, भानुमती, क्रान्तिमती, रम्भा आदि पात्रों को भी स्त्रीपक्षीय दृष्टि से प्रधानता के साथ मंच पर प्रस्तुत किया गया दिखाई देता है।

3.कथकलि की जो अभिनय शैली एवं देह-भाषा है, जिसका प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन का कार्य स्त्रियों के लिए असम्भव माने जाते थे, उसको चुनौती देते हुए कथकलि के प्रस्तुतीकरण में स्त्री देह की सृजनात्मक प्रतिष्ठा।

कथकलि के क्षेत्र में कलाकारों और आस्वादकों के बीच यह सार्वजनिक बोध सशक्त रूप से प्रतिष्ठित था कि कथकलि के रूप विधान एवं अभिनय-संरचना का रूपायन पुरुष देह की संभावनाओं को केंद्र में रखकर हुए हैं। अतः स्त्री की देह संरचना का विशेष स्वभाव इस कला रूप के अभिनय शैली के लिए अनुकूल नहीं है। किन्तु वर्त्तमान समय में महिला कथकलि कलाकारों ने इस पुरुष केन्द्रित दृष्टि की इस प्रमाणिकता को तोड़कर अपनी सशक्त उपस्थिति स्थापित करने का कार्य किया है। कथकलि का रूप-संरचना और अभिनय शैली के सम्बन्ध में प्रचलित सभी लिंग-भेदीय पूर्वाग्रहों को स्त्री कलाकारों ने विस्थापित किया तथा कथकलि की अभिनय संरचना को सौन्दर्यात्मकता के साथ अपनी देह के माध्यम से रंगमंच पर प्रयुक्त करने की कोशिश भी की। स्त्री की देह-संरचना की सहज प्रकृति स्वाभाविक रूप से ही लचीला होती है। अतः कथकलि की शैलीकृत प्रदर्शनकारी शैली को भी स्त्री अपनी देह के द्वारा आत्मसात कर सकती है। इसका स्पष्ट प्रमाण है रंजिनी

सुरेश, चवरा पारुक्कुट्टी, गीता वर्मा, आदि कलाकारियों के द्वारा प्रस्तुत कथकलि प्रदर्शन। पुरुष पात्रों को अत्यंत तन्मयता के साथ प्रस्तुत करनेवाली रंजिनी सुरेश ने दर्शकों की प्रतिक्रिया को सूचित करते हुए कहा है कि – " जब मैंने कल्याणसौगंधिकम कथकलि में हनुमान की भूमिका निभायी थी तब दर्शकों की प्रतिक्रिया इस प्रकार थी कि उन्हें मंच पर रंजिनी को देखकर कभी यह, महसूस नहीं हुआ कि प्रदर्शक असल में एक स्त्री है।[1] रंजिनी सुरेश की इस अनुभव से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कथकलि के रूप-विधान की प्रयुक्ति स्त्रियों के लिए बिलकुल असंभव नहीं है। उसी प्रकार महिला कथकलि संघ की कलाकारी राधिका वर्मा अपना एक विशेष अनुभब याद करती हुई कहती है कि – " 30 साल पहले जब महिला कथकलि संघ के प्रदर्शन को देखने केलिए मलयालम के मशहूर कवि ओलप्पमन्ना आये तब प्रदर्शन शुरू होने के पहले परिहास के साथ उन्होंने कहा कि – मैं यह देखना चाहता हूँ कि पुरुषों के द्वारा अत्यंत गंभीरता के साथ अभिनीत पात्रों की भूमिका स्त्रियाँ किस प्रकार निभाएगी। किन्तु पूरा प्रदर्शन देखने के बाद वे चकित हो गए और उनकी मनस्थिति में बदलाव आया। उन्होंने कलाकारियों के पास गये और उन्होंने उनकी खूब प्रशंसा भी की। "[2] इन सभी अनुभवों से यह बात स्पष्ट हो जाती है की कथकलि के सम्बन्ध में प्रचलित लिंगभेदीय पूर्वाग्रहों से युक्त जो धारणाएं हैं, वे बिलकुल असंगत है तथा बिना किसी भेदभाव से कोई भी इस कला का अभ्यास और प्रदर्शन कर सकता है।

और एक बात यह है कि जब पुरुष कलाकार स्त्रियों की भूमिका में प्रस्तुत होता है, तब उनकी देह भाषा में स्त्रीत्व का नैसर्गिकभाव नहीं देखा जा सकता है। बल्कि पुरुष-केन्द्रित दृष्टि से रूपायित एक कल्पित स्त्री-भाव ही अभिव्यक्त हो जाता है। थोडा और स्पष्ट किया जाए तो पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री

---

[1] रंजिनी सुरेश, कथकलियिले स्त्री भावङ्ल्, मंगलम पत्र, नवम्बर 22, 2018.

[2] Anjana George, It's a myth that only men can exel in this art form : kerala all women kathakali troup, Times of India, March 30, 2017.

की देह-भाषा उसकी चाल आदि पुरुषों के द्वारा कंडीशंड [conditioned] या नियंत्रित होते हैं। पुरुष केन्द्रित मानसिकता ने स्त्री के जो आदर्श रूप प्रतिष्ठित किया है, वह स्त्री स्वत्व के असली स्वभाव से बिलकुल भिन्न है। अतः कथकलि के प्रदर्शन में पुरुष-कलाकारों के द्वारा अभिनीत स्त्री पात्र पुरुष सत्तात्मक दृष्टि से रूपायित स्त्री के ' आदर्श रूप ' का द्योतक होता है। कथकलि के प्रदर्शन में जब असली स्त्रियों से स्त्री पात्रों की भूमिका निभायी जाने लगी तब से लेकर इस स्थिति में बदलाव आने लगा। महिला कलाकारों ने कथकलि की प्रचलित स्त्री-देह-भाषा में निहित लिंग वर्चस्व के संकेतों को प्रश्नीकृत किया तथा मंच पर स्त्री स्वत्व को उसकी सहजता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया।

4.कथकलि के अन्य पहलुओं में स्त्रियों की भागीदारी।

जब महिला कथकलि संघ की स्थापना हुई तब अभिनय के अलावा कथकलि से जुड़े अन्य पहलुओं में स्त्रियाँ उपस्थित हो गयीं। उदहारण केलिए कथकलि के वाद्य, संगीत आदि के क्षेत्र में स्त्रियों ने जो सृजनात्मक योगदान दिया है वह बिलकुल सराहनीय कार्य है। कथकलि में प्रयुक्त चेंड़ा, मद्दलम जैसे वाद्यों के क्षेत्र में ख़ास तौर पर पुरुषों का ही एकाधिकार रहा था। इन वाद्यों के अभ्यास और प्रयोग करनेवाली स्त्रियाँ बहुत कम या नहीं के बराबर थीं। इसके सम्बन्ध में यह सार्वजनिक धारण प्रचलित थी कि स्रियों की शारीरिक क्षमता चेंड़ा जैसे असुर वाद्यों के ठीक प्रयोग केलिए बिलकुल असमर्थ है। इस कारण से ही स्त्रियाँ ऐसे वाद्यों को सीखने केलिए तैयार भी नहीं होती थीं। जब महिला कथकलि संघ की स्थापना हुई तब उससे जुडी कलाकारियों ने कथकलि प्रस्तुति केलिए वाद्य प्रयोक्ता के रूप में स्त्रियों को ही चुन लिया। नवरंगम विजयमणि जैसी कलाकारियों की वाद्य प्रयोग की कुशलता को देखकर लोगों के मन को ग्रस्त सार्वजनिक बोध में भी बदलाव आया। असल में इन वाद्यों के प्रयोग केलिए शारीरिक शक्ति से भी ज़्यादा तन्मयता से उसे संभालना या चलाने की क्षमता आवश्यक है। वाद्यों में घोर रूप से ताल लगाकर ऊँची आवाज़ को

उठाने से भी ज़्यादा उस विशेष वाद्यों की सृजनात्मक संभावनाओं को खोजकर मंच पर प्रयोग में लाने का महत्वपूर्ण कार्य महिला कलाकारों ने किया।

कथकलि की प्रस्तुति में वाद्यों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। प्रदर्शक के अभिनय को मंच पर द्योदित करने में वाद्यों की जो भूमिका है, वह अद्वितीय है। मंच पर अभिनेता द्वारा प्रस्तुत पात्र की मानसिक संरचना, मनोविकार और विचारों को उसकी गहराई के साथ सही ढंग से अभिव्यक्त करने में वाद्यों की सहायता अत्यंत आवश्यक तत्व है। स्त्री पत्रों की जो मानसिक अवस्था और मनोव्यापार होते हैं, उसकी सही पहचान एक स्त्री के द्वारा ही संभव होती है। अतः जब एक महिला कलाकार वाद्य का प्रयोग करती है तो निस्संदेह ही स्त्री पात्रों के मनोविचार उसकी स्वाभाविकता और गहराई के साथ मौलिक रूप में मंच पर अभिव्यंजित हो जाते हैं। आशु अभिनय, जिसे कथकलि में मनोधर्म कहते हैं, के सन्दर्भ में वाद्यकलाकार, अभिनेत्री और अभिनेत्री के द्वारा प्रस्तुत पात्र आदि तीन महिलाओं के परस्पर संप्रेषण की एक अद्‌भुत सिंफनी [symphony] का अहसास दर्शकों में होता है, वह अन्यत्र कहीं नहीं देखा जा सकता है। इसके साथ संगीत का प्रयोग भी होने पर स्त्री स्वत्व और संवेदनाओं की नैसर्गिक चेतना की तन्मयता और गहराई के साथ सशक्त रूप में अभिव्यक्ति हो जाती है।

4.4 निष्कर्ष

नंङियारकूत्त, पंडवानी तथा कथकलि इन तीनों रंगमंचीय कलाओं के वर्त्तमान स्वरूप के अध्ययन-विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पारंपरिक रंगमंचीय कलाओं का वर्त्तमान स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपयन, भारत के स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी अनन्यता और गौरव के स्पष्ट प्रमाण हैं। सदियों से पुरुष-सत्ता की जकड में पड़कर शुष्क हो गयी नंङियारकूत्त नामक महिला रंगाभिव्यक्ति शैली तथा सालों से पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था के गहरे प्रभाव के कारण स्त्रियों की उपस्थिति को रोकने वाले पंडवानी, और कथकलि जैसे नाट्य-कलारूप, इन तीनों का जब वर्त्तमान समय

में स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनर्रूपयन हुआ, तब से लेकर यह रंगमंचीय कलारूप स्त्री की अस्मिता, और उसकी संवेदनाओं को सृजनात्मक ढंग से अभिव्यक्त करने का सशक्त एवं प्रभावशाली माध्यम के रूप में अपनी उपस्थिति स्थापित करने लगी। इन पारंपरिक रंगकलाओं के क्षेत्र में कार्यरत महिला कलाकार अपने को स्त्रीवादी तथा कलात्मक प्रस्तुतियों को स्त्रीवादी रंगमंच के रूप में मानने से इनकार करती हैं। इसका यह कारण है कि उन्हें किसी 'वाद' के लेबल से जानना-पहचानना बिलकुल पसंद नहीं है। किन्तु इनके द्वारा रंगमंच के क्षेत्र में किये गये हस्तक्षेप तथा इनके द्वारा रूपायित रंगमंचीय प्रस्तितियाँ आदि में स्त्रीवादी रंगमंच के तत्व अवश्य मौजूद हैं। अतः सैद्धांतिक या अकादमिक अध्ययन में इन प्रस्तुतियों को भी स्त्रीवादी रंगमंच की कोटी में रखकर देखना समीचीन होगा।

अध्याय पाँच

अंतर्वस्तु, रूप एवं दर्शकीय अनुभूति : हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच का विश्लेषण

5.1 विषय-प्रवेश

संकेत विज्ञान के अनुसार मंच पर जो कुछ उपस्थित होता है, वह कोई न कोई संकेत होता है और उन संकेतों से उत्पादित गूढ़ भाषा को दर्शक स्वीकारते है तथा अपनी रुचि के अनुसार वे उन संकेतों को समझते है या उसकी व्याख्या करते हैं । किन्तु मंच पर प्रस्तुत स्त्री नामक संकेत को संकेत विज्ञान ने हमेशा अनदेखा ही किया है । इस तिरस्कृत स्त्री संकेत को ही स्त्रीवादी रंगकर्मियों व सैद्धान्तिकों ने प्रश्नीकृत (प्रोब्लमाटाइस) करने की कोशिश की है । नाट्य रचनाकार, निर्देशक, निर्माता प्रभृति रंगकर्मियों में अधिकाँश लोग पुरुष होने के कारण रंगमंचीय प्रस्तुति को देखने की दृष्टि भी पुरुष के दखल पर निर्भर होता है । इन पुरुषों के द्वारा ही रंग प्रस्तुति का स्वभाव निर्धारित होता है । अतः स्त्री नामक संकेत का रूपायन भी उन्हीं के दृष्टिकोण के द्वारा हो जाता है । दर्शक की दृष्टि भी पुरुष सत्ता द्वारा निर्मित तथाकथित संकल्पनाओं एवं सौन्दर्यबोध से प्रभावित होने के कारण स्त्री नामक संकेत मात्र प्रदर्शनीय वस्तु के सीमित रूप में ही अनावृत होता है । ऐसे संकेत विनिमय की सहयोगी होने वाली स्त्री दर्शक अपने ही वस्तूकरण और विध्वंस का साझेदार हो जाती है । ऐसी एक अवस्था में स्वत्व-बोध को लेकर चलने वाली कोई भी स्त्री दो प्रकार के फैसला ले सकती है –

1. अपने आप को इस विध्वंस का सहयोगी न होने देना ।

2. एक प्रति-रंगमंचीय प्रक्रिया के लिए तैयार हो जाना ।

भारत की विशेषकर हिन्दी और मलयालम की कुछ प्रमुख महिला रंगकर्मियों ने दूसरे फैसले को स्वीकार किया है । इस दूसरे फैसले ने उन रंगकर्मियों को तथाकथित पुरुष-केन्द्रित संरचना वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियों के समानांतर स्त्री-पक्ष को उजागर करने वाली प्रस्तुतियों को रूपायित करने की प्रेरणा दी, जो स्त्रीवादी रंगमंच की परिकल्पना को परिपुष्ट करने वाली है । अतः इस अध्याय के अंतर्गत

हिन्दी तथा मलयालम की ऐसी बहुचर्चित एवं बहुमंचित रंगमंचीय प्रस्तुतियों को अध्ययन के लिए चुना गया है, जो निम्नलिखित विशेषताओं से संपन्न है –

1. महिला रंगकर्मियों के द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रस्तुतियाँ ।

2. स्त्रीवादी चिंतन से प्रभावित एवं स्त्रीत्वपरक अनुभवों को उजागर करने वाली अन्तर्वस्तुओं से संपन्न नाट्य-प्रस्तुतियाँ ।

3. पारंपरिक रंग-भाषा की पुरुष-केंद्रिता को तोड़कर स्त्रीवादी सौन्दर्य चेतना को स्थापित करने वाली रूप-संरचना से युक्त नाट्य-प्रस्तुतियाँ ।

4. तथाकथित दर्शकीय आदतों को बदलकर एक प्रति-दर्शकीय अनुभूति को विकसित करने वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ ।

किसी भी नाट्य-प्रस्तुति के मूलभूत तीन प्रमुख तत्व होते हैं – अंतर्वस्तु, रूप एवं दर्शकीय अनुभूति । इन तीनों तत्वों को आधार बनाकर हिन्दी तथा मलयालम की स्त्रीवादी नाट्य-प्रस्तुतियों का विश्लेषण किया जाएगा ।

5.2 रंग-प्रस्तुति की अंतर्वस्तु एवं स्त्री

किसी भी रंगमंचीय प्रस्तुति के माध्यम से रंगकर्मी (रचनाकार, निर्देशक, अभिनेता, तकनीकी कार्यवाहक) सामूहिक रूप से दर्शकों के साथ जो संवदित करना चाहते हैं, उसी को उस रंगमंचीय प्रस्तुति की अंतर्वस्तु या विषय-वस्तु कहा जा सकता है । कोई भी रंगमंचीय प्रस्तुति तभी सफल होती है, जब उसकी अंतर्वस्तु प्राणवान हो । अर्थात् दर्शक के मन को आंदोलित एवं प्रभावित करने वाली अंतर्वस्तु रंगमंचीय प्रस्तुति का सबसे अनिवार्य तत्व है । डॉ. के.एन. सिंह के शब्दों में “रंगमंच की संपूर्ण कलाएं वस्तु-तत्व से ऊर्जा लेकर सजीव होती है । नाटक की वस्तु एक महान रंग-प्रक्रिया है जिसकी परिणति दर्शकों के समक्ष होती है ।”[1] रंगमंच के सभी

[1] डॉ.के.एन. सिंह- हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच, पृ.63

तत्वों में सर्वाधिक मुख्य भूमिका इसी की होती है । अरस्तू ने अपने 'काव्यशास्त्र' में इसी विषय-वस्तु-तत्व के संबंध में लिखा है कि – "कथानक त्रासदी का प्रमुख अंग है, वह मानो त्रासदी की आत्मा है ।"[1] ठीक इसी तरह की बात भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र' में भी कही गयी है । वहाँ कथानक को वस्तु और इतिवृत्त कहा गया है । "आचार्य भरत एक स्थान पर कहते हैं कि यह नाट्य का शरीर है । दूसरी जगह वे कहते हैं कि वाणी नाट्य का शरीर है । भरत वाणी को भी वस्तु ही मानते हैं, इसी से उसे भी शरीर कहते हैं ।"[2] अरस्तु और भरत दोनों ही कथानक या विषय-वस्तु को महत्त्व देने के लिए इसे नाट्य की आत्मा और शरीर कहते हैं ।

नाट्य रचनाओं में स्त्री की उपस्थिति के बारे में अध्ययन किया जाय तो यह अवश्य देखा जा सकता है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक की नाट्य रचनाओं में स्त्री पात्रों की उपस्थिति तो दर्ज है, लेकिन महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि रंगमंचीय प्रस्तुतियों की विषय-वस्तु में स्त्री की उपस्थिति किस रूप में है और आजकल जब स्वयं स्त्रियाँ नाट्य-प्रदर्शन का रूपायन कर रही हैं तो उनकी उपस्थिति किस रूप में है ।

नारी सिर्फ शरीर है – यह हमारे समाज का निर्मित एवं स्वीकृत दृष्टिकोण था । स्त्री को मनुष्य का दर्जा प्राप्त नहीं था । इसलिए उसकी आत्मा की चिंता तक समाज में नहीं के बराबर थी । फिर उसके गौरव की बात की ज़रुरत ही नहीं पडी । समाज ने इसका अवसर ही नहीं दिया कि वह अपने हक़ बोलने शुरू करें । घर के अन्दर बिना मजदूरी के काम करना, बर्तन मांजना, मालिक का जो जी करता है, उसे संपन्न कर देना, उसे प्रदत्त सौभाग्य थे, संभाव्य अभ्यास भी । घर के बाहर आसपास की सीमित दुनिया में कभी वह काया की सौन्दर्य प्रतियोगिता में कीमत लगा देने

[1] सिद्धनाथ कुमार- नाट्यालोचन के सिद्धांत, पृ.98
[2] वहीं, पृ.98

वाली वस्तु बना दी गयी थी तो कभी पुरुष के बदले में प्रस्तुत कठपुतली । सभी भूमिकाओं में उसका कार्य समान स्वभाव का था – परसुखविधान ।

इतिहास साक्षी है कि हमारे यहाँ के बड़े युद्ध हों या छोटे शोरगुल सभी में स्त्री की छेड़छाड़ की कहानियां भरपूर हैं । कभी अत्याचार को मनोरंजन का मनोहर रूप दिया गया था । कहीं भी सकारात्मक रूप में स्त्री का अंकन नहीं है । या तो वह देवी है, नहीं तो सेविका । या तो वह अछूती आभा है, नहीं तो सार्वजनिक काया । कहीं भी इसका जिक्र नहीं है कि वह भी ऐसा मनुष्य है जो रक्त-मांस से युक्त प्राणी है ।

हमारे रंगमंच का क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं रह गया है । पितृसत्तात्मक मूल्यों एवं विचारों पर आधारित पुरुष-प्रधान रंगमंच के द्वारा प्रस्तुत नाटकों में स्त्री पात्रों की अधीनस्थ स्थिति या अप्रधान स्वरुप ही देखने को मिलते हैं । नाट्य-प्रदर्शनों की अंतर्वस्तु में स्त्री का प्रतिनिधित्व पुरुष-केन्द्रित विचारों से ग्रस्त ही रहा है । भारत के सन्दर्भ में समकालीन रंगमंच से तात्पर्य उन रंगमंचीय क्रिया-कलापों से हैं, जहां से समसामयिक सन्दर्भों से जुड़ने के साथ-साथ रंगमंच में एक नयी चेतना का, रंग-प्रस्तुति में एक नयी दृष्टि का आविर्भाव दिखाई देता है । फिर भी इन समकालीन रंग प्रस्तुतियों में मंच पर प्रदर्शित स्त्री पात्रों का दृश्यांकन समाज में प्रचलित तथाकथित रूढ़िवादी स्त्री संकल्पनाओं एवं सौन्दर्यबोध के आधार पर ही रूपायित होता रहा है । सत्ता की भाषा और संस्कृति चूंकि पुरुष-प्रधान रही है इसके लिए पुरुष के अनुभवों को ही रंगमंच में भी प्रधानता दी गयी है । स्त्री-स्वत्व को उसकी गहराई के साथ उद्घाटित करने वाली विषय-वस्तु रंगमंच पर बहुत कम ही देखने को मिलती थी । ऐसी सत्तात्मक जकड में स्त्री के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण ही होता रहता है ।

5.2.1 स्त्रीवादी रंगमंच की अंतर्वस्तु

सन् 1980 के आसपास से लेकर भारत में अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यमों में स्त्री की स्थिति-उपस्थिति, एवं अस्मिता की चर्चाएँ जब उभरकर सामने आयीं तब उसकी

झलक रंगमंच के क्षेत्र को भी छूने लगी । जो रंगकर्मी स्त्रीवादी विचारों के पक्षधर हैं उन्होंने अपने रंगमंचीय प्रदर्शनों को रूपायित करते समय ऐसी अन्तर्वस्तुओं को बोधपूर्वक चुनने की कोशिश की जो निम्नलिखित विशेषताओं से संपन्न हैं ।

1. स्त्री पक्षीय विचारों तथा राजनीति को उजागर करने वाली
2. स्त्री के स्वत्व को उद्घाटित करने वाली
3. स्त्री के द्वारा झेली जाने वाली विशेष समस्याओं को संबोधित करने वाली
4. स्त्री के निजी अनुभवों को प्रधानता के साथ अभिव्यक्त करने वाली
5. पुरुष वर्चस्व के खिलाफ स्त्री के प्रतिरोध को व्यक्त करने वाली
6. सशक्त स्त्री पात्रों को सुविन्यस्त करने वाली

5.2.2 अंतर्वस्तु : स्त्री जीवन के विभिन्न आयाम

सन् 1970 के आसपास का दशक भारत के लिए एक ऐसा महत्वपूर्ण समय रहा है जबकि कला की अन्य विधाओं के समान रंगमंच के क्षेत्र में भी महिलाओं के जीवन से जुडी विषय-वस्तुओं के हस्तक्षेप दिखाई देते हैं । स्त्री-पक्षीय चिंतन के परिप्रेक्ष्य में रंगमंच की बात की जाए तो ज़रूर कहा जा सकता है कि महिला रंगकर्मियों ने भारतीय रंगमंच के परिदृश्य को ज़्यादा व्यापक, संवेदनशील और मानवीय बनाया है । महिला रंगकर्मी अपनी भावनाएं, ऊर्जा और अग्रगामिता व्यक्त करने के लिए जैसे विषय-प्रसंगों को रंगमंच पर उठाती है, हो सकता है पुरुष रंगकर्मी वैसे न उठायें । इन महिला रंगकर्मियों के द्वारा प्रस्तुत नाट्य-प्रदर्शनों से यह बात स्पष्ट होता है कि इनके प्रदर्शनों की मुख्य विषय-वस्तु स्त्री जीवन से जुडी हुई है । स्त्रीवादी रंगमंच की कार्य-कर्ताओं ने समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी समस्याएँ, उसकी अस्मिता, जेंडर संबंधी मामले, स्त्री जीवन के विविध पक्ष, उनके विशेष निजी अनुभव, प्रतिरोधी चेतना आदि अनेक विषयों को केंद्र में रखते हुए रंगमंचीय प्रदर्शनों को रूपायित किया है ।

5.2.2.1 शारीरिक शोषण

शरीर की अपनी विशेष लज्जा और संकोच स्त्री को बेचैन बनाने वाली बातें हैं। समाज ने स्त्री की बुराई-भलाई के निर्णय के एकक के रूप में उसके शरीर को स्वीकारा है । अपने शरीर की संवेदनाओं तृष्णाओं एवं प्रतिरोध को सूक्ष्म रूप से निजीकृत किये जाने पर उसकी जैविक प्रतिक्रियाएं दुर्बल हो जाती हैं । इससे स्त्री के शरीर का कर्तृत्व नष्ट हो जाता है और वह बेचने-खरीदने और अत्याचार सहने की वस्तु मात्र रह जाती है। स्त्रियों के प्रति अत्याचार एवं अन्याय बढ़ते जाने वाले वर्तमान समय में महिला रंगकर्मियों ने स्त्री के संघर्षरत जीवन की कठिनाइयों के यथार्थ को अपने रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के माध्यम से व्यक्त किया है ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित 'हम मुक्तारा' स्त्री के प्रति हो रहे हिंसा, अन्याय, मानवाधिकार हनन, बलात्कार आदि मुद्दों पर विशेष रूप से बल देने वाला एक नाटक है। वर्ष 2002 में पाकिस्तान के मीरवाला नामक दरिद्र गाँव में मुख्तार नाम की एक महिला का स्थानीय कबीले के आदेशों पर, उसके भाई की कथित रूप से की गई अविवेकपूर्ण हरकत की सज़ा के बदले में बलात्कार किया गया । वहाँ के रस्मोरिवाज़ के अनुसार बलात्कार होने और 'कलंक' लगने के बाद उसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए थी । लेकिन मुख्तार ने इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाई, जिसको मीडिया ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तवज्जो दी। 'हम मुख्तारा' नाटक मुख्तार के जीवन का यथार्थ चित्रण तो नहीं है फिर भी यह उस महिला के प्रति श्रद्धांजलि स्वरूप है और उस की वास्तविक कहानी पर आधारित है। इस नाटक के संबंध में खुद निर्देशक व्यक्त करती है कि – "देश में महिलाओं के साथ हिंसा की घटनाएं, दहेज हत्या, बाल विवाह, सम्मान की रक्षा हेतु ह्त्या, भ्रूण ह्त्या, बलात्कार आदि में वृद्धि हो रही है । मैं उस दर्द, यातना, अपमान और बेबसी को दिखाना चाहती हूँ जिससे पीडिता और उसका परिवार गुज़रता है ।"[1]

---

[1] उषा गांगुली- निर्देशकीय, विवरणिका, भारत रंग महोत्सव, 2014

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय की स्नातक रसिका अगाशो द्वारा निर्देशित 'म्यूज़ियम ऑफ़ स्पीशिस इन डेंजर' स्त्री शरीर के वस्तूकरण और बलात्कार के मुद्दों को उठाने वाला नाटक है । दिल्ली में 2012 में हुए नृशंस बलात्कार की प्रतिक्रया के रूप में लोगों ने अपने सदमे और रोक की अभिव्यक्ति पूरे देश में विभिन्न तरह के विरोधों द्वारा की । इस नाटक को प्रस्तुत करने वाले दल का माध्यम था रंगमंच । इसकी गहन खोजबीन का अंत हुआ उसके अपने मानस और स्व की पड़ताल पर । तब उन्हें यह अहसास हुआ कि मात्र एक मादा होने की बजाय एक स्त्री होना कहीं अधिक मायने रखता है । प्राचीन पौराणिक युग से समकालीन युग तक बदलते हुए समय में नारी के अधिकारों को खोजते-खोजते उन्होंने कई ऐसी चीज़ों को ढूंढ निकाला जो अच्छी थी या बुरी, वांछनीय थी या अवांछनीय, पर उनका अनुगमन आज भी जारी है । यदि एक स्त्री आज भी इन चीज़ों को भोग रही है, अलग-अलग रूपों में ही सही, तो फिर क्यूं न इनका दस्तावेजीकरण हो या संभवतः और बेहत्तर होगा संग्रहालयों में इनका संग्रहण करना । इस नाटक के संबंध में निर्देशक रसिका अगाशो स्पष्ट करती है कि – "आज की वास्तविक सच्चाई को जानते हुए यह बिलकुल गलत न होगा यदि हम विशेष प्रजाति को नारी कहें जो कि खतरे में है । आइए हम इस संग्रहालय (म्यूज़ियम) को इस नाटक 'म्यूज़ियम ऑफ़ स्पीशिस इन डेंजर' में देखते हैं ।"[1] कुछ पौराणिक कथाओं, समसामयिक दुनिया और साहित्यिक रचनाओं में से संकलित नारी एकल संवादों के माध्यम से इस नाटक की प्रस्तुति हुई है ।

इस नाटक में सीता, द्रौपदी, शूर्पनखा, चित्रांगदा जैसे पौराणिक चरित्रों के माध्यम से महिलाओं की हालत की ओर ध्यान खींचने की कोशिश की गयी है । सीता को देवी होने के बाद भी अग्नि परिक्षा देनी पडी थी और इसे सही भी माना जाता है लेकिन 'अग्नि-परिक्षा' जैसी चीज़ें ही रेप को बढ़ावा देती हैं । इस प्रकार के एक विचार को आत्मसात करने वाली यह नाट्य-प्रस्तुति सीता के अलावा द्रौपदी, शूर्पणखा,

[1] रसिका अगाशो- निर्देशकीय, विवरणिका, भारत रंग महोत्सव, 2014

चित्रांगदा जैसी पात्रों के साथ हुए अन्यायों को भी वर्तमान स्थिति के साथ जोड़कर देखती है । अपने नाटक की विषय-वस्तु के संबंध में आगे रसिका जी कहती हैं कि – "ये पहली बार नहीं है कि किसी ने द्रौपदी और सीता के दर्द को लिखने की कोशिश की है और उस वक्त धर्म कहाँ जाता है जब किसी लडकी का रेप हो जाता है ।"[1]

पौराणिक काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में कैसे औरत को हमेशा कटघरे में खडा किया गया, कैसे उसका लगातार शारीरिक शोषण होता रहा, कैसे कभी पत्नी के नाम पर, कभी प्रेमिका के नाम पर, तो कभी बेटी के नाम पर उसका निरंतर शोषण किया गया इसको व्यक्त रूप से प्रस्तावित करने वाली नाट्य-प्रस्तुति है 'म्यूज़ियम ऑफ़ स्पीशिस इन डेंजर' । इसमें महिलाओं के खिलाफ बढ़ती यौन-हिंसा को ऐतिहासिक और वैचारिक धरातल पर विश्लेषित करने की कोशिश की गयी है ।

केरल की मशहूर रंगकर्मी सजिता मठत्तिल के द्वारा रचित एवं निर्देशित नाटक है 'मत्स्यगंधी' । इस नाटक की विषयवस्तु केरल के मछुआरे महिलाओं के जीवन पर केन्द्रित है । मछली की बिक्री करने वाली महिलाओं के ऊपर सार्वजनिक स्थलों में हो रहे शारीरिक अत्याचार एवं अन्यायों को जनता के सम्मुख पेश करने वाला यह नाटक मात्र शरीर के रूप में स्त्री को देखने की वस्तुवादी दृष्टि पर घोर प्रहार करता है । इस नाटक की कथावाचिक मछुआरे जाति की एक स्त्री है, जो मछली बिक्री का काम करती है । मछली बिक्री करने वाली इन स्त्रियों को तथा उनके शरीर की मछली वाली गंध को कामोत्तेजक समझने वाले पुरुष हमेशा उनके शरीर का भोग वस्तु के रूप में उपयोग करना चाहते हैं । अपने पति के मरने के पश्चात इस नाटक की पात्र को यौन शोषण के भयावह अनुभवों से निरंतर गुज़रना पड़ता है । नाटक के अंत में वह अपनी आजीविका चलाने के लिए अपने मछली-गंध वाले शरीर को बेचने के लिए मजबूर हो जाती है ।

---

[1] रसिका अगाशो- जब रेप होता है तो धर्म कहाँ जाता है, mineextlive.jagran.com, 12-08-2014.

मलयालम की मशहूर रंगकर्मी के.वी श्रीजा के द्वारा रचित एवं निर्देशित नाटक है 'ओरोरो कालङ्लिल' । यह नाटक केरल के नंपूतिरी ब्राह्मण समुदाय की एक स्त्री 'कुरियेटत्त तात्री' के जीवन और संघर्ष पर आधारित है । पति की मृत्यु के बाद अन्य पुरुषों के साथ यौन संबंध रखने वाली दोषी का आरोप लगाकर सन् 1905 में तात्री के अपने समुदाय से विस्थापित किये जाने की वास्तविक घटना केरल में काफी विवादास्पद रही है । श्रीजा जी ने स्त्री पक्षीय दृष्टि से इस घटना को पुनर्व्याख्यायित करने की कोशिश की है । इस नाटक के संबंध में श्रीजा जी बताती हैं कि – "यह एक ऐसा नाटक है जिसमें कुरियेटत्त तात्री के इतिहास को वर्तमान समय में यौन-हिंसा एवं अत्याचार की शिकार होने वाली महिलाओं के जीवन के साथ जोड़कर देखने की कोशिश है ।"[1] नाटक की पात्र तात्री नृत्य, कथकलि, वाद्य, संगीत आदि अन्यान्य कलाओं में रुचि रखने वाली एक 'जीनियस' नारी है । अपने दस साल की उम्र में उसे कुरियेटत्त नन्बियात्रान नंपूतिरी नामक एक वृद्ध पुरुष द्वारा यौन शोषण की शिकार होना पड़ता है । यह घटना उसके मन और तन को आघात पहूँचाती है । इसके बाद और भी कई लोगों ने उसके शरीर का शोषण किया । सन् 2012 में दिल्ली में घटित गेङ रेप के विरोध में प्रमुख रंगकर्मी माया राऊ के द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाट्य प्रदर्शन है 'द वाक' । अपनी सुरक्षा के प्रति डर के बिना भारत की स्त्री को शहरों में दिन-रात सडकों पर चलने के मानवाधिकार के संबंध में बोलने वाला यह नाटक कुछ विशेष मांगों को दर्शक के सम्मुख उठाता है । मुझे चलना चाहिए, मुझे बस पर बैठना चाहिए, मुझे पार्क में जाकर लेटना चाहिए, और मुझे अँधेरे से न डरकर जीना चाहिए, ऐसी बातों की मांग करने वाला यह नाटक स्त्री के प्रति हो रहे यौन शोषण, सरकार व पुलिस की असावधानी आदि पर घोर प्रहार करता है । माया राऊ के इस प्रदर्शन की विषय-वस्तु के संबंध में प्रमुख फेमिनिस्ट थिएटर क्रिटिक 'एलाइन आस्टन' ने कहा है कि – "women's right to be able

---

[1] के.वी. श्रीजा- एंटे नाटकयात्रकल्, पेन्नरङ, सं. डॉ.राजलक्ष्मी, डॉ. प्रिया नायर, पृ.226

to walk the streets of india's cities, day or night, without being afraid for their safety is powerfully involked and advocated by Maya Krishna Rao's solo performance 'walk'"[1]. – इस नाट्य-प्रस्तुति में माया जी राज्य के अधिकारी वर्ग और पुलिस से ऐसा अनुरोध करती हुई कहती है कि मुझे एक ऐसा क़ानून दीजिए, जो महिलाओं को पुरुष हिंसा से बचाएगा । मुझे बलात्कारियों के कई दोषी करार दें । मुझे एक ऐसा पुलिस दें, जो अपनी प्रशंसा को अनदेखा करने के बजाय महिलाओं के हिंसा के खातों को लिख देगा । मुझे एक ऐसी दुनिया दें जहाँ महिलाएँ बिना कोई हिचक के साथ 'न' कह सकती, जहाँ 'कन्सेंट' का वास्तविक अर्थ पहचानने वाले होते हैं । माया राऊ इस बात पर ज़ोर देती हैं कि महिलाओं की सुरक्षा राज्य का दायित्व है । पुलिस और अधिकारी वर्ग की उदासीनता पर वे अपनी नाट्य-प्रस्तुति के माध्यम से घोर प्रहार करती है ।

5.2.2.2 मजदूर औरत

हिन्दी और मलयालम की महिला रंगकर्मियों के नाट्य-प्रदर्शनों में अभिव्यक्त कामकाजी औरत की समस्याओं के दो तीन प्रकार देखे जा सकते हैं ।

1. परंपरागत मजदूरी के साथ चलने वाली महिलाओं की विशेष समस्याएँ
2. अपनी आजीविका चलाने के लिए विशेष मज़दूरी को मजबूरी के कारण स्वीकार करने वाली स्त्रियों की समस्याएँ
3. पेशा करने के अधिकार से वंचित स्त्रियों की समस्याएँ, संघर्ष एवं विद्रोह ।

बंगाल की प्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी की कहानी पर आधारित नाटक है 'रुदाली', जिसकी रचना एवं निर्देशन प्रमुख रंगकर्मी उषा गांगुली ने की है । नाटक का केन्द्रीय चरित्र सनीचरी है जिसे शनिवार के दिन पैदा होने के कारण यह नाम मिला है और इसके साथ मिली है कुछ सजाएं समाज मानता है कि वह असगुनी है

---

[1] Walk, Maya Rao, university of Hyderabad, 10 july 2015, review by Elaine Aston, Lancaster university, theactivistclassroom.wordpress.com, 27-07-2015

और इसीलिए उसके परिवार में कोई कष्टताओं से नहीं बच पाया । एक-एक करके सबकी मृत्यु हो जाती है । पति के मरने के बाद सनीचरी को अपनी आजीविका के लिए रुदाली का पारंपरिक काम करना पड़ता है, रुदाली यानी वह स्त्री जो भाड़े पर रोती है, मेहनताना लेकर मातम करती है । समाज की दृष्टि में रुदाली हमेशा नीची होती है । वह हमेशा शोषण की शिकार भी होती रहती है । जातीय छुआछूत की पीड़ा के अलावा पुरुष-वर्चस्व की तरफ से निरंतर इन्हें शारीरिक शोषण एवं यौन अत्याचार को झेलना पड़ता है । एक पात्र के रूप में सनीचरी उस तबके का प्रतिनिधित्व करती है जिसके पास न चुनाव की स्वतन्त्रता होती है, न निश्चिन्त होने के साधन । यहाँ सनीचरी के चरित्र के माध्यम से उषा गांगुली जी ने रुदाली की पारंपरिक पेशा को स्वीकार करने वाली औरतों के जीवन की कठिनाईयां एवं संघर्षों पर प्रकाश डाला है ।

केरल के अभिजात वर्गीय ब्राह्मण समुदाय की स्त्रियों की अवस्था को चित्रित करने वाली नाट्य-प्रस्तुति है 'तोषिल केंद्रत्तिलेक्कू' । यह मलयालम का पहला स्त्री-रचित स्त्री-निर्देशित एवं स्त्री-अभिनीत स्वतंत्र नाट्य-प्रस्तुति है । यह नवजागरणकालीन नाटक है, जिसके प्रदर्शन का समय सन् 1948 माना गया है । सन् 2014 में यह नाटक फिर से खेला गया था । इस नाटक में केरल के नंपूतिरी ब्राह्मण जाति की स्त्रियों की परिवार के भीतर झेली जाने वाली गुलामी का चित्रण तथा उस पर घोर प्रहार किया गया है । यह नाटक नंपूतिरी स्त्रियों को घर की चार दीवारी से मुक्ति तथा मजदूरी करके पैसा कमाने के अधिकार को स्थापित करने का एक सृजनात्मक उद्यम था । स्वतन्त्रता बोध से संपन्न नवीन स्त्री को मान्यता देने के लिए परिवार के साक्षर पुरुषों के भी तैयार न हो जाने की स्थिति इस नाटक में देखी जा सकती है । सन् 2014 में इस नाटक की पुनःप्रस्तुति गीता जोसफ के निर्देशन में हुई । क्योंकि वर्तमान सन्दर्भ में भी इसकी प्रासंगिकता कम नहीं रह गयी है । मलयालम की प्रमुख रंगकर्मी एवं नाट्येतिहासकार सजिता मठत्तिल ने इस नाट्य-प्रस्तुति की विशेषता को व्यक्त करते हुए कहा है कि – "तोषिल केन्द्रत्तिलेक्क्' नाटक

के सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस की विषय-वस्तु वर्तमान स्त्री के मानसिक संघर्षों, पारिवारिक समस्याओं आदि को सशक्त रूप में चित्रित करनेवाली है ।"[1] आर्थिक सबलता स्त्री सशक्तीकरण का सबसे महत्वपूर्ण इरादा है । आर्थिक रूप से सबल न होने के कारण आज-कल भी कई स्त्रियाँ घर-परिवार के भीतर पितृसत्तात्मक दबाव की भयंकर स्थिति से गुज़रती जा रही है । ऐसी एक सामाजिक स्थिति में तोषि़ल केन्द्रत्तिलेक्क् जैसे एक नाटक की प्रस्तुति बिलकुल महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है ।

सजिता मठत्तिल द्वारा निर्देशित 'मत्स्यगंधी' नामक एकल नाट्य-प्रस्तुति की पात्र परंपरया मछली बिक्री का काम करने वाली मछुआरे जाति की महिला है । सार्वजनिक स्थलों में अपना धंधा करते वक्त उसे निरंतर अपमान और भेदभाव सहना पड़ता है । औद्योगीकरण के बढ़ते प्रभाव ने साधारण मछुआरों के पेशे को आघात पहुँचाया है । इस नाटक की पात्र अपने पति की मृत्यु के पश्चात् बहुत सारी कठिनाइयां झेलती हैं । यौन शोषण के भयावह अनुभवों से निरंतर गुजरने वाली उस स्त्री की स्थिति अत्यंत दुस्सह हो जाती है । औद्योगीकरण ने उसके पारंपरिक पेशे को तोड़ दिया । अंत में अपनी आजीविका चलाने के लिए उसे वेश्यावृत्ति स्वीकार करनी पड़ती है । श्रम करने वाले एक विशेष स्त्री समूह के जीवन तथा उनकी पेशेवर समस्याओं और उससे घुटने वाले उनके सामाजिक सम्मान, मानवाधिकार का हनन आदि ज्वलंत मुद्दों को यह नाटक सटीक ढ़ंग से पेश करता है । यही इस नाटक की सबसे बड़ी खूबी भी है ।

नीलम मानसिंह चौधरी द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रस्तुति है 'द लाइसेंस' । इसमें अपने पति की मृत्यु के बाद आजीविका चलाने के लिए पति की नौकरी को मजबूरन स्वीकारनेवाली नियति नामक एक विधवा की करुण कथा है । यह नाटक मंटो की कथा 'लाइसेंस' पर आधारित है । साथ में बर्तोलड ब्रेख्त की कथा 'द जाँव' के कुछ

---

[1] सजिता मठत्तिल- मलयालम नाटक स्त्री चरित्रम्, पृ.

नुक्तों को भी आधाररूप में लिया गया है । इस नाटक में हम देखते हैं कि पति का आकस्मिक निधन नियति के परिवार को भुखमरी के कगार पर ला खडा करता है । नियति के लिए एक ही रास्ता बचता है कि वह किसी भी तरह नौकरी करके अपने परिवार को बचाए । नाटक की नायिका नियति इस असामान्य परिस्थिति में असामान्य तरीके को अपनाती है । वह अपने पति की तरह रोज़ रोटी के लिए तांगा चलाना शुरू करती है । पति का ही दोस्त उसकी लाचारी का फ़ायदा उठाता है । इसके बाद नियति पूरी तरह से टूट जाती है और अंत में एक बार फिर तांगा चलाना शुरू करती है, लेकिन यहाँ भी उसे फिर से वहीं सब झेलना पड़ता है । ट्रैफिक पुलिस वाला उससे लाइसेंस माँगता है । लाइसेंस के न होने पर उसकी मजबूरी का ट्रैफिक पुलिस अधिकारी फ़ायदा उठाता है । अंत में दिखाया गया है कि वह दुराचार-शिकार महिला थक कर खामोश हो जाती है और खुद को दर कर एक बक्से में बंद कर लेती है । मंटो और ब्रेख्त इन दोनों की कथाओं से प्रभावित अपनी नाट्य-प्रस्तुति की विषय-वस्तु के संबंध में निर्देशक नीलम मानसिंह जी व्यक्त करती हैं कि – “वास्तव में इन दोनों कथाओं की नायिकाएँ अपनी बदली हुई पहचान के साथ बराबरी की माँग ज़ोरदार तरीके से रखती हुई ज़िंदगी को एक नयी दिशा देनी नज़र आती हैं । यहीं इन दोनों कथाओं का मूल है । जिस तरह हज़ारों वर्षों से आदमी बना हुआ है, वहीं इन दोनों कथाओं की नायिकाएं अपने काम के द्वारा औरत से आदमी बन जाती हैं । दोनों कथाएँ स्त्रीवादी कथा के रूप में ली जा सकती हैं । इन दोनों कथाओं के अंतस् में स्त्री एवं पुरुष दोनों के गुण आपस में मिले-जुले हैं । गरीबी से जूझती रूढ़ीवादी समाज में जहाँ से औरतें जिन्दगी की लड़ाई अपने बूते पर लडती हैं, वहीं उनका दुःखदाई अंत होता है । सामाजिक बंधन उनकी हिम्मत, उनके इरादों को तोड़ तहस-नहस कर देते हैं ।“[1] नौकरी करके अपनी आजीविका को चलाने के लिए तैयार होने वाली एक स्त्री को पुरुष-वर्चस्व का शोषण किस तरह झेलना पड़ता है

[1] नीलम मानसिंह चौधरी- निर्देशकीय, विवरणिका, भारत रंग महोत्सव, 2014.

इसको मार्मिक ढ़ंग से अभिव्यक्त करने वाली यह नाट्य-प्रस्तुति अपने में अनूठी है ।

5.2.2.3 दलित स्त्री

भारतीय समाज का हिस्सा होते हुए भी दलित विशेषकर दलित स्त्रियाँ आज भी समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत हैं । भारत के सन्दर्भ में दलित स्त्री तिहरे शोषण का अभिशाप झेलती है । सवर्ण और संपन्न समाज का अत्याचार वह दलित और गरीब होने के नाते झेलती है लेकिन स्त्री होने के नाते वह सवर्ण और संपन्न समाज के साथ-साथ अपने ही समाज के दलित पुरुष की हिंसा और बलात्कार का शिकार भी होती है । समाज की नज़र में भी और स्वयं नारियों की नज़र में भी दलित नारी मनुष्य नहीं एक वस्तु मानी जाती है जो सबके उपयोग के लिए बनी है । सवर्ण स्त्री-दृष्टि में दलित-स्त्री शामिल नहीं है । यह एक तथ्य-आधारित सत्य है ।पुरुष दलित हो या सवर्ण, स्त्री के प्रति दोनों का रवैया एक ही जैसा है, चूंकि दोनों का समाज पुरुष-केन्द्रित है ।

हिन्दी तथा मलयालम की रंगकर्मियों की कतिपय प्रस्तुतियों में ऐसी अंतर्वस्तु देखी जा सकती है, जो दलित-स्त्री की अवस्था को, उसकी समस्याओं को चित्रित करती है ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित 'रुदाली' नाटक उत्तर औपनिवेशिक समय के भारत में दलित स्त्रियों के जीवन-संघर्षों एवं अनुभवों का एक सोशियोलोजिकल डिस्कोर्स है । नाटक की केन्द्रीय चरित्र सनीचरी, एक दलित स्त्री है । जातीय शोषण के अलावा सनीचरी को अपने स्त्रीत्व के ऊपर निरंतर अपमान भी सहना पड़ता है । सनीचरी की कथा के माध्यम से उषा जी ने एक दलित स्त्री के अतिजीवन के संघर्षों तथा असंख्य अन्य स्त्रियों के अनुभवों का भी चित्रण किया है, जो उच्च वर्ग के शोषण की निरंतर शिकार बनी रहती है । इस नाटक में उषा जी ने दलित स्त्रियों के दो रूपों का प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया है ।

1. संघर्ष करने वाली
2. विनम्र और असंतुष्ट

नाटक की मुख्य पात्र सनीचरी और बिखनी दोनों अपने अतिजीवन के लिए संघर्ष करने वाली हैं। केंद्र पात्र सनीचरी स्वयं की जिम्मेदारी दूसरों के कंधे पर रखे बिना खुद संभालने वाली आत्मनिर्भर स्त्री है। पति और बेटे की मृत्यु के बाद वह अपनी आजीविका चलाने के लिए रुदाली का काम अपनाती है। बिखनी भी उसका साथ देती है, जो सनीचरी की आत्म मित्र है। पूरे नाटक के ज़रिए उषा जी दो बातों को दर्शकों के सम्मुख स्पष्ट करती है।

1. स्त्री की सुरक्षा पुरुष के हाथों में नहीं है।
2. स्त्री चाहे इस सामाजिक व्यवस्था में गरीब हो या अमीर हमेशा यौन संबंध के लिए उपयुक्त केवल वस्तु होती है।[1]

दलित स्त्रियाँ तिहरे शोषण का शिकार होती है। जातीय शोषण, लिंगपरक शोषण एवं आर्थिक शोषण। यहाँ सनीचरी का पात्र स्त्रियों को आत्मनिर्भर बन जाने का सन्देश देती है। आत्मनिर्भर न होने के कारण ही नाटक की अन्य पात्र प्रतिभा और सहेलियों का जीवन बर्बाद हो जाता है। अपनी विनम्र स्वभाव के कारण उन्हें पुरुष वर्चस्व का निरंतर शोषण सहना पड़ता है।

मलयालम की प्रमुख युवा रंगकर्मी सुरभी द्वारा रचित, निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाट्य प्रस्तुति है 'घोरराक्षसम' जो दलित स्त्री के जीवन की दुर्दशा को व्यक्त करने वाली है। श्रीमद् भागवत् पुराण से चुनी हुई विषयवस्तु के अनुसार 'पूतना' राजा केस द्वारा बालक श्रीकृष्ण की हत्या के लिए नियुक्त राक्षसी थी। वह सुन्दरी रूप धारण करके वृन्दावन में जाकर स्तनपान के बहाने कृष्ण को मारना चाहती है। लेकिन कृष्ण उससे बचता है तथा उसका वध कर देता है। 'घोरराक्षसम' नाटक

[1] Valiar Rahman, Genocritical Ethnography of the Dalit women : Usha Gangulie's Rudali, impressions AB. Annual Refered e-journal of English studies, 6 oct, 2015, www.researchgate.net, p-2

में सुरभी जी ने पूतना को एक साधारण दलित स्त्री के रूप में चित्रित किया है, जो जंगल में बसने वाली है तथा प्रकृति के साथ अटूट रूप में संबंधित है । उसके छोटे बच्चे को छीनकर ले जाते हैं, कंस के सैनिक । बच्चे को वापस लौटाने के लिए वे तैयार नहीं थे । उन्होंने यह शर्त निकाला कि बच्चे को वापस मिलना है तो पूतना को कृष्ण का वध करना पडेगा । अपने बच्चे को वापस पाने के लिए मजबूरन उसे कृष्ण-वध के लिए तैयार होना पड़ता है और अंत में कृष्ण द्वारा उसकी ह्त्या भी हो जाती है । यहाँ पुरुष-वर्ग के लिए दलित स्त्री मात्र खिलौने की तरह है । अपने सुख और इच्छाओं की पूर्ति के लिए कंस ने पूतना के जीवन को कुर्बान किया । इस नाटक में दलित स्त्री की स्त्रीत्व चेतना और मातृत्व भाव का चित्रण किया गया है । 'घोरराक्षसम' नाटक में मैंने पूतना नामक मिथकीय पात्र को ऐसा एक रूप दिया है, जिसमें मातृत्व का सहज भाव समाविष्ट है, तथा वह प्रकृति से मिल-जुलकर जीने वाली एक दलित । आदिवासी है । एक दलित स्त्री किस प्रकार सत्ता का, पुरुष-वर्चस्व की वस्तु मात्र रह जाती है, इसका चित्रण इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत 'चंडालिका' का नाट्य रूपांतरण एवं निर्देशन उषा गांगुली ने बड़ी सफलतापूर्वक किया है । हमारे समाज में सदियों से चल रही छुआछूत, ऊँच-नीच का भेदभाव जातपात की प्रथा आदि आज भी कायम है । भले ही समय के अनुसार उसका रूप और तरीका बदल गया हो । इस पर प्रहार करने वाला नाटक 'चंडालिका' संवादों के माध्यम से नई व्यवस्था, नई सोच लाने को प्रेरित करता है । उषा गांगुली ने इस नाटक में इन समस्याओं को दो दलित स्त्री पात्रों के जीवन संघर्षों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है । नाटक की प्रमुख दो पात्र हैं प्रकृति और उसकी माँ । माँ जादू टोना करने वाली एक दलित स्त्री है । समाज के अन्य लोग इन स्त्रियों को अछूत मानकर अपने पास आने भी नहीं देते । दही चूड़ी या अन्य वस्तु बेचने वाली महिलाएँ भी उससे दूर रहते हैं । नाटक में दिखाया गया है कि एक बस्ती में सभी पानी के लिए परेशान हैं, नदी, नाले सब सूख गए हैं, ऐसे में चंडाल परिवार की महिला माया को सभी तंत्र-मन्त्र के सहारे बारिश कराने के लिए कहते हैं । जब

समाज के लोगों को उससे काम लेना होता है तब सब प्यार से बातें करते हैं, लेकिन अन्य समय में कदम-कदम पर उन्हें भेदभाव झेलना पड़ता है । दलित स्त्रियों के मानसिक संघर्ष, तिरस्कृत सामाजिक स्थिति, दुस्सह जीवन आदि को बड़े मार्मिक ढ़ंग से उषा गांगुली ने प्रस्तुत किया है । इस नाट्य-प्रस्तुति के संबंध में केरल के प्रमुख दलित विचारक डॉ. अजय शेखर ने बताया है कि "यह नाटक अस्पृश्यता के खिलाफ उठाया गया एक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक बयान है । जाति और आभिजात वर्ग का वर्चस्व पूरे देश में तथा क्षेत्रीय भाषाई संस्कृति के सभी स्थानों में समकालीन और प्रासंगिक समस्या है । उषा गांगुली ने इस नाटक में प्रकृति और उसकी माँ जैसी दो स्त्रियों की जीवन अवस्थाओं को महत्त्व देते हुए प्रस्तुत किया है ।"[1] रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना दलित पर केन्द्रित है तो उषा गांगुली की प्रस्तुति में दलित-स्त्री की विशेष अवस्था भी प्रधानता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास है ।

5.2.2.4 मध्यवर्गीय स्त्री

मध्यवर्गीय स्त्रियों की समस्याओं एवं जीवन का सही आकलन हिन्दी तथा मलयालम की स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियों में मिलता है । मध्य एवं उच्च वर्गीय महिलाओं के जीवन संघर्ष, मानसिक व्यापार, तनाव, अंतर्द्वंद्व आदि को सूचित करने वाली नाट्यप्रस्तुतियाँ हैं रमणजीत कौर द्वारा निर्देशित हिन्दी नाटक 'बावरे मन के सपने' तथा सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित मलयालम नाटक 'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल' । बावरे मन के सपने नाटक में मध्यवर्गीय महिलाओं के बाहर से शांत दिखने वाले जीवन में चल रहे उथल-पुथल को वाणी देने की कोशिश है । निर्देशक रमणजीत कौर के शब्दों में "निजी तौर पर मुझे महसूस होता है कि माध्यम एवं उच्च माध्यम वर्गीय महिलाएँ सबसे ज़्यादा उपेक्षित है, इस मायने में कि उनकी कोई आवाज़ नहीं है । कितनी दफा हम स्वयं से संबंधित मुद्दों पर बात करते हैं ? हम

---

[1] From classic to contemporary theatre : Usha Ganguli's Chandalika, Dr. Ajay sekhar, ajay sekhar.net/2012/02/16/

सिर्फ एक मौन के साथ मुस्कुरा भर देते हैं । मौन, झूठे मान-मर्यादा, दर (दर-नकारे जाने का, सामाजिक बहिष्कार का, नुक्ता चीनी का), रंगमंच वो माध्यम है, जहां हम अपनी बात कह पाते हैं ।"[1] इस नाटक का केन्द्रीय पात्र अम्मा है जो अपनी बेटी से मिलने के लिए लंडन जाने की तैयारी कर रही हैं । अपने घर में वह कई स्त्रियों को आमंत्रित करती है और वे एक दूसरे से बातचीत करती है तथा अपने जीवन के कटु यथार्थ को एक दुसरे से साझा करता है । मध्यवर्गीय स्त्रियों में अपनी इच्छाओं के साथ जीने का आग्रह सशक्त रूप में विद्यमान है । किन्तु उन्हें पुरुष-प्रधान पारिवारिक व्यवस्था के शोषण को झेलना भी पड़ता है । 'बावरे मन के सपने' नाट्य-प्रस्तुति चित्रित मध्यवर्गीय स्त्री-जीवन के संबंध में व्यक्त करते हुए श्री. अमितेश कहते हैं कि – "मध्यवर्गीय घर की ये महिलाएँ अपने छोटे-छोटे सपनों को अक्सर दबाती आयी है । अपनी इच्छा को स्थगित किया है, लेकिन फिर भी इनसे अतिरिक्त माँग की गयी है । इनका दमन हुआ है और इनमें इसी तरह जीने की आदत डाली गई है, इनमें से कुछ ऐसी भी है जो इस आदत से तंग आकर इस घेरे को तोड़ देना चाहती है ।"[2]

सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित 'आनुङल इल्लात्ता पेन्नुङल' नाटक की पात्र फरोक्ख मध्यवर्गीय स्त्रियों के जीवन की विडंबनाओं एवं संघर्षों की सही शिकार है । ईरानी स्त्रियों के जीवन का सही आकलन प्रस्तुत करने वाले इस नाटक में फरोक्ख एक ऐसी पात्र है जो अपने पारिवारिक जीवन से बिलकुल असंतृप्त है । 'मेनोपॉस' होने के बाद अपने पति के द्वारा तिरस्कृत फरोक्ख घर-परिवार छोड़कर चली जाती है और अपने आप को स्वतंत्र घोषित करती है । विभिन्न परिस्थितियों से जीवन अनुभवों से गुजरने वाली चार स्त्रियों से उसकी मुलाक़ात होती है और वे एक दुसरे से अपने अनुभव साझा करता है और बाकी जीवन एक साथ बिताने का फैसला

---

[1] रमणजीत कौर- निर्देशकीय, बावरे मन के सपने, भारत रंग महोत्सव 2014, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

[2] अमितेश- मौन वेदनाओं की सिसकी : मारंगम ; चौदहवाँ दिन, रंगविमर्श, www.rangvimarsh.com

लेती है । इस नाटक में यह बात स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है कि मध्यवर्गीय स्त्री अपने घर की चार-दीवारी के भीतर कितना अस्वतंत्र पीड़ित और कुंठित है ।

5.2.2.5 विधवा जीवन

अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित एकल नाटक है 'जीवित या मृत' जो भारतीय विधवा जीवन का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने वाला है । रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना को स्त्रीपक्षीय दृष्टि से दृश्यांकित करने वाली यह नाट्य-प्रस्तुति उन विधवाओं की कहानी है जो अपने अस्तित्व को लेकर भ्रम में रहती हैं । उन्हें पता ही नहीं होता कि वे जीवित हैं या मृत । इस एकल प्रस्तुति को मंच पर अभिनीत करने वाली मशहूर कलाकार सीमा बिश्वास ने 'जीवित या मृत' की विषयवस्तु की प्रासंगिकता को सूचित करते हुए कहा है कि – "किसी भी हिन्दू त्यौहार जैसे कि दुर्गा पूजा या सरस्वती पूजा के समय हम देवी की मूर्ति बनाते हैं, उसे सजाते हैं और उसकी पूजा धूम-धाम से करते हैं, लेकिन त्यौहार ख़त्म होने ही हम उन्हीं मूर्तियों को सड़क के किनारे पडी हुई या पानी में डूबी हुई पाते हैं जैसे कि वह कोई कचरा हो । भारत में विधवाओं की स्थिति भी इसी के जैसी है । इसी स्थिति को हम अपने नाटक के ज़रिए जीवंत करना चाहते थे ।"[1] सीमा बिश्वास जी के शब्दों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत में विधवाएँ अपने पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में बिलकुल उपेक्षित एवं दमित हैं । वे मानवाधिकारों से वंचित होती है । सामंती व्यवस्था के पुरुष-केन्द्रित विचारों ने ही विधवाओं के जीवन को इतना कठिन बताया है । सामंती व्यवस्था के ह्रास के बाद भी भारते में सामंती मानसिकता और संस्कृति मौजूद रही है । इस कारण से ही आज भी विधवा स्त्रियों को असम्मान, वेदना और तिरस्कार को किसी न किसी रूप में झेलना पड़ता है ।

---

[1] सुभाषिणी, थिएटर ओलंपिक : मीट द डायरेक्टर सत्र में कलाकार सीमा बिश्वास ने लिया हिस्सा, हिन्दुस्तान समाचार, 6 मार्च, www.m.dailyhunt.in

विधवा जीवन की त्रासदी का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करने वाला मलयालम नाटक है 'ओरोरो कालङ्ङलिल', जिसकी रचना और निर्देशन के.वी. श्रीजा ने किया है । केरल के ब्राह्मण परिवारों में विधवाओं के दुस्साह जीवन को प्रस्तुत करने वाला यह नाटक कुरियेटत्त तात्री नामक एक नंपूतिरी ब्राह्मण स्त्री के इतिहास पर आधारित है जो अपने छोटी उम्र में एक वृद्ध ब्राह्मण के साथ शादी-शुदा हो जाती है तथा पति की मृत्यु के बाद उसे विधवा जीवन बिताना पड़ता है । एक विधवा के लिए हिन्दू ब्राह्मण मान्यताओं में ख़ास नियम बनाए गए हैं । उसे दुनिया भर के रंगों को त्याग कर सफ़ेद कपड़ा पहनना होता है, वह किसी भी प्रकार के आभूषण पहन नहीं कर सकती और श्रृंगार नहीं कर सकती । अपनी इच्छानुसार वह कोई भी कार्य नहीं कर सकती । उन्हें आख़िरी श्वास तक भगवान को याद करके अपना बचा हुआ जीवन व्यतीत करने को मजबूर किया गया है । कुरियेटत्त तात्री का जीवन भी इससे भिन्न नहीं है । अपना सारा यौवन काल उसे विधवा होकर जीना पड़ता है ।

5.2.2.6 स्त्री कलाकार

मशहूर रंगकर्मी अमाल अल्लाना द्वारा निर्देशित नाटक है 'नटी विनोदिनी' । यह नाटक बंगाल की प्रसिद्ध अभिनेत्री बिनोदिनी दासी की आत्मकथा पर आधारित है । यह नाट्य-प्रस्तुति एक महिला के सार्वजनिक जीवन में उतरने और स्वतन्त्रता और पहचान को प्राप्त करने का साहसिक प्रयास को चित्रित का सृजनात्मक उद्यम है । जन्म से वेश्या बिनोदिनी, कोलकत्ता के रंगमंच पर अभिनय करने वाली पहली महिला थी, जिसने सफलता की ऊंचाइयां चढीं । मंच पर जीवन के समानांतर उसके जीवन के अनुभव कैसे उसके अभिनय में सहायक बनें, समाज के उच्च वर्गों द्वारा कैसा उसका शोषण किया गया, यह नाट्य प्रस्तुति इसी की कहानी कहती है । यहाँ नटी बिनोदिनी की अलग-अलग अवस्थाओं को, उसके अंतर्द्वंद्व के उभारने की कोशिश की गयी है । बिनोदिनी दासी के संघर्षपूर्ण जीवन के विविध पक्षों को उद्‌घाटित करने वाला यह नाटक इस बात को अभिव्यक्त करता है कि कला के क्षेत्र

में अपने निजी स्वत्व को स्थापित करने के लिए स्त्रियों को कोई संघर्षों से गुज़रना पड़ता है । आरंभिक बंगला रंगमंच को लोकप्रिय, कलात्मक और गंभीर अभिव्यक्ति-माध्यम बनाने में बिनोदिनी ने अपनी निर्णायक भूमिका अदा की थी । इस प्रस्तुति में बिनोदिनी के जीवन के अंतर्द्वंद्व, प्रेम, लोभ और त्याग, प्रतिष्ठा और अपमान, प्रसिद्धि औरअकेलेपन तथा त्रासदी के चित्र मौजूद है ।

श्री ज्योति व्यास ने नटी बिनोदिनी नाटक के बारे में ऐसा कहा है कि "Here's a women who persues her life with sheer dedication, an artiste who reaches the peak and who experiences the loneliness and total isolation from the socially prescribed life of woman. The play narrates this sensitive woman's exploitation and her rise to fame in short, the production offers a kaleidoscopic view of Binodini's life."[1] ज्योति ब्यास जी का कथन बिलकुल सांगत है । एक महिला कलाकार के कलात्मक एवं सामाजिक जीवन के संघर्षों के विभिन्न आयामों को एक साथ प्रस्तुत करनेवाला यह नाट्य-प्रदर्शन अपने में काफी महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक दिखता है । नटी बिनोदिनी के समय में भारतीय रंगमंच सचमुच पुरुषों के एकाधिकार से भरपूर था । पुरुष-प्रधान क्षेत्र में अपना कदम रखनेवाली पहली महिला का जीवन, अनुभव और संघर्ष का चित्रण अवश्य ही ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व रखने वाला है । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि 'नटी बिनोदिनी' बिनोदिनी दासी के जीवन के तेन पहलुओं को – कलात्मक जीवन, सामाजिक जीवन और वैयक्तिक जीवन को बड़ी मार्मिक ढ़ंग से अभिव्यक्त करने का सफल प्रयास हे ।

प्रमुख रंगकर्मी त्रिपुरारी शर्मा के द्वारा रचित एवं निर्देशित मशहूर नाटक है 'रूप-अरूप' । यह नाटक उस पुरुष कलाकार जो नाटक-नौटंकियों में स्त्री-पात्र के भूमिका निभाता है, तथा पारंपरिक रूप से नृत्त को अपनाई हुई गयी एक बेडिं जाति

[1] Jyoti Vyas- NATI BINODINI, www.mumbaitheatreguide.com

की स्त्री, जो रंगमंच में अभिनेत्री के रूप में प्रवेश करती है, के बीच के संवाद और संघर्ष पर केन्द्रित है । सालों पहले मंच पर पुरुष का ही एकाधिकार रहा था । स्त्री पात्रों की भूमिका भी पुरुष कलाकार ही निभाया करते थे । इन पुरुष कलाकारों के द्वारा मंच पर अभिव्यक्त स्त्री के रूप असल में यथार्थ और कल्पित थे । स्त्री रूप की मंच पर संकल्पना पुरुष मानसिकता के अनुसार होती थी । जब स्त्रियाँ अभिनेत्री के रूप में रंगमंच के क्षेत्र में प्रवेश करने लगीं तब स्त्री पात्रों की भूमिका निभानेवाले पुरुष कलाकार मंच से तिरस्कृत होने लगे । लेकिन पुरुषों के द्वारा बनाए गए स्त्री की स्टीरियोटिपिकल (steriotypical) छवि, जो यथार्थ स्त्री की चेतना और संवेदनाओं से बिलकुल बहुत कुछ दूर है, वह मंच पर कायम रही । इस कल्पित स्त्री छवि को उसके चाल-चलन को, वाचिक शैली को मंच पर कायम रखने के लिए यहाँ असली स्त्री कलाकार भी मजबूर हो जाती हैं । इस कारण से असली स्त्री कलाकार के अंतर्मन हमेशा संघर्षरत होता रहता है । इस नाटक में स्त्रियों की भूमिका निभानेवाला पात्र चन्द्ररूप (जो रूपमती नाम से जाना जाता है) तथा रम्भा नामक असली स्त्री अभिनेत्री के बीच के संघर्षों तथा संवादों को बड़ी गहनता एवं तन्मयता के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

5.2.2.7 सशक्त स्त्री पात्र

महिला निर्देशकों ने अपनी रंग-प्रस्तुतियों में ऐसी स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है जो स्वतंत्र खोज रखती हैं, स्त्री-पुरुष रिश्तों के उलझे पृष्ठों को खोलने का प्रयास करती है तथा स्त्री वर्ग पर थोपे गए, सदियों से चले आ रही विभिन्न प्रकार के मिथप्रकट करने वाली हैं । रुदाली नाटक की केन्द्रीय चरित्र सनीचरी एक दलित स्त्री है जिसे शनिवार के दिन पैदा होने के कारण सनीचरी नाम मिला है और इसके साथ मिली हैं कुछ सजाएं समाज मानता है कि वह असगुनी है जिस के कारण उसके परिवार में कों व नैतिक-धार्मिक मान्यताओं की असामयिकता, व्यर्थता व जड़ता का पर्दाफ़ाश करती है ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रस्तुतियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें स्वाधीनता के बोध को उजागर करने वाली सशक्त स्त्री पात्रों को चित्रित किया गया है । वे स्त्री पात्र विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक पहलुओं पर अपनी मान्यताओं को प्रकट करने वाली हैं । रुदाली नाटक की केन्द्रीय चरित्र सनीचरी एक दलित स्त्री है जिसे शनिवार के दिन पैदा होने के कारण सनीचरी नाम मिला है और इसके साथ मिली हैं कुछ सजाएं समाज मानता है कि वह असगुनी है जिस के कारण उसके परिवार में कोई नहीं बाख पाया । एक-एक करके सब काल की भेंट चढ़ गए । लेकिन सनीचरी इतना सशक्त चरित्र वाली है कि उसकी आँखें कभी कम नहीं हुईं । वह कभी नहीं रोई, जब बेटा मर गया तब भी नहीं । लेकिन अंततः उसे रुदाली का काम करना पड़ता है, रुदाली यानी वह स्त्री जो भादी पर रोटी है, मेहनताना लेकर मातम करती है । एक पात्र के रूप में सनीचरी उस तबके का प्रतिनिधित्व करती है जिसके पास न चुनाव की स्वतन्त्रता होती है, न निश्चिन्त होने के साधन, लेकिन वह कभी टूटती नहीं, उसकी जिजीविषा बराबर उसका साथ देती रहती है । वह अपना सहारा खुद बन जाती है, जो जाहिर है कि उसका न्तिम विकल्प होता है ।

नीलम मानसिंह द्वारा निर्देशित ‘द लाइसेंस’ नामक नाटी-प्रस्तुति का केंद्र पात्र है नियति जो अपने पति की मृत्यु के बाद जीवन यापन के लिए पति का पेशा ही अपनाती है । वह अपनी स्त्री-पहचान को छुपाए बिना तांगा चलाने का पेशा अपनाती है ।तांगा चलाना और चौकीदारी करना ऐसा पेशा है जिसे स्त्रियों के लिए मुफीद नहीं माना जाता । नियति एक गरीब, लाचार और हर मोड़ में पुरुषों की गंदी मानसिकता की शिकार होने वाली एक स्त्री है । इन सभी बुरी हालातों में भी वह अपनी आजीविका चलाने के लिए संघर्ष करने वाली एक सशक्त स्त्री के रूप में दर्शनों के सामने आती है ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित 'हम मुक्तारा' नाट्य-प्रस्तुति में पाकिस्तान के मीरवाला नाम के एक दरिद्र गाँव में रखे वाली मुक्तार बाई नामक स्त्री केन्द्रीय पात्र के रूप में उभरती है । मुख्तार भाई स्थानीय कबीले के आदेशों पर, उसके भाई की कथित रूप से की गयी अविवेकपूर्ण हरकत के बदले में बलात्कार का शिकार हो जाती है । वहाँ के रस्मोरिवाज़ के अनुसार बलात्कार होने और 'कलंक' लगाने के बाद उसे आत्महत्या कर लेनी चाहिए थी । लेकिन मुख्तार ने इस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठायी जिसको मीडिया ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तवज्जो दी । इस प्रकार मुख्तार को एक साहसी एवं सशक्त स्त्री के रूप में प्रदर्शित किया गया है ।

सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रस्तुति 'प्रवाचाका' में प्रमुख पात्र कसान्त्रा को सशक्त स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है । ग्रीक पुराण से लिया हुआ पात्र है कसान्त्रा जिसको स्त्रीपक्षीय दृष्टि से पुनार्रूपायित करने की कोशिश की गयी है नाटक में । पुरुष-सत्ता के प्रति निरंतर विद्रोह करने वाली कसान्त्रा दमित स्त्री के अंतर्गत छिपाई हुई स्ट्रेन शक्ति का उसके प्रतिरोधी स्वर का प्रतीक है । सी.वी. सुधा के द्वारा ही निर्देशित एक और प्रस्तुति है 'आनुन्गल इल्लात्ता पेंनुन्गल' । इस प्रस्तुति के केंद्र में पांच स्त्री पात्र हैं, जो जीवन में पितृसत्ता के दबाव से अपने को मुक्त कर स्वतंत्र जीवन बिताने वाली सशक्त स्त्री पात्र के रूप में प्रस्तुत है । फ़रोख, मकदोत्, मुनिस, फाइज़ा और सरीन इस नाटक की सशक्त स्त्री पात्र हैं जो अपने सामाजिक और पारिवारिक जीवन में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करती है । फिर भी वे कभी पराजित नहीं हो जाती । फ़रोख अपने मध्यवर्गीय जीवन की विडंबनाओं को झेलनेवाली है तो मुनिस और फाइज़ा पुरुष निर्मित नैतिकता के बंधन में तड़पती हुई दिखाई देती है । सरीन एक वेश्या स्त्री है जो पुरुषों की वासना एवं कामुकता का निरन्त शिकार होती है । मकडोत्र एक ऐसी पात्र है जो अपनी कर्मवेदी में पुरुषों के द्वारा शोषण का शिकार होती रहती है । विभिन्न जीवन संबंधों से गुज़रनेवाली ये पाँच स्त्रियाँ अपने-अपने जीवन सन्दर्भों में अलग-अलग रूप से पुरुष-वर्चस्व का साहस के साथ सामना करती है तथा पुरुष-वर्चस्व के रूढ़ियों को तोड़कर स्वतंत्र जीवन

बिताने के लिए तैयार हो जाती है । ये अत्यंत सशक्त स्त्री पात्र है, जिनको गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

एक sur सशक्त स्त्री पात्र है रजिता मधु के द्वारा निर्देशित एकल प्रस्तुति 'अबूबक्करिंटे उम्मा परयुन्नु' की पात्र उम्मा (अम्मा) । उम्मा सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधित्व करने वाली है । कम्यूनिस्ट पार्टी से जुडनेवाले इनका पुत्र शहीद हो जाता है । अपने पुत्र का नष्ट होने पर भी वह माँ कभी टूट नहीं जाती । और अपने पुत्र के वियोग को भी वह धैर्य के साथ झेलती है । इस तरह एक सशक्त पात्र के रूप में 'उम्मा' सफल हो जाती है ।

5.2.2.8 स्त्रीत्वपरक अनुभव

स्त्री के लिए अपने विशेष अनुभव एवं अनुभूतियाँ अवश्य रहती है । इन अनुभवों की अभिव्यक्ति हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच की प्रमुख प्रवृत्तियों में से एक रही है । स्त्री-प्रधान अनुभवों में सबसे महत्वपूर्ण होता है प्रसव का अनुभव । अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित 'नव्लाखा', के.वी. श्रीजा द्वारा निर्देशित 'लेबर रूम' तथा सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित 'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल' इन तीनों नाट्य-प्रस्तुतियों में प्रसव के अनुभवों को अभिव्यक्त किये जाने वाले प्रसंग मौजूद हैं । इन तीनों नाट्य-प्रस्तुतियों में प्रसव के अलग-अलग विशेष अवस्थाओं की ओर दर्शकों का ध्यान खींचने का प्रयास किया गया दिखाई देता है । अनुराधा कपूर के 'नव्लाखा' में माँ और बेटी दोनों के प्रसवों का दृश्य अंकित है । इसमें प्रसव नामक उस विशेष शारीरिक अवस्था को तथा उसके दर्द को दर्शकों तक संप्रेषित करने का प्रयास किया गया है । के.वी. श्रीजा की लेबर रूम नाट्य-प्रस्तुति में प्रसव के समय लेबर रूम में स्त्रियों के द्वारा झेले जाने वाली समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है । इसमें शारीरिक दर्द से ज़्यादा लेबर रूम में स्त्रियों के द्वारा झेले जाने वाली मानसिक संघर्षों एवं पीडाओं को व्यक्त किया गया है । सी.वी. सुधी के 'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल' नाट्य-प्रस्तुति में भी प्रसव का दृश्य मौजूद है । इसमें प्रसव की

शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा को नहीं बल्कि प्रजनन की सौन्दर्यात्मकता एवं सृजनात्मकता के पक्ष को, स्त्रैणता की विशेष चेतना को, स्त्रीत्वपरक अनुभवों की नैसर्गिकता को तथा मातृत्व की महत्ता को काल्पनिक तथा अयथार्थवादी (surrealistic) रूप में अभिव्यक्त किया गया है । इस प्रकार स्त्रीवादी रंगमंच में प्रसव नामक उस विशेष स्त्री-अनुभव के विभिन्न आयामों को स्त्री दृष्टि के साथ प्रस्तुत किया गया है ।

रमणजीत कौर द्वारा निर्देशित 'बावरे मन के सपने' नाट्य-प्रस्तुति मध्यवर्गीय महिलाओं के जीवनानुभवों से गुज़रती है । नाटक के केंद्र में, अम्मा का अपनी बेटी अमिता से मिलने, लंडन जाने का फैसला है । वह अपने घर में कई औरतों को आमंत्रित करती है और बातचीत के क्रम में वे अपने अनुभव एक दुसरे से साझा करती हैं, जिसमें यौन हिंसा, घरेलू उत्पीडन, यौन विकृति एवं अपने प्रिय को खोने की तकलीफ आदि पर बात होती है । नाटक में उद्घाटित होता है कि कैसे औरतें अपने मुखौटों के पीछे गहन पीड़ा व आक्रोश छिपाए रखती है । नाटक के क्रम में औरतें एक-दुसरे से हौसला लेती-देती हैं, अपनी व्यथा कहकर मन हल्का कर लेती हैं ।

5.2.2.9 मिथकीय स्त्री-चरित्र

मिथकीय कथा-संदर्भ तथा उनमें उपस्थित स्त्री चरित्रों के माध्यम से वर्तमान स्त्रियों की समस्याओं एवं उनकी हालत की ओर ध्यान खींचने का प्रयास कुछ स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियों की अपनी विशेषता रही है । रसिका अगाशे द्वारा निर्देशित 'म्यूज़ियम ऑफ़ स्पीशिस इन डेंजर' नामक नाट्य-प्रदर्शन में इस बात को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है कि पौराणिक काल से लेकर आज तक भारतीय समाज में कैसे स्त्री को हमेशा कटघरे में खडा किया गया है, कैसे उसका लगातार शोषण होता रहा है, कभी पत्नी के नाम पर, कभी प्रेमिका के नाम पर तो कभी बेटी के नाम पर । इस नाट्य-प्रस्तुति में समकालीन स्त्री की त्रासदी को सूचित

करने के लिए सीता, द्रौपदी, शूर्पणखा, चित्रागादा आदि मिथकीय स्त्री-पात्रों के कथा सन्दर्भों को आधार बनाया गया है। सीता का देवी होने के बाद भी अग्नि परिक्षा देनी पडी थी और इसे सही भी माना जाता है है कि 'अग्नि परिक्षा' जैसी चीक्सों ही रेप को बढ़ावा देती है। नाटक में शूर्पनखा पूछती है, "मेरी गलती बस इतनी थी कि मैंने राम से अपने प्यार का इज़हार कर दिया था ? इसके लिए मुझे कुरूप बना देना इन्साफ है ?"[1] शूर्पणखा सवाल उठाती है, "अगर शादीशुदा आदमी से प्यार करना गलत है तो राम के पिता की तीन पत्नियां क्यों थीं ?"[2] उसी प्रकार द्रौपदी का पात्र मंच पर बोलती है कि – "कुंती ने हमारा सेक्स टाईमटेबल बनाया ताकि किसी भाई के कम या ज़्यादा दिन न मिलें।"[3]

कृष्ण कथाओं में वर्णित राक्षसी पूतना नामक पात्र लोगों के मन में क्रूरता, हीनता एवं समस्त बुराईयों का आधाररूप चरित्र है। काले रंग की त्वचा वाली स्त्रियों को दुशकुन एवं दमन का अधिकारी मानी जाने वाली पारंपरिक रूढ़िवादी संकल्पना हमारे देश में सालों से प्रबल रूप में प्रतिष्ठित है। पूतना के चरित्र की व्याख्या भी इसी संकल्पना के आधार पर हुई है। किन्तु इस काले रंग वाली राक्षसी स्त्री के मन और मानसिक व्यापारों के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं है।[4] मलयालम की प्रमुख रंगकर्मी सुरभी के द्वारा रचित, निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाट्य-प्रस्तुति 'घोरराक्षसं' में मानवता के परिप्रेक्ष्य में पूतना के मिथक को प्यारयायित करने की कोशिश की गयी है।[5] इस नाटक की पात्र पूतना एक माँ है, जो जंगल में बसने वाली एक साधारण दलित स्त्री है। अपने छोटे बच्चे की देख-रेख करती हुई पूतना को कंस के सैनिक पकड़ लेते हैं तथा छोटे कृष्ण के वध करने के लिए उसे नियुक्त करते हैं। किन्तु पूतना इससे इनकार करती है क्योंकि वह एक छोटे बच्चे की हत्या करने

---

[1] रसिका आगाशी- जब रेप होता है तो धर्म कहाँ जाता है ? mineextlive.jagaran.com, 12-08-2014

[2] वहीं

[3] वहीं

[4] कालिमयारन्नवलुम अम्मयान्, देशाभिमानी , dec 4, 2016, www.deshabhomani.com

[5] कालिमयारन्नवलुम अम्मयान्, देशाभिमानी , dec 4, 2016, www.deshabhomani.com

के लिए तैयार नहीं थी । कंस के द्वारा पूतना के बच्चे को चीन्नी के कारण, पूतना कृष्ण की ह्त्या करने के लिए मजबूर हो जाती है । इस नाटक में पूतना के, एक माँ के मन के संघर्षों को चित्रित किया गया है । इसके साथ-साथ यह भी दिखाया गया है कि दलित स्त्रियाँ पुरुष-सत्ता के खिलौने मात्र हैं । यहाँ इतना के मिथक को समालीन स्त्री की समस्याओं एवं जीवन संघर्षों को अभिव्यक्त करने के माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है ।

5.3 रंग-प्रस्तुति का रूप एवं स्त्री

किसी भी रंगमंचीय प्रस्तुति का सबसे अनिवार्य तत्व होता है उसका रूप । रूप एक ऐसा तत्व होता है जिसके मूल में कलात्मकता और सौन्दर्यशास्त्रीय चेतना रहता है । मशहूर नुक्कड़ नाट्य-शिल्पी श्री सफ़दर हाशमी ने रंगमंचीय प्रस्तुति के रूप के संबंध में स्पष्ट रूप से कहा है कि "असल में कथ्य और रूप दोनों एक दूसरे से इस तरह पैबस्त हैं जैसे आग और उसकी गर्मी या बिजली और उसकी रफ़्तार । एक दुसरे के बिना उसकी कोई हैसियत नहीं है । जिस तरह ख्यालात सिर्फ अलफ़ाज़ की शक्ल में ही नुभायन होते हैं, उसी तरह कथ्य नाट्यरूप की शक्ल में ही पैदा होता है । जिस नाटककार, निर्देशक या अभिनेता की ज़बान जितनी समृद्ध, जितनी विस्तृत, जितनी ज़रखेज होती है, उसके ख्यालात उतनी ही गहराई, उतने ही विस्तार से पैदा होते हैं । शब्दों के ऐसे खाने या सांचे बनाकर नहीं रख जा सकते, जिनमें ख्यालात को उंदेल दिया जाए । शैलियाँ कोई लबादे नहीं है, जिन्हें अलमारी में से निकालकर कथावस्तु को पहना-उठाकर सजा-संवार दिया जाए ।"[1]रूप और अंतर्वस्तु का संबंध अभिन्न और अन्योंयातीत है । रंगमंचीय प्रस्तुति के रूप और अंतर्वस्तु दोनों ही सामाजिक विकास के साथ परिवर्तित होते रहते हैं । तथाकथित रंगमंच के सिद्धांत, शिल्प एवं सौन्दर्य तत्वों की निर्मिति पुरुष-प्रधान दृष्टि से होने के कारण सदियों से उसमें स्त्री की सृजनात्मक शक्ति तथा उसके संवेदनाओं की नैसर्गिक अभिव्यक्ति

---

[1] प्रज्ञा- नुक्कड़ नाटक : रचना और प्रस्तुति, पृ.76

का सदा अभाव ही रहा है । अतः स्त्रीवादी रंगमंच से जुडी रंगकर्मियों ने स्त्रीवादी रंगमंच जैसी महत्वपूर्ण संकल्पना को साकार करने के लिए तथाकथित रंगमंच की रूप-संरचना में निहित पुरुष-केन्द्रिता को तोड़कर स्त्री की नैसर्गिक सृजनात्मक शक्ति को विभिन्न आयामों के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । और साथ ही एक प्रति-सौंदर्यबोध को स्थापित करने का प्रयास भी किया है ।

रंगमंचीय प्रस्तुति के रूप-विधान के अंतर्गत प्रदर्शन-स्थल, प्रदर्शनकारी देह, मंच-व्यवस्था, रंग सामग्री, वेश-भूषा, प्रकाश योजना, ध्वनि विन्यास आदि तत्व आ जाता है । इन तत्वों के स्तर पर महिला रंगकर्मियों ने कई नवीन प्रयोग करते हुए पूरे रंगमंच की रूप-संरचना को एक नवीन परिप्रेक्ष्य के साथ प्रयुक्त करने का प्रयास किया है ।

5.3.1 प्रदर्शन स्थल

रंगमंचीय प्रस्तुति का सबसे प्रमुख तत्व होता है उस प्रस्तुति का प्रदर्शन स्थल । प्रदर्शन स्थल वह स्थल होता है जहां रंगमंचीय प्रदर्शन एवं दर्शाकीय आस्वादन दोनों घटित होता है । वरिष्ठ रंग आलोचक श्री नेमीचन्द्र जैन के शब्दों में "प्रदर्शन के लिए किसी न किसी प्रकार का, खुला या बंद स्थायी अथवा अस्थायी, छोटा या बड़ा, रंगभवन और उसमें एक मंच अथवा रंगस्थल सर्वथा आवश्यक है, जिसके बिना नाटक को जीवंत रूप नहीं दिया जा सकता । और यह महत्वपूर्ण बात है कि संसार में कहीं भी नाटक और रंगमंच की चर्चा रंगशाला या रंगस्थल की चर्चा के बिना अधूरी ही रहती है, चाहे वह भरत का नाट्यशास्त्र हो अथवा प्राचीन यूनानी नाटक का विवेचन । वास्तव में नाटक और अभिनय-प्रदर्शन का स्वरुप बहुत हद तक रंगशाला के स्वरूप से निर्धारित होता है । सभी तरह के नाटक सभी तरह की रंगशालाओं और उसके मंचों पर नहीं प्रस्तुत किये जा सकते और नाटक लेखन से लगाकर अभिनय और मंचीकरण की बेशुमार रूढ़ियाँ, पद्धतियाँ, कार्यविधियां रंगशाला और मंच के अनुसार बंटी है और उनमें परिवर्तनों के साथ बदलती जाती

है ।"[1] प्रदर्शन स्थल किसी भी रंगमंचीय कार्य का केंद्रस्थल होता है और अंततः उस कार्य के स्वरूप, स्तर और सार्थकता को निर्धारित करनेवाला होता है ।

हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच के सन्दर्भ में देखा जाय तो पाया जा सकता है कि रंगकर्मियों ने अपनी सृजनात्मकता सौन्दर्यबोध एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन-स्थलों को रंगमंचीय प्रस्तुति में प्रयुक्त किया है । इन प्रदर्शन-स्थलों की विशेषताओं का विश्लेषण दो रूपों में किया जा सकता है ।

1. प्रदर्शन-स्थल की दृश्यमान संरचना (visible structure) पर केन्द्रित ।
2. प्रदर्शन स्थल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ पर केन्द्रित ।

प्रदर्शन-स्थल की दृश्यमान संरचना को केंद्र में रखकर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महिला रंगकर्मियों ने अपनी रंगमंचीय प्रस्तुतियों के लिए ऐसे प्रदर्शन-स्थलों को स्वीकार किया है, जो प्रदर्शन-स्थलों के पारंपरिक स्वभाव से किस्से न किसी प्रकार भिन्न हैं तथा पुरुष वर्चस्व को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में चुनौती देने वाले हैं ।

इसमें सर्वप्रमुख है पुरुष केन्द्रित तथाकथित प्रदर्शन-स्थल को एक अलग ढ़ंग में प्रयुक्त करने का प्रयास । अर्थात पुरुष दृष्टि के द्वारा निर्मित मंच व्यवस्था या संरचना के भीतर खड़े होकर पुरुष-वर्चस्व के विरोध में संघर्ष करना अथवा स्त्रीवाद की राजनीति को उठाना । स्त्रीवादी रंगकार्यों से जुडी अधिकाँश महिला रंगकर्मियों ने प्रदर्शन स्थल के लिए प्रोसीनियम स्टेज को अपनाया है, जो आधुनिक काल से लेकर भारत में सर्वव्याप्त है । सालों से पुरुष द्वारा संचालित एवं नियंत्रित इस विशेष प्रदर्शन-स्थल की संरचना के भीतर स्त्री का प्रतिनिधित्व पुरुष के अनुबंध के रूप में ही प्रतिष्ठित है । प्रदर्शन-स्थल का यह सालों से प्रचलित स्वरूप दर्शकों की दृष्टि-

[1] नेमीचन्द्र जैन- रंगदर्शन, पृ.73

आदतों में गहरे रूप में छपा हुआ है । प्रदर्शन स्थल के इस प्रचलित संरचना में निहित स्त्री-विरोधी तत्वों को प्रोब्लामाटाईस करने वाली तथा सत्ता के फलक पर खड़े होकर, उसी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष में लगने वाली स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ प्रतिरोध की एक अलग शैली या प्रक्रिया को सामने रखती हैं । उदाहरण के लिए सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित नाटक 'प्रवाचाका' । प्रवाचाका के प्रदर्शन के लिए निर्देशक ने प्रोसीनियम स्टेज को अपनाया है । लेकिन उस प्रोसीनियम स्टेज के एक ओर, फलक के ऊपर लटकने वाला और एक छोटा फलक दिखाई देता है, जो सत्ता को सूचित करने वाला है । जो पुरुष पात्र सत्ता के प्रतीक हैं, वे लटकने वाले फलक के ऊपर खड़े होकर अभिनय करते हैं ।

तथाकथित पुरुष-केन्द्रित प्रोसीनियम स्टेज में महिलाओं की गतियाँ बिलकुल नियंत्रित एवं परिसीमित दिखाई देती हैं । लेकिन महिला रंगकर्मियों में अधिकाँश ने प्रोसीनियम के इस परिसीमित एवं नियंत्रित स्थिति को बदलने की कोशिश की है । उषा गांगुली द्वारा निर्देशित 'हम मुख्तारा', 'रुदाली', रमनजीत कौर द्वारा निर्देशित 'बावरे मन के सपने', सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित 'आनुन्गल इल्लात्ता पेंनुन्गल', 'प्रवाचाका' आदि नाट्य-प्रस्तुतियों में स्त्री पात्रों की संख्या अधिक है तथा ये स्त्री पात्र पूरे स्टेज का इस्तेमाल स्वतंत्र रूप से करती हुई दिखाई देती है ।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के अन्तरगत स्त्री कितना असुरक्षित है इस याथार्थ्य को दिखाने के लिए प्रोसीनियम स्टेज का प्रयोग सक्षम रहा है । प्रोसीनियम स्थल की संरचना निश्चित और पूर्वनिर्धारित होती है । स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियों में स्थल की यह संरचना एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को सूचित करने वाला प्रतीत होता है जो पुरुष-सत्ता के द्वारा नियंत्रित एवं संचालित है । अतः इस प्रोसीनियम स्थल के भीतर बैठने पर दर्शकों को भी यह अनुभव मिलता है कि हम जिस सामाजिक व्यवस्था में जी रहे हैं उस व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों की स्थिति कितनी दुस्साह और संघर्षमय है ।

महिला रंगकर्मियों ने एक विशिष्ट प्रदर्शन-स्थल वाली संकल्पना को ही समस्याग्रस्त किया है । उदाहरण के लिए माया राऊ द्वारा निर्देशित नाट्य प्रस्तुति 'द बाँक' । इसकी यही विशेषता है कि इस नाटक के लिए कोई विशेष प्रदर्शन स्थल की व्यवस्था नहीं है । मंच पर या लोगों के बीच किसी भी जगह इस नाटक का प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है । इस नाटक का मंचन समाज में स्त्रियों के खिलाफ हो रहे बलात्कार एवं अन्याय के प्रतिरोध के रूप में हुआ है । स्त्रियों के प्रति होने वाले अत्याचार हर जगह समान है । किसी भी स्पेस में स्त्री सुरक्षित नहीं है । इस विषय को तीव्रता के साथ अपने 'बॉडी मूवमेंटस' के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाली माया राऊ की प्रस्तुति ' द बाँक' में प्रदर्शन स्थल की तथाकथित संकल्पना को ही तोड़ दिया गया है ।

के. श्रीलता द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाट्य प्रदर्शन है 'इको ऑफ द डे' । इस नाट्य प्रदर्शन में स्त्री और प्रकृति के बीच के गहरे संबंध को अभिव्यक्त करने के लिए श्रीलताजी ने असली पेड़, पौधे, मिट्टी, ट्री हट, सीढ़ी आदि से भरे एक स्थल को प्रदर्शन के लिए अपनाया है । इससे स्त्री और प्रकृति दोनों की एकात्मकता को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में सक्षम रही है ।

अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित नाट्य प्रस्तुति है 'विरासत', जो एक सामन्ती परिवार की कथा को उजागर करने वाली है । इस प्रस्तुति के लिए एक ऐसे प्रदर्शन स्थल को चुना गया है, जिसकी चारों तरफ दर्शक बैठ सकते हैं । प्रत्येक स्थल पर बैठकर प्रदर्शन देखने से दर्शकीय दृष्टि भी बदलती है तथा पूरे प्रदर्शन का परिप्रेक्ष्य भी बदलता है । इस नाट्य प्रस्तुति का सेट एक पारंपरिक घर के समान बनाया गया है । एक तरफ बैठने पर कथा रसोई घर के परिप्रेक्ष्य से देख सकते हैं तो दूसरी तरफ से देखने पर बरामदे के परिप्रेक्ष्य में । दर्शक अपनी इच्छानुसार कहीं भी बैठकर प्रदर्शन देख सकते हैं । मध्यांतर के समय में दर्शकों से स्थान बदलकर बैठने

का निर्देश भी दिया जाता है । इस नाट्य प्रस्तुति में अनुराधा जी ने प्रदर्शन स्थल के द्विआयामिक स्वभाव को ही बदला है ।

प्रदर्शन स्थल के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ के आधार पर विचार करने से यह बात स्पष्ट होती है कि कुछ महिला रंगकर्मियों ने अपने कुछ विशेष नाटकों के प्रदर्शन के लिए ऐसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले प्रदर्शन-स्थलों को चुना है जो नाटक की विषय-वस्तु को अभिव्यक्त करने के लिए बिल्कुल उपयुक्त है । सजिता मठत्तिल द्वारा निर्देशित 'मत्स्यगंधी' नाटक में मछुआरे स्त्रियों की समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया है । अतः निर्देशक ने इस प्रदर्शन को असली मछुआरे समूह के रहने वाले प्रदेश में भी जाकर प्रस्तुत किया था । इसी प्रकार 'हम मुक्तारा नाटक को निर्देशक उषा गांगुली ने गांव की साधारण स्त्रियों के बीच प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

5.3.2 प्रदर्शनकारी देह

स्त्रीवादी रंगमंच के संदर्भ में देखा जाय तो रंगकर्मियों ने प्रमुखतः दो रूपों में देह को मंच पर उपस्थित किया है ।

1. स्त्री-देह से संबंधित तथाकथित एवं रूढ़िवादी संकल्पनाओं को तोड़ने वाले प्रदर्शनकारी देहों को प्रस्तुत किया है ।

2. स्त्री-देह को उसकी समग्रता के साथ मंच पर सृजनात्मक रूप से विन्यसित किया है ।

स्त्री-देह से संबंधित परंपरागत धारणाओं पर घोर प्रहार करने वाला एकल नाट्य-प्रदर्शन है मल्लिका तनेजा द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत 'थोड़ा ध्यान से' । यह एक स्त्रीवादी व्यंग्य-प्रधान प्रस्तुति है । यह नाट्य-प्रदर्शन ऐसे लोगों की मानसिकता पर घोर प्रहार करने वाला है जो स्त्रियों के वस्त्र तथा बलात्कार को एक साथ जोड़कर देखते हैं । 2015 में दिल्ली में घटित गैंगरेप के प्रति अपना प्रतिरोध प्रकट करने वाले इस नाट्य-प्रदर्शन में अभिनेत्री मंच पर अपनी नग्न देह के साथ प्रकट होती है । नंगे

देह का, विशेषकर स्त्री देह को मंच पर उपस्थित करना प्रचलित तथाकथित नैतिक दृष्टि के अनुसार काफी बुरी बात होती है । इस नाट्य-प्रस्तुति में मल्लिका तनेजा ने पुरुष-निर्मित नैतिक बोध पर घोर प्रहार करते हुए नंगे देह को मंच पर संप्रेषण का माध्यम बनाया है । यहाँ मल्लिका जी ने स्त्री-देह के ऊपर होने वाले अत्याचारों, बलात्कार एवं यौन शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिए अपने नंगे देह को मंच पर प्रस्तुत किया है । यहाँ नंगा स्त्री-देह पुरुष की यौनिक भावनाओं को उत्तेजित करने वाला साधन के रूप में नहीं प्रयुक्त होता है बल्कि प्रतिरोध के सशक्त माध्यम में प्रदर्शित होता है ।

त्रिपुरारी शर्मा द्वारा निर्देशित 'रूप-अरूप' नाटक स्त्री-देह से संबंधित तथाकथित सौन्दर्य संकल्पनाओं को समस्याग्रस्त करने वाला है । रंगमंच पर स्त्री पात्रों की भूमिका निभाने वाले पुरुष कलाकारों ने स्त्री देह से संबंधित रूढ़िवादी मान्यताओं को पुष्ट करते हुए ऐसे स्टीरियोटाईप को मंच पर सदियों से प्रतिष्ठित किया है, जो पुरुष-प्रधान दृष्टि से परिपुष्ट है । इस प्रकार पुरुष के द्वारा प्रदर्शित स्त्री का स्वत्व मात्र एक कल्पित स्वत्व होता है जो असली स्त्री से काफी दूर भी है । इस नाट्य-प्रदर्शन में मंच पर प्रतिनिधित्व करती है तो उस पुरुष-देह के साथ उपस्थित स्त्री-देह पुरुष-सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करने वाली असली स्त्री देह का प्रतिनिधित्व करती है । इस नाट्य-प्रस्तुति में त्रिपुरारी शर्मा ने मंच पर एक पुरुष-देह और एक स्त्री-देह को प्रस्तुत किया है । इन दोनों प्रदर्शनकारी देहों के मूवमेंट्स को प्रधानता के साथ प्रदर्शित किया है । पुरुष पात्र का देह का मूवमेंट्स पुरुष-भावना से रूपायित स्त्री-देह की भाषा को सूचित करते हैं और स्त्री पात्र का देह असली स्त्री की नैसर्गिक और सहज देह भाषा का सूचक । सदियों से रंगमंच पर पुरुष-निर्मित स्त्री-देह-भाषा का ही वर्चस्व रहा था । उस वर्चस्व पर घोर प्रहार करने वाली यह नाट्य-प्रस्तुति मंच पर स्त्री-देह को अपनी स्वाभाविकता के साथ स्थापित करने का सृजनात्मक उद्यम है ।

अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित नाटक 'नवलाखा' में रंगमंच पर स्त्री देह की चाल, गति आदि से संबंधित शास्त्रीय एवं पुरुष-केन्द्रित दृष्टि को चुनौती दी गयी है । इस नाटक के एक दृश्य में, गर्भवती माँ और बेटी दोनों दर्शकों की ओर पैर फैलाए प्रसव का दृश्य अभिनीत करती हैं । दर्शकों की ओर पीठ करके अभिनीत करना, रंगपत्ती का इस्तेमाल करना आदि प्रचलित रीतियों के बदले में अपना अलग विकल्प उपस्थित करता है । परंपरागत धारणाओं पर प्रहार करने के कारण यह नाट्य-प्रस्तुति दर्शकों के बीच काफी विवादास्पद भी रही । इन विवादों के संबंध में वन्दना वशिष्ठ ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा है कि – "इन सभी टिप्पणियों के पीछे नाट्यशास्त्र की शास्त्रीय व्याख्या काम कर रही थी और इसी शास्त्रीयता की टकराहट इन महिला निर्देशकों के रंग-चिंतन, उनके सौन्दर्यबोध और उनके विचार की राजनीति से हो रही थी ।"[1]

मलयालम की प्रमिख रंगकर्मी रजिता मधु द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाट्य प्रस्तुति है 'अबूबक्करिंटे उम्मा परयुन्नु' । इस प्रदर्शन के आरंभ में अभिनेत्री खुद दर्शकों के सामने पूरी देह को छिपाने वाले कोट जैसा एक वस्त्र पहनकर उपस्थित हो जाती है तथा नाटक का परिचय देती है । उसके बाद मंच पर ही खादी रहकर वह छिपाने वाले वस्त्र को उतारती है और पात्र की वेश-भूषा को स्वीकार करती है । यहाँ पात्र एक परंपरागत मुसलमान औरत है । जब अभिनेत्री अपने कोट को निकाल देती है तब मंच पर केरल की मुसलमान स्त्रियों की परंपरागत वेश-भूषा दिखाई देती है । अपने सिर पर दुप्पट्टा बाँधने से अभिनेत्री पूर्ण रूप से पात्र बन जाती है अथवा अभिनेत्री की पूरी देह का पात्र के स्थायी भाव में 'ट्रान्स्फोर्मेशन' हो जाता है । इस प्रकार का एक 'डीप त्रान्स्फोमेशन' असल में अभिनेत्री एवं पात्र इन दोनों स्त्रियों की विशेष अवस्थाओं के तादात्म्य को सूचित करने वाला है । दुसरे शब्दों में एक स्त्री दूसरी स्त्री की सामाजिक स्थिति तथा मानसिक अवस्थाओं को कितनी

[1] वन्दना वशिष्ठ- आधुनिक हिन्दी रंगमंच और नारी-विमर्श, रंग प्रसंग

सहानुभूति के साथ समझने की कोशिश करती है, इसका जीवंत चित्र अभिनेत्री की देह-भाषा में निहित है ।

फिसिकल थिएटर की संभावनाओं को प्रयोग में लाने वाली माया राऊ द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाटक है 'खोल दो' । इस नाट्य-प्रदर्शन में अभिनेत्री अपनी पूरी देह की चाल-गतियों के माध्यम से दर्शकों तक अपने विचार संप्रेषित करती है । माया राऊ ने इस नाट्य-प्रदर्शन में बाडी मूवमेंट्स के लिए शैलीकृत या स्ताइलाइस्द देह-भाषा को अपनाया है । केरल के परंपरागत कला-रूप कथकली की देह-भाषा का प्रभाव इसमें स्पष्ट दिखाई देता है । पुरुष-प्रधान तथाकथित रंगमंच में प्रदर्शनकारी काया के रूप में उपस्थित स्त्री-देहों का मूवमेंट्स नियंत्रित एवं सीमित होता है । स्त्रियाँ अपनी इच्छा के अनुसार मंच पर देह को प्रयुक्त नहीं कर पाती थी । स्त्री-देह के संबंध में प्रचलित इन सभी धारणाओं को खण्डित करने वाली नाट्य-प्रस्तुति है खोल दो, जिसमें देह को समग्र रूप से संप्रेषण का माध्यम बनाया गया । इसमें पूरी नाट्य-प्रस्तुति की विषय-वस्तु को दर्शकों तक संप्रेषित करने के लिए वाचिक अभिनय को नहीं लिया गया है बल्कि देह के मूवमेंट्स को माध्यम बनाया गया है ।

सी.वी.सुधी द्वारा निर्देशित मलयालम नाटक 'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल' में भी प्रसव का दृश्य मौजूद है । नाटक में ज़रीन नामक पात्र एक लिली फूल को जन्म देने वाला दृश्य है । अभिनेत्री ने क्लासिकी नृत्यों की शैलीकृत अभिनय रीति के द्वारा प्रसव की अभिव्यक्ति मंच पर प्रस्तुत की । अनुराधा कपूर की प्रस्तुति में प्रसव नामक उस विशेष शारीरिक प्रक्रिया के भौतिक अनुभव को दर्शकों के सामने अभिव्यक्त करने की कोशिश की गयी है, किन्तु सी.वी. सुधी की प्रस्तुति में प्रजनन की सौन्दर्यात्मक एवं आत्मीय स्तर को स्त्रैणता की विशेषताओं के रूप में उजागर करने की कोशिश की गयी है । इसलिए ही यहाँ प्रसव का चित्रण संगीत और नृत्यों के सहारे बड़े लावण्य के साथ किया गया है ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित-अभिनीत नाटक है 'अंतर्यात्रा' । एकल शैली में रूपायित इस नाट्य-प्रस्तुति में अभिनेत्री अपनी देह के माध्यम से अनेकानेक स्त्रियों की अंतर्यात्रा को अभिव्यक्त करती है । इस नाटक में प्रयुक्त देह-भाषा भी एक स्त्री का दूसरी स्त्री के प्रति जो सहानुभूति की चेतना होती है उसका द्योतन करने वाली है । यहाँ एक पात्र अनेक पात्रों के स्थायी भावों में प्रकट होती है तथा अनेक स्त्रियों के अन्तःसंघर्षों को अभिवयक्त करती है । अभिनेत्री की देह इतनी लचीली है कि वह क्षण-क्षण में कई पात्रों के स्थायी भावों में अपनी देह को ट्रांसफॉर्म करती है ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित 'रुदाली' नाटक में दो स्त्रियों के बीच की सहानुभूति एवं आत्म-संबंध की गहराई को सूचित करने वाली देह-भाषा को देख सकते हैं । सनीचरी और बिकनी नामक दो स्त्री पात्रों की भूमिका निभाने वाली अभिनेत्रियों ने साधारण से साधारण ग्रामीण महिलाओं की स्वाभाविक देह-भाषा को सहज रूप से उपयुक्त किया है । दोनों के बीच के ऑय कांटेक्ट, गिव एंड टेक, बॉडी मूवमेंट्स ये सभी तत्व उन पात्रों के बीच के गहरे रिश्ते को प्रकाश में लाने वाले है ।

अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित नाटक 'विरासत' में एक संयुक्त परिवार के माहौल को परिपुष्ट करने वाली अतियथार्थवादी देह-भाषा को अभिनेताओं ने स्वीकार किया है । इस नाटक में अभिनेत्रियों ने ऐसी देह-भाषा का व्यवहार किया है, जो बिलकुल पात्रानुकूल है । अभिजात वर्गीय परिवार की स्त्रियों के मानसिक-व्यापार, कुंठाएं, तनाव, विद्रोही चेतना आदि का स्पष्ट चित्र अभिनेत्रियों की देह-भाषा, चाल आदि में देख सकते हैं ।

केरल की रंगकर्मी गीता जोसफ के द्वारा निर्देशित 'तोषिल केन्द्रत्तिलेक्क' नामक नाटक में पुरुष पात्रों की भूमिका में स्त्रियों को प्रस्तुत किया गया है । पुरुष का वर्चस्वी स्वरुप स्त्रियों के लिए कितना हिंसात्मक होता है, इस बात को दर्शकों के

सामने अभिव्यक्त करने के लिए ही पुरुष की भूमिका स्त्रियों के द्वारा निभाने का प्रयोग किया गया है ।

5.3.3 मंच व्यवस्था एवं रंग-सामग्रियां

रंगमंचीय प्रस्तुति में मंच-व्यवस्था या सेट, रंग-सज्जा या स्टेज अरेंजमेंट्स तथा रंग-सामग्रियां या प्रोपर्टीस का अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान है । इन सभी की सामूहिक उपस्थिति से रंगमंच में संप्रेषण के अनेक माध्यम एक साथ मौजूद होते हैं । हिन्दी तथा मलयालम की महिला रंगकर्मियों ने रंग-प्रस्तुतियों में, मंच-व्यवस्था एवं रंग-सामग्रियों को अपनी-अपनी सृजनात्मकता के अनुसार विभिन्न शैलियों में प्रयोगात्मक ढ़ंग से उपयुक्त किया है, जिसमें स्त्री की नैसर्गिक सृजनात्मकता और निजी अनुभवों की झलक विद्यमान है ।

नीलम मानसिंह चौधरी के निर्देशन में प्रस्तुत नाटक 'किचन कथा' में एक साधारण भारतीय रसोई घर के रूप में स्टेज का सेट बनाया गया है । रसोई घरों में व्यवहृत वस्तुएं ही इसके नाटक की रंग-सामग्री है । नीलम मानसिंह के नाटकों की यहीं विशेषता है कि उनमें बर्तन, सब्जियां, चाकू, मटकी आदि साधारण स्त्रियों के दैनिक जीवन से जुडी वस्तुएं नाट्य-प्रस्तुति में रंग-सामग्रियों के रूप में आती हैं । नाट्य-प्रस्तुति में ये वस्तुएं स्त्रियों के निजी विशेष भावनाओं एवं मनोविकारों को सूचित करने वाले रूपक हैं । एक साधारण स्त्री अपना अधिकाँश समय रसोई घर और उसके आसपास ही बिताती है । रसोई घर से जुड़े अनुभव-संसार प्रत्येक स्त्रियों के अंतर्गत उपस्थित होते हैं । उन्हीं अनुभवों को यहाँ नीलम मानसिंह ने भी रंगमंच पर प्रयुक्त किया है । यह स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी अनन्यता है ।

उषा गांगुली के निर्देशन में प्रस्तुत नाटक 'हम मुक्तारा' में रंग-बिरंगे फीतों से बनायी हुई चोटियाँ मंच के ऊपर हिलाई गयी है । चोटियाँ ग्रामीण स्त्रियों की वेशभूषा एवं श्रृंगार का भाग है । अतः परंपरा का सूचक भी है । यह (चोटी) रंग-सामग्री जो स्त्री-पात्रों के साथ अटूट रूप से जुडी हुई है, वहीं चोटियाँ नाटक के और एक प्रसंग

में स्त्रियों के गले को घोंट देती हुई दिखाई देती है । अर्थात जिस परंपरा ने स्त्रियों को पाला-पोसा वहीं परंपरा स्त्रियों का गला घोंट भी देती है ।

रमणजीत कौर के द्वारा निर्देशित नाट्य प्रस्तुति है 'बावरे मन के सपने' । यह नाटक मध्यवर्ग की महिलाओं के शांत से दीखते जीवन में चल रही उथल पुथल का चित्रण करता है । मध्यवर्गीय परिवारों की महिलाओं के दैनिक जीवन एवं कार्व्यापारों को दर्शाने के लिए ऐसी रंगसामग्रियों का प्रयोग किया गया है, जो घर के भीतर की महिलाओं की दुनिया में काम में लाने वाली वस्तुएं हैं । इसमें कैनवास, पेंटिंग, ब्रश, गित्तार, बर्तन, कपडे आदि अनेक वस्तुएं रंग-सामग्री के रूप में आती हैं जो विभिन्न प्रकार की स्त्रियों के अनुभवों की मार्मिक अभिव्यक्ति में काफी सहायक रही हैं ।

सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित नाटक 'प्रवाचाका' में मंच व्यवस्था में दो फलकों को सज्जीकृत किया गया है । पुरुष सत्ता को सूचित करने के लिए मंच-ज़मीन से ऊपर एक और फलक को लटकाया गया है । इसके साथ लुढ़कने वाले स्तम्भ भी मंच-व्यवस्था का अंश है । इसके संबंध में निर्देशक सी.वी. सुधी ने व्यक्त किया है कि "प्रवाचाका नाट्य-प्रस्तुति की अंतर्वस्तु में खूब प्रयुक्त किये गए शब्द हैं युद्ध, साहस, रक्षक, योद्धा आदि । इन शब्दों ने मेरे अंतर्मन में एक रेखाचित्र को उत्पन्न किया । इसी के अनुसार मैंने सेट का डिजाइन किया ।"[1]

इस प्रस्तुति में मंच पर एक तडफडाता स्तम्भ को रखा गया है, जो पूरे सेट का एक अभिन्न अंग है । उतरने और चढ़ने वाले यह स्तम्भ सत्ता के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप करने वाले इम्तहान, बंदीगृह आदि से भरे प्रसंगों में पुरुष-सत्ता तथा युद्ध दोनों के बीच के अटूट संबंध को एनकोड (encode) करता है । पुरुष-वर्चस्वी के

[1] सी.वी. सुधा- मरुरंगरूपरीतियुडे निलपाडुकल, भाषा पोषिणी, मार्च 2009

ध्वंसात्मक स्वभाव को सूचित करने वाले होने के कारण स्त्री पात्र इन स्तंभों का उपयोग नहीं करती हैं ।"[1]

हिन्दी में नाटक करने वाली माया राऊ तथा मलयालम की प्रमुख रंगकर्मी सुरभी दोनों बहुत कम प्रोपर्टीस और सेट का इस्तेमाल करते हुए प्रदर्शन का रूपायन करने वाली हैं । बिना किसी रंग-सामग्री के सहारे ही माया राऊ ने अपनी प्रस्तुति 'खोल दो' का रूपायन किया है । देह की गतियों के सहारे ही इन्होंने मंच पर अपना प्रदर्शन प्रस्तुत किया है । माया राऊ ने मंच व्यवस्था, रंग सामग्री जैसे तत्वों को ही खण्डित किया है । सुरभी ने भी अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों में बहुत कम रंग-सामग्रियों को प्रयुक्त किया है । सुरभी ने अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों में देह को मुख्यतः संप्रेषण के माध्यम के रूप में स्वीकारा है । ग्रोतोवस्की की पुवर थिएटर (poor theatre) वाली संकल्पना ने उन्हें ज़्यादा प्रभावित किया है । स्टेज सेट, प्रोपर्टीस, कोस्ट्यूम आदि का प्रयोग बहुत कम मात्रा में ही उनकी नाट्य-प्रस्तुतियों में पाया जाता है । प्रदर्शक की देह को उसकी गतियों को तथा देहागत अभिव्यक्ति को वे महत्वपूर्ण मानती हैं ।

'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नूङ्ल' नामक मलयालम की नाट्य-प्रस्तुति में मंच के केंद्र में घुमावदार सीढियां (spiral ladder) स्थापित की गयी है । नाटक में ये सीढियां स्त्रियों के निजी अनुभवों को संप्रेषित करने वाले फलक के रूप में उपस्थित होती हैं । नाटक के एक प्रसंग में स्त्री यौनिकता तथा उससे संबंधित जो परंपरागत नैतिक धारणाएँ हैं, उसकी जटिलताओं को सूचित करने में सीढ़ियों का घुमावदार स्वभाव बिलकुल संगत दिखाई देता है । एक दुसरे प्रसंग में वहीं घुमावदार सीढियां दमित एवं उत्पीडित स्त्रियों के लिए एक वैकल्पिक स्पेस भी बन जाता है । इस नाटक में मकडोत्त नामक स्त्री पात्र एक पेड़ के रूप में अपने आप को रूपांतरित करनेवाला सररियलिस्टिक प्रसंग दिखाई देता है । । पेड़, उर्वरता तथा स्त्रैण ऊर्जा का सूचक

[1] सी.वी सुधी- मरुरंगरूपरीतियुड़े निलपाडुकल, भाषा पोषिणी, मार्च 2009

है । यहाँ सीढियां पेड़ को भौतिक शरीर के रूप में तथा प्रदर्शनकारी देह उसमें निहित विशेष स्त्रैण चेतना के रूप में प्रयुक्त हुआ है । यहाँ मंच व्यवस्था तथा अभिनेत्री की प्रदर्शनकारी देह के बीच का अटूट संबंध संप्रेषण को ज़्यादा मार्मिक बनाती हुई दिखाई देती है । इस नाटक के पांच प्रमुख स्त्री पात्रों का सेल्फ रियालैसेशन तथा स्त्रीत्व का उत्सव सीढ़ियों में तथा उसके चारों ओर घटित होता है । यहाँ एक ही सेट विभिन्न सन्दर्भों में जटिलताओं, का उर्वरता का तथा स्त्रैणता के उत्सव का प्रतीक बन जाता है ।

के.वी.श्रीजा के द्वारा निर्देशित 'कलंकारियुडे कथा' नामक नाट्य-प्रस्तुति में मिट्टी के बर्तन बनाकर अपनी आजीविका चलाने वाली एक स्त्री की कहानी है । अतः इसमें एक साधारण कुन्हार स्त्री का घर, बर्तन बनाने वाला चक्र, मिट्टी के बर्तन, आसपास के फूल, पौधे ये सब मंच व्यवस्था एवं रंग-सामग्रियों के प्रमुख भाग हैं ।

अनुराधा कपूर के निर्देशन में प्रस्तुत नाटक 'विरासत' में सेट और प्रोपर्टीस को बड़ी सृजनात्मकता के साथ प्रयुक्त किया गया है । नाटक की अंतर्वस्तु एक ब्राह्मण संयुक्त परिवार के जीवन से संबंधित है । अतः इस प्रस्तुति में सेट को एक ब्राह्मण घर की संरचना के समान बनाया गया है, जिसके भीतर ही दर्शक भी बैठते हैं । घर के भीतर जो घटनाएं घटित होती हैं उसको नाटक में दिखाया गया है । घर के भीतर के कमरे तथा रसोई घर के साधन ही प्रोपर्टीस के रूप में प्रयुक्त किये गए हैं । यहाँ अनुराधा कपूर ने ब्राह्मण परिवार की संस्कृति, नैतिक बोध, स्त्रियों की अवस्था आदि विभिन्न विषयों को चित्रित करने के लिए हाईपर रियलिस्टिक शैली को अपनाया है ।

मल्लिका तनेजा ने अपनी प्रस्तुति 'थोड़ा ध्यान' से में बहुत कम संख्या में प्रोपर्टीस का प्रयोग किया है । इस प्रदर्शन में भारत में लड़कियों पर ख़ास तौर पर उनके पहचाने को लेकर किये जाने वाली टिप्पणियों और महिलाओं पर होने वाले अत्याचार के विरुद्ध प्रतिरोध खडा कर रही है । इस प्रदर्शन की रंग-सामग्रियां कई

प्रकार के कपडे हैं, जो स्त्रियाँ पहनती है । अतः यहाँ जिस 'वस्त्र' वाली संकल्पना (परंपरा का सूचक) के नाम पर स्त्रियों को एक पितृसत्तात्मक समाज दबा रहा है, उसी वस्त्र वाली संकल्पना को मल्लिका तनेजा ने अपने कलात्मक प्रतिरोध की सामग्री के रूप में अपनाया है ।

सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रदर्शन है 'पुनर्जनी' । इस में प्रयुक्त सभी सामग्रियां बहुत बड़ी आकृति में बनाया गया है । ये रंग-सामग्रियां अभिनेताओं को छोटा बनाती हैं । प्रचलित सत्तात्मक-संरचना की दमनकारिता को सूचित करने के लिए ऐसी बड़ी सामग्रियों को मंच पर लाया गया है । इसके संबंध में इस प्रस्तुति की स्क्रिप्ट राइटर डॉ. राजराजेश्वरी ने स्पष्ट किया है कि – "It is a kind of response to the inceasing incidents of violence, but given a different treatment than the usual. The props are all huge, dwarfting the actors to mark the oppressiveness of the prevailing power structure."[1]

सजिता मठत्तिल द्वारा निर्देशित एकल नाट्य-प्रस्तुति है 'मत्स्यगंधी' । इस प्रदर्शन में मछुआरे स्त्रियों के जीवन और संघर्षों को दिखाया गया है । इसलिए रंग-सामग्रियों के रूप में मछली बिकने वाली स्त्री के जीवन में उपयुक्त साधन को व्यापृत किया गया है । मछली बिकने वाली स्त्रियों के सिर पर जो मछली से भरा बड़ा बर्तन होता है, उस बर्तन को नाटक के विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न रूपों में प्रयुक्त किया गया है । उदाहरण के लिए बर्तन के भीतर बैठकर अभिनेत्री उसे नाव के रूप में प्रयुक्त करती है । इसके साथ-साथ समुद्र-तट की बालू, मछली पकड़ने का जाल, कागज़ की नाव आदि भी रंग-सामग्री के रूप में आती हैं । ये सभी सामग्री प्रत्येक मछुआरे स्त्री के नित्योपयोगी साधन है ।

[1] Dr. Rajarajeswari- spotlighting everyday concerns of women, S.R Praveen, 05 june 2014, The Hindu.

5.3.4 वेश भूषा एवं श्रृंगार

वेश-भूषा और रूप-सज्जा दोनों ही पात्र को चरित्र में रूपायित करने के महत्वपूर्ण साधन हैं । कोई पात्र किसी विशेष प्रसंग में किस रूप से मंच पर उपस्थित होना है, इसका निर्णय उस पात्र की वेशभूषा पर निर्भर होता है । तथाकथित पुरुष-प्रधान नाट्य-प्रस्तुतियों में उपस्थित स्त्री पात्रों की वेश-भूषा पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समाज में प्रचलित पितृसत्तात्मक नैतिक बोध, सांस्कृतिक धारणाओं के अनुसार ही स्त्री पात्रों की वेश-भूषा को चुना गया है । प्रमुखतः स्त्री-पात्रों की वेश-भूषा की दो विशेषताएं पायी जा सकती हैं ।

1. ऐसी वेश-भूषा जो उच्च कुल की स्त्रियों की प्रचलित वेश-भूषा के अनुरूप हो, जो स्त्री के संबंध में रही स्थापित नैतिक धारणाओं एवं पितृसत्तात्मक मूल्य-बोध को परिपुष्ट करने वाली हों । ऐसी वेश-भूषा स्त्रियों की चलने-फिरने की स्वतन्त्रता को परिसीमित करने वाली होती है । इस परिसीमा के कारण स्त्रियों को मंच पर अपनी देह को अपनी इच्छानुसार प्रयुक्त करना काफी दुष्कर हो जाता है ।

2. दूसरी है, पुरुष-दृष्टि (Male gaze) की यौनिक भावनाओं को संतुष्ट करने वाली स्त्री वेश-भूषा । इससे मंच पर उपस्थित स्त्री एक प्रकार से उपभोग वस्तु बन जाती है । अर्थात् पुरुष की भोगेच्छा से भरी हुई दृष्टि की शिकार । असल में ऐसी पुरुष-केन्द्रित नाट्य-प्रस्तुतियों में स्त्री की वेश-भूषा से संबंधित प्राथमिकता पात्र की विशेषताओं के आधार पर नहीं होती है बल्कि प्रचलित पुरुष-सत्तात्मक संस्कृति की स्त्री-संबंधी अवचेतन के अनुसार होती है । पुरुष-दृष्टि की इस वस्तूकरण के विरुद्ध प्रतिरोध खडा करने वाली नाट्य-प्रस्तुतियों का रूपायन हिन्दी तथा मलयालम के स्त्रीवादी रंगमंच की एक विशेष प्रवृत्ति है ।

उदाहरण के लिए अमाल अल्लाना द्वारा निर्देशित नाटक 'नटी बिनोदिनी' तथा सी.वी.सुधी द्वारा निर्देशित नाटक 'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल' । इन दोनों नाटकों में वेश्या पात्र उपस्थित हैं । नटी बिनोदिनी की पात्र बिनोदिनी दासी तथा आनुग्गल

इल्लात्ता पेंनुन्गल की पात्र ज़रीन ये दोनों वेश्या हैं । दोनों नाटकों में इन दो वेश्या पात्रों के जीवन के कुछ मार्मिक अंशों को उभारने का प्रयास किया गया है । यहाँ इन पात्रों को अभिनीत करने वाली अभिनेत्रियों की वेश-भूषा भी पात्रों के चरित्र तथा नाटक के कथानक के विशेष प्रसंगों के अनुरूप रूपायित किया गया दिखाई देता है । अतः वेश्या होते हुए भी ये पात्र न तो उपभोगवादी पुरुष-दृष्टि को आकर्षित करने वाली है । न हि स्त्री के वस्तूकरण को बढ़ावा देने वाली ।

माया राऊ द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत एकल नाटक है 'खोल दो' । इसमें उन्होंने पात्र के स्वभाव, देश-काल या परिस्थिति के अनुसार वेश-भूषा चुनने की पारंपरिक रीति से काफी दूर रहने की कोशिश की हैं । फिसिकल थिएटर की संभावनाओं को प्रयुक्त करने वाली इस नाट्य-प्रस्तुति में वेश-भूषा अभिनेत्री के कंफर्ट को ध्यान में रखते हुए चुना गया दिखाई देता है । इसी प्रकार नीलम मानसिंह के नाटकों में भी अभिनेत्री के कंफर्ट को प्रधानता दी गयी है । इसके संबंध में निर्देशिका नीलम मानसिंह चौधरी बताती हैं कि - "पीरियोडिक नाटक होने का अर्थ यह नहीं है कि कोस्ट्यूम भी उसी ज़माने का हो । एक्टर के कंफर्ट और किरदार के अनुसार कोस्ट्यूम डिजाइन किया गया है ।"[1]

5.3.5 प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था

प्रकाश, संगीत एवं ध्वनि-व्यवस्था रंगमंचीय प्रस्तुति का अनिवार्य अंग है । नाट्य-प्रस्तुति को एक कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में प्रयुक्त करने में प्रकाश एवं ध्वनि-व्यवस्था का योगदान महत्वपूर्ण है । रंग-आलोचक रीतारानी पालीवाल के शब्दों में – "अभिनय-कला तथा उसके मध्यम गति को पूर्णतः व्यंजित करने के लिए पर्याप्त तथा समुचित प्रकाश की आवश्यकता होती है । प्रकाश-व्यवस्था के माध्यम से दृश्यात्मक रूप में चाक्षुष संरचना तथा देश काल एवं घटना-स्थल को व्यंजित करने में सहायता ली जाती है । प्रकाश-व्यवस्था का प्रयोजन दृश्यबोध का सर्जन है ।

[1] नीलम मानसिंह चौधरी- अमर उजाला, www.amarujala.com

उसके द्वारा घटना-स्थल, संरचना एवं मनोभाव (मूड) की सृष्टि के साथ ही नाटकीय शैली-तत्व का व्यक्तीकरण किया जाता है ।"[1] ध्वनि एवं संगीत योजना को भी रंगमंच पर महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । रंगमंच पर वातावरण को यथार्थता प्रदान करने के लिए ध्वनि एवं संगीत का प्रयोग किया जाता है । तकनीकी उपलब्धियों के विकास के साथ ही आज की नाट्य-प्रस्तुतियों में ध्वनि-प्रभावों का विशेष महत्त्व बढ़ा है ।

भारतीय रंगमंच के सन्दर्भ में देखा जाय तो यहाँ सालों से प्रकाश एवं ध्वनि व्यवस्था जैसी रंगमंच से संबंधित तकनीकी पहलुओं पर हमेशा पुरुषों का ही एकाधिकार रहा है । आजकल स्थिति में कुछ बदलाव आ गए हैं । हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच के क्षेत्र में कुछ महिला रंगकर्मी लाईट डिजाइन के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति स्थापित करती आ रही हैं । हिन्दी रंगमंच से जुडी सुलेखा अल्लाना, जो प्रमुख रंगकर्मी अमाल अल्लाना की बेटी है, लाईट डिजाइन के क्षेत्र में काफी योगदान देती आ रही है । उनके साथ-साथ दीपा धर्माधिकारी, मीता मिश्र, निम्मी राफेल, सुजा, सुनीता कोलात्तूर आदि रंगकर्मियाँ भी इस क्षेत्र में अपना हस्तक्षेप करती आ रही हैं ।

रंगमंच में पितृसत्तात्मक रूढ़-प्रारूपों (patriarchal stereotypes) को तोड़ना लाईट टेक्नीशन के बिना भी संभव है । ऐसे एक विचार को साथ लेकर चलने वाली रंगकर्मी है मलयालम की राजराजेश्वरी ई. । उनके शब्दों में "मेरे मत में लाइटिंग के द्वारा जो दृश्य रूपायित होता है, उसका नियंत्रण निर्देशक के हाथ में है । अतः स्टीरियोटाइपिस्ट को बदलना लाईट टेक्नीशियन की सहायता के बिना भी संभव है ।"[2] हिन्दी तथा मलयालम की कुछ स्त्रीवादी रंग-प्रस्तुतियों में स्त्रीत्व की अनन्य चेतना से प्रेरित प्रकाश योजना की झलक देखी जा सकती है । के.श्रीलता द्वारा निर्देशित एवं अभिनीत 'इको ऑफ़ द डे' नामक मलयालम नाट्य-प्रस्तुति में प्रकृति

---

[1] रीतारानी पालीवाल- रंगमंच नया परिस्रुश्य, पृ.64

[2] राजराजेश्वरी के साथ किया गया वैयक्तिक साक्षात्कार से उद्धृत

और स्त्री के बीच के अटूट संबंध को अभिव्यक्त किया गया है । इसलिए इस नाट्य-प्रस्तुति में कृत्रिम प्रकाश से भी ज्यादा महत्ता प्राकृतिक प्रकाश को दिया गया है । जलती मशाल, दीपक आदि स्रोतों के सहारे प्रस्तुतीकरण को रूपायित किया गया है जो स्त्री और प्रकृति के संबंध की नैसर्गिकता को घोषित करने में काफी समर्थ दिखाई देते हैं ।

उषा गांगुली द्वारा निर्देशित 'हम मुक्तारा' नाटक की प्रस्तुति में बलात्कार की घटना को दिखाते समय लाल रंग के प्रकाश का इस्तेमाल किया गया है । लाल नामक रंग स्त्रियों के मासिक रक्त से संबंधित है । मासिक रक्त स्त्रैणता या स्त्रीत्व की जैविकता का सूचक है । बलात्कार का मतलब स्त्री के अपने स्त्रीत्व के ऊपर किया जाने वाला अत्याचार । इसलिए बलात्कार की अभिव्यक्ति के लिए सबसे उपयुक्त रंग लाल ही है ।

जिषा के द्वारा निर्देशित 'सावित्री' एकल नाट्य की प्रस्तुति में श्मशान को दिखाने वाले प्रसंग में जो प्रकाश योजना की गयी है, वह श्मशान की तन्हाई, दहशत आदि को घोषित करने में सक्षम है । इस श्मशान की पहरेदारी करने वाली एक महिला के जीवन का एकाकीपन संघर्ष मानसिक स्थिति आदि का 'मूड' दर्शक में फैलाते के उपयुक्त प्रकाश-योजना का उपयोग किया गया है ।

सी.वी.सुधी द्वारा निर्देशित 'आनुन्गल इल्लाता पेंनुन्गल' सुरभी द्वारा निर्देशित 'घोरराक्षसं' में तथा के.श्रीलता के द्वारा निर्देशित 'इको ऑफ़ द डे' आदि नाट्य-प्रस्तुतियों में प्रकृति और स्त्री से जुड़े प्रसंगों में हरे रंग का प्रकाश फैलाया गया है । हरा रंग उर्वरता का प्रतिनिधि है । उर्वरता स्त्री की अपनी नैसर्गिक विशेषता है । अतः हरा रंग स्त्री की उर्वरता, प्रकृति के साथ उसके गहरे संबंध आदि को अभिव्यक्त करने में बिलकुल सक्षम है ।

प्रकाश योजना के समान संगीत एवं ध्वनि-व्यवस्था के संचालक के रूप में हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति प्रायः कम है । फिर भी कुछ

स्त्रीवादी नाट्य-प्रदर्शनों में ऐसे संगीत एवं ध्वनि-विन्यास पाए जाते है जो स्त्रीत्वपरक विशेषताओं के अनुकूल है । नीलम मानसिंह चौधरी, सी.वी. सुधी तथा के.वी. श्रीजा के नाट्य-प्रदर्शनों में कुछ ऐसे लोक गीतों का प्रयोग किया गया है, जो गाँवों में स्त्रियों के द्वारा गाये जाते हैं। ऐसे लोक गीत स्त्रियों के अपने स्वाभाविक एवं स्वत्वपरक अनुभवों की अनन्य माहौल मंच पर रूपायित करने के लिए बिलकुल संगत दिखाई देते हैं । नीलम मानसिंह ने अपने प्रदर्शन 'द लाइसेंस' में लाइव म्यूजिक का प्रयोग किया है । इसी प्रकार के.वी.श्रीजा के द्वारा निर्देशित 'कलंकारियुडे कथा' नाट्य-प्रस्तुति में संवादों के रूप में कहीं-कहीं छोटे-छोटे गीतों का इस्तेमाल किया गया है । माया राऊ द्वारा निर्देशित 'खोल दो' नाट्य-प्रस्तुति में पूरा प्रदर्शन पार्श्व-संगीत के साथ समन्वित करके रूपायित किया गया है । रसिका अगाशे द्वारा निर्देशित 'म्यूज़ियम ऑफ़ स्पीशिस इन डेंजर' नाट्य-प्रस्तुति में भी लाइव म्यूजिक की व्यवस्था की गयी है, जिसमें काफी लोकप्रिय फ़िल्मी गानों को शामिल किया गया है । इस नाटक में स्त्रियों की समस्याओं को व्यंग्य रूप में अभिव्यक्त किया गया है । अतः बीच-बीच में, लोकप्रिय फ़िल्मी गीतों का प्रयोग बिलकुल संगत दिखाई देता है ।

मलयालम की प्रमुख रंगकर्मी आशा देवी के द्वारा निर्देशित एकल नाट्य-प्रस्तुति है 'ब्रोकन इमेज्स' जो गिरीश कर्नाट की रचना पर आधारित है । इसमें पात्र के साक्षीमन के रूप में एक और अदृश्य पात्र मौजूद है । इस अदृश्य पात्र को प्रस्तुत करने के लिए अभिनेत्री की ही आवाज़ को रिकॉर्ड करके प्रयुक्त किया गया है । ऐसा एक प्रयोग मलयालम रंगमंच में पहली बार हुआ है । अतः इसे बिलकुल महत्वपूर्ण माना जा सकता है । आशा देवी के शब्दों में – "In karnad's play, the conscience is a video screen where the actor has a pre-recorded monologue. I replaced the video for voice."[1]

[1] Asha Devi, quoted by Arathi Kannan, play it up women, The new indian Express, 24 nov 2016.

5.4 दर्शक एवं दर्शाकीय अनुभूति

कोई भी नाट्य-प्रदर्शन दर्शक-वर्ग के बिना संभव नहीं है । खाली रंग-मंडप में नाट्य का प्रदर्शन नहीं हो सकता है । नाट्य-सृष्टि के लिए दर्शक वर्ग का होना, सर्वथा अनिवार्य, है । वरिष्ठ रंग आलोचक देवेन्द्रराज अंकुर ने स्पष्ट किया है कि "किसी और कला और विधा में दर्शक की ज़रुरत भले ही न हो लेकिन रंगमंच की कल्पना उसकी जीवंत उपस्थिति के बिना की ही नहीं जा सकती । देखा जाय तो दर्शकों की जीवंत उपस्थिति फिल्म अथवा दूरदर्शन जैसे माध्यमों में भी होती है लेकिन उसका अभिनेता से प्रत्यक्षतः कोई संबंध नहीं है । यही बात साहित्य के पाठक और चित्रकला के दर्शक के लिए भी कही जा सकती है, क्योंकि यहाँ भी रचनाकार और उसके भोक्ता के बीच कोई सीधा रिश्ता नहीं होता । लेकिन रंगमंच में अभिनेता और दर्शक की पारस्परिक सहभागिता वस्तुतः रंगमंच के जन्म और आदिकाल से चली आ रही है । इस सहभागिता का सबसे रोचक पक्ष यह है कि आदिकाल से आज तक अभिनेता और दर्शक के बीच किसी तरह के समीकरण और संबंध बने, टूटे और विकसित हुए- यदि हम इसका एक ऐतिहासिक अध्ययन, विवेचन और विश्लेषण करे तो हम यह भी जान पाते हैं कि अंततः इन संबंधों ने नाटकों के लेखन, प्रस्तुतीकरण और प्रेक्षागृह की बनावट को भी कैसे प्रभावित किया ।"[1]

नाट्य-प्रस्तुति का आस्वादन एक सामूहिक क्रिया है । कोई व्यक्ति अकेले किसी प्रदर्शन को नहीं देखता; विभिन्न रुचियों और परिस्थितियों वाले लोग उसे एक साथ देखते हैं । देवेन्द्रराज अंकुर के शब्दों में "दर्शक-वर्ग अलग-अलग व्यक्तियों का जोड़ नहीं, वह एक प्रकार की नयी सामाजिक इकाई है जिसमें शायद हमारा आदिम, सामूहिक, समष्टिमूलक व्यक्तित्व, उभरकर जागृत होता है । नाटक का आवेदन इसीलिए उस सामूहिक-समष्टि मानव को है, मानव मन की मूलभूत आदिम

[1] देवेन्द्रराज अंकुर- रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, पृ.117

प्रवृत्तियों को है । इसीलिए नाटक देखते समय हम दूसरों के साथ हँसते हैं, उत्तेजित होते हैं, कंटकित अथवा अस्थिर होते हैं ।"[1]

नाट्य-प्रदर्शन की सफलता उसकी वर्तमान सार्थकता पर निर्भर है । इससे यह बात स्पष्ट होती है कि नाट्य-प्रस्तुति मूलतः समकालीन दर्शकों के लिए ही प्रदर्शित की जाती है । नेमीचन्द्र जैन जी के शब्दों में – "एक काव्य की रचना भविष्य के लिए चाहे हो सकती हो, पर नाटक आज के दर्शकों के निमित्त ही लिखा जाना संभव है, क्योंकि आज के दर्शकों पर उसका प्रयोग, और प्रभाव-परीक्षण अनिवार्य है ।"[2] अतः किसी भी रंगमंचीय प्रस्तुति का रूपायन अपने समकालीन दर्शक-वर्ग को ध्यान में रखकर करना आवश्यक होता है ।

5.4.1 स्त्रीवादी रंगमंच एवं दर्शकीय अनुभूति

भारतीय विशेषकर हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच के दर्शक वर्ग को देखा जाय तो उसमें कई स्वभाव वाले पाए जा सकते है । सामाजिक संस्कृति के आधार पर देखें तो दर्शकों में शहरी संस्कृति से जुड़े और ग्रामीण संस्कृति से जुड़े आदि दो स्वभाव वाले पाए जा सकते हैं । रंगमंचीय संस्कृति को आधार बनाकर देखा जाय तो उसमें भी एक और स्वभाव वाले दर्शकों को देखा जा सकता है । अर्थात् रंगमंचीय संकेतों और रंगभाषा से काफी परिचित दर्शक । इसके साथ-साथ पुरुष दर्शक, महिला दर्शक, ट्रांसजेंडर दर्शक आदि प्रकार भी पाए जा सकते हैं ।

स्त्रीवादी रंगमंच के सन्दर्भ में देखा जाय तो महिला रंगकर्मियों के द्वारा प्रस्तुत नाट्य-प्रदर्शनों में प्रत्येक प्रदर्शन को दर्शकों की विशेषताओं को भी ध्यान में रखकर ही रूपायित किया गया दिखाई देता है । सालों से पितृसत्ता की जकड में फंसे हुए सामाजिक मूल्यों तथा संस्कृति का प्रभाव रंगमंच के अन्यान्य पहलुओं तथा उसके सौन्दर्यशास्त्रीय पक्षों में भी अवश्य पाया जा सकता है । दुसरे शब्दों में, किसी भी

---

[1] देवेन्द्रराज अंकुर- रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, पृ.117

[2] नेमीचन्द्र जैन- रंगदर्शन, पृ.26

रंगमंचीय प्रस्तुति की अंतर्वस्तु एवं रूप से संबंधित एक विशेष सार्वजनिक दर्शाकीय सौन्दर्यबोध प्रत्येक दर्शक के अंतर्मन में थोपा हुआ है । सामंती व पुरुष-सत्तात्मक दृष्टि ही इस सार्वजनिक सौन्दर्यबोध का आधार होती है । पुरुष सत्तात्मक दृष्टि से रूपायित किसी भी रंगमंचीय प्रस्तुति का रूप या शिल्प इस सार्वजनिक सौन्दर्यबोध को द्योतित करने वाला होता है तो यह बिलकुल स्वाभाविक ही है ।

इस प्रकार दर्शक एक विशेष प्रकार के 'कंडीशनिंग' का शिकार हो जाते है । पुरुष-वर्चस्व से प्रेरित इस कंडीशनिंग स्त्री की संवेदनशीलता और सृजनात्मकता के ऊपर बाधा स्वरुप उपस्थित हो जाता है तथा स्त्री-विरोधी एवं पुरुष-केन्द्रित सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना करके दर्शकों के अनुभूति-स्तर को प्रभावित भी करता है ।

स्त्रियों की अपनी विशिष्ट संवेदनशीलता और अनुभूति स्तर होते हैं । उसकी नैसर्गिकता को अवरोध में डालने वाले रूप और अंतर्वस्तु से अंतर्भूत होते हैं प्रायः सभी पुरुष केन्द्रित नाट्य-प्रस्तुतियाँ । ऐसी स्थिति में स्त्रीवादी रंगमंच से जुडी रंगकर्मियों ने अपने रंग-प्रदर्शनों के माध्यम से दर्शाकीय आदतों के पुरुष-केन्द्रित स्वभाव को तोड़कर एक प्रति-दर्शाकीय-अनुभूति को विकसित करने का प्रयास किया है, जो स्त्रियों के निजी अनुभवों, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की नैसर्गिकता को भी द्योतित करने में सक्षम है । इससे स्त्री दर्शकों के लिए अपने स्वत्व को आत्म तत्व को रंगमंच पर महसूस करने का अवसर मिलता है । तथा पुरुष दर्शकों के लिए स्त्री के अनुभवों एवं संवेदनाओं की बहुस्वरता एवं गहराई को जानने पहचानने का अवसर भी प्रदान करता है ।

5.4.2 दर्शकीय अनुभूति के विभिन्न आयाम : स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य

स्त्रीवादी रंगमंच की कोटि में आने वाली रंगमंचीय प्रस्तुतियों को देखा जाय तो यह बात अवश्य दिखाई देती है कि प्रत्येक प्रस्तुति दर्शकों के दर्शन आदतों तथा तथाकथित मूल्यों पर आधारित अनुभूतियों को किसी न किसी रूप में प्रश्नीकृत करने

वाली होती है । हिन्दी की रुदाली, द लाइसेंस, हम मुक्तारा, रूप अरूप, द वाक, बावरे मन के सपने, म्यूज़ियम ऑफ़ स्पीशिस इन डेंजर, थोड़ा ध्यान से आदि तथा मलयालम की मत्स्यगंधी, प्रवाचाका, आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल, लेबर रूम आदि नाट्य-प्रस्तुतियाँ दर्शकीय विचारों से प्रत्यक्ष रूप से विद्रोह करने वाली हैं । महिला-निर्देशित नाट्य-प्रस्तुतियों की अंतर्वस्तु तथा रूप दोनों स्तरों पर पुरुष सत्तात्मक संरचना को बहुत कुछ चुनौती देने वाली है । तथाकथित दर्शाकीय दृष्टि के पुरुष-केन्द्रित एवं वर्चस्वी स्वभाव को खण्डित करने वाली ये नाट्य-प्रस्तुतियाँ एक प्रति-दर्शाकीय संस्कृति को स्थापित करने की कोशिश से भरपूर है । ऐसी नाट्य-प्रस्तुतियाँ पुरुष-दर्शकों के लिए अपनी आत्मा आलोचना का रास्ता खोल देती है तो महिला दर्शकों के लिए अपने आत्म तत्व का मंच पर सीधा साक्षात्कार है ।

दर्शकों के अंतर्मन में उद्भूत पुरुष सत्तात्मक मानसिकता को झटकने तथा व्याकुल करने वाली रंग प्रस्तितियों में मल्लिका तनेजा द्वारा निर्देशित एकल नाट्य 'थोड़ा ध्यान से', अनुराधा कपूर द्वारा निर्देशित 'नव्लाखा', के.वी. श्रीजा द्वारा निर्देशित 'लेबर रूम' आदि प्रमुख हैं । पुरुष-सत्तात्मक मानसिकता पर प्रत्यक्ष रूप से प्रहार करने वाली ये नाट्य-प्रस्तुतियाँ दर्शकों के बीच काफी बहस का विषय बन चुकी हैं । अनुराधा कपूर के द्वारा निर्देशित 'नवलाखा' के एक दृश्य में माँ और बेटी दोनों पात्र गर्भवती थीं । और दर्शकों की ओर पैर फैलाए प्रसव का दृश्य पर दर्शकों के एक ख़ास वर्ग में खासी चर्चा होती रही – 'दर्शकों की ओर पीढ करके भी तो दिखाया जा सकता था', 'रंगपट्टी का इस्तेमाल हो सकता था ?', 'कम-से-कम प्रोफाइल में ही होता' ।[1] इन सभी टिप्पणियों के पीछे नाट्यशास्त्र की शास्त्रीय व्यवस्था काम कर रही थी और इसी शास्त्रीयता की टकराहट इन महिला निर्देशकों के रंग-चिंतन, उनके सौन्दर्यबोध और उनके वोचार की राजनीति से हो रही थी ।[2] इसी प्रकार के.वी. श्रीजा द्वारा निर्देशित 'लेबर रूम' को भी एक ख़ास वर्ग के दर्शकों ने नहीं स्वीकारा ।

[1] वन्दना वशिष्ठ- आधुनिक हिन्दी रंगमंच और नारी विमर्श, रंग प्रसंग-41, पृ.242
[2] वन्दना वशिष्ठ- आधुनिक हिन्दी रंगमंच और नारी विमर्श, रंग प्रसंग-41, पृ.242

नाटक जब खेला गया तब दर्शक काफी कुपित होकर शोर मचाने लगे । इस नाटक में लेबर रूम में स्त्रियों के द्वारा झेले जाने वाली समस्याओं की खुले ढ़ंग से अभिव्यक्ति की गयी है । मंच पर आकर खुले रूप में अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने वाली स्त्रियों से कुछ दर्शक सहमत नहीं हुए । ठीक इसी प्रकार मल्लिका तनेजा द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रस्तुति 'थोड़ा ध्यान से' में नंगी स्त्री देह के मंच पर सृजनात्मक प्रयोग ने दर्शकों की नैतिक धारणाओं एवं मानसिकता को काफी बेचैन किया । इस एकल प्रस्तुति में भारत में स्त्रियों पर ख़ास तौर पर उनके पहनावे को लेकर किये जाने वाली टिप्पणियों और स्त्रियों पर होने वाले बलात्कार एवं अत्याचार के खिलाफ मंच पर अपनी नंगी देह से विद्रोह की आवाज़ उठा रही है । यह प्रस्तुति दर्शकों को काफी भड़काने वाली है । यह जोखिम भरी प्रस्तुति थी जब मल्लिका तनेजा ने दो साल तक बिकिनी वस्त्र पहनकर प्रदर्शन किया था । कई आयोजक अश्लीलता के आरोपों से डरते हुए पीछे हटे । प्रस्तुति के नए संस्करण में मल्लिका जी ने बिकिनी से भी मुक्त होकर जब नंगी देह को मंच पर प्रतिरोध का माध्यम बनाया तब दर्शकों के मन में उपस्थित श्लीलता-अश्लीलता संबंधी पितृसत्तात्मक नैतिक बोध भी हावी होने लगा । इस नाट्य-प्रदर्शन की रूपात्मक संरचना इस प्रकार है कि इसके अंत तक आते-आते दर्शक और प्रदर्शन के बीच की दूरी काफी कम होती गयी । नाटक ख़त्म हो जाने पर प्रदर्शक दर्शकों के बीच जाकर उनसे नाटक के संबंध में कई प्रश्न पूछते हैं तथा दर्शकों की प्रतिक्रया सुनती है । इस तरह दर्शक भी प्रदर्शन का अंग हो जाते हैं । इससे एक विशिष्ट प्रकार की ख़ास दर्शाकीय अनुभूति पैदा हो जाती है । और श्लीलता-अश्लीलता के द्वंद्व को भूलकर दर्शक नाट्य-प्रदर्शन का आस्वादन कर लेता है । नाटक के माध्यम से उठाये गए 'पॉलिटिक्स' को गहराई से समझने में भी दर्शक समर्थ हो जाते हैं । इस तरह हम देख सकते हैं कि अनुराधा कपूर और के.वी.श्रीजा अपने नाट्य-प्रदर्शनों के माध्यम से खुले ढ़ंग से 'स्टीरियोटाइप्स' पर प्रहार करती हैं तो मल्लिका तनेजा थोड़ी हास्य शैली में एक सशक्त विचार को दर्शकों के सामने रखती है । इन तीनों निर्देशकों ने दर्शकों को प्रकुपित करते हुए प्रचलित

दर्शाकीय आदतों को बदलने की सशक्त कोशिश की है । और इस कोशिश में उन्हें एक हद तक सफलता भी प्राप्त हुई है ।

अनुराधा कपूर के द्वारा निर्देशित 'विरासत' साधारण से भिन्न एक अलग प्रकार की दर्शाकीय अनुभूति प्रदान करने वाली नाट्य-प्रस्तुति है । इस नाट्य-प्रस्तुति में प्रदर्शन-स्थल के चारों ओर दर्शकों को बैठने का इंतजाम किया गया है । दर्शक अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी स्थल पर बैठकर प्रदर्शन देख सकते हैं । जाहिर है कि यह प्रदर्शन 'देखने की आदत' को लगातार प्रश्नीकृत किया गया है । मध्यांतर के समय में दर्शक अपना स्थान बदलकर दुसरे स्थान पर बैठकर भी आस्वादन कर सकते हैं । जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि 'विरासत' नाटक एक संयुक्त परिवार की कथा पर केन्द्रित है तथा इसका सेट एक पारंपरिक घर के समान बनाया गया है । अतः एक ओर बैठने पर रसोई घर के कोण से प्रदर्शन का आस्वादन कर सकते हैं तो दूसरी ओर बैठने पर बरामदे के कोण से । प्रत्येक स्थान पर बैठने पर दर्शाकीय अनुभूति भी बदलती है । ऐसा एक प्रयोग दर्शकों के लिए काफी नया अनुभव है । यहाँ दर्शक बिलकुल स्वतंत्र है । अर्थात अपनी इच्छानुसार वे नाटक को देख सकते है । दर्शक के ऊपर निर्देशक का जो वर्चस्व होता है, उस वर्चस्व को तोड़ने वाला यह नाट्य-प्रयोग हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच के क्षेत्र में काफी अनन्य है । इस प्रकार की एक वर्चस्व-विरोधी दृष्टि स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी अलग विशेषता है ।

पुरुष-दृष्टि को संतुष्ट करने वाली शैली में रूपायित नाट्य-प्रस्तुतियों की सार्वजनिकता को प्रश्नीकृत करने वाले नाट्य-रूपों को सूक्ष्म रूप से प्रश्नीकृत करने वाली रंगमंचीय प्रस्तुति है त्रिपुरारी शर्मा द्वारा निर्देशित 'रूप-अरूप' । पुरुष-दृष्टि भी प्रामाणिकता को नकारने वाली यह प्रस्तुति दर्शकों को सोचने का अवसर प्रदान करती है ।

रमनजीत कौर द्वारा निर्देशित 'बावरे मन के सपने' तथा सी.वी. सुधी द्वारा निर्देशित 'आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल' ये दोनों नाट्य-प्रस्तुतियाँ स्त्री के अनुभवों तथा उनकी अपनी संवेदनाओं की छिपी हुई दुनिया को प्रकाश में लाने वाली हैं । 'आनुन्गल इल्लात्ता पेंनुन्गल' पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा पारंपरिक परिवार संरचना की जकड को तोड़कर विभिन्न परिस्थितियों से आने वाली पांच स्त्रियों के आपस में मिलन तथा अपने जीवन के कटु यथार्थ व अनुभव एवं भविष्य संबंधी आकांक्षाओं और रंगीन सपनों का एक दुसरे से साझा प्रस्तुत करता है तो 'बावरे मन के सपने' मध्यवर्ग की महिलाओं के शांत दीखते जीवन में चले रही उथल पुथल की टोह लेता है । ये दोनों नाट्य-प्रस्तुतियों स्त्री दर्शकों के लिए ऐसी विशिष्ट अनुभूति प्रदान करती है, जो आत्म साक्षात्कार की राह खोल देती है तथा पुरुष दर्शकों के लिए स्त्री स्वत्व के वास्तविक रूप को गहराई से पहचानने का अवसर भी प्रदान करती हैं । दर्शकीय अनुभूति के स्तर पर नए आयामों को ढूँढने वाली रंगकर्मी है नीलम मानसिंह चौधरी । उनके द्वारा निर्देशित नाट्य-प्रस्तुति है 'किचन कथा' जो एक नवीन दर्शकीय अनुभूति को प्रदत्त करने वाली है । सामान्यतः दृश्य एवं श्रव्य से उत्पन्न इन्द्रियानुभूतियों पर निर्भर होती है नाट्य-प्रस्तुति की दर्शकीय अनुभूति । नीलम मानसिंह ने अपनी नाट्य-प्रस्तुति 'किचन कथा' में गंध एवं स्वाद से उत्पन्न इन्द्रियानुभवों को भी दर्शकों तक पहुँचाने की कोशिश की है । पूरे नाटक की कथावस्तु एक रसोई घर में घटित होती है । अतः प्रस्तुति का सेट एक रसोई घर के समान बनाया गया है । नाटक चलते समय मंच पर असली रूप में भोजन पकाया जाता है तथा बीच-बीच में दर्शकों को खिलाया भी जाता है । यहाँ भोजन का गंध, स्वाद आदि को कुछ विशेष भावनाओं एवं मनोविकारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया है । भारतीय रंगमंच में इस प्रकार का एक प्रयोग पहले कभी नहीं हुआ है । इसलिए यह दर्शकों को एक नवीन अनुभूति-स्तर तक ले जाते हैं । गंध और स्वाद के उत्पन्न निजी अनुभव महिलाओं के सृजनात्मक अभिव्यक्तियों में प्रमुखता के साथ प्रस्तुत होती दिखाई देती है । इन महिला-अनुभूतियों को मंच पर

लाने का प्रयास ही नीलम मानसिंह जी ने अपनी नाट्य-प्रस्तुति किचन कथा में की है ।

5.5 निष्कर्ष

हिन्दी तथा मलयालम की स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियों के विश्लेषण से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि भारतीय रंग-परिदृश्य में हिन्दी तथा मलयालम की स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियाँ का अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान है । स्त्रीवादी रंगमंचीय प्रस्तुतियों का विश्लेषण करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंतर्वस्तु व रूप दोनों दृष्टियों से ये रंगमंचीय प्रस्तुतियों प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पितृसत्तात्मक बंधन के दबाव को तोड़कर स्त्री पक्षीय मूल्यों को स्थापित करने के सृजनात्मक उपक्रम है । एक ओर ये स्त्रीवादी विचारों तथा राजनीति को उजागर करती हैं तो दूसरी ओर रंगमंचीय प्रस्तुतियों की रूप-संरचना को समग्र रूप से बदलने का कलात्मक कदम है । यही नहीं एक प्रति-दर्शाकीय संस्कृति को विकसित करने के ये सौंदर्यशास्त्र परक प्रयास भी हिन्दी तथा मलयालम भाषी प्रदेशों में प्रचलित तथाकथित रंगमंचीय प्रदर्शनों में मात्र एक प्रदर्शनीय वस्तु के रूप में स्थापित महिलाओं की छवि को तोड़कर स्त्रीवादी रंगकर्मियों ने प्रदर्शन को बनाने वाले के रूप में महिलाओं को स्थापित किया है जो निश्चय ही अपने में एक महान उपलब्धि भी रही है ।

उपसंहार

रंगमंच कोई एकांत विस्मय नहीं है । वह मानवीय संवेदनाओं का व्यवहार-स्थल होता है । फिर भी वह रंगमंच जो पुरुष-सत्तात्मक मूल्यों से प्रभावित और संचालित होता है, स्त्री को अपने स्वत्व एवं अस्मिता को अभिव्यक्त करने की दिशा में बाधास्वरूप उपस्थित भी हो जाता है । पुरुष व स्त्री के बीच का जो सत्तात्मक संबंध होता है, उसी के संकेतों को रंगमंच में भी पाया जा सकता है । रंगमंच पर उपस्थित स्त्री कोई नैसर्गिक याथार्थ्य नहीं होती है, बल्कि उस याथार्थ्य से संबंधित पुरुष-कल्पित बिंब होता है । रंगमंचीय प्रस्तुति पर निहित किसी भी संकेत की अर्थ-निर्मिति उसकी समग्र रूप-संरचना पर निर्भर होती है । मंच पर प्रस्तुत या उपस्थित स्त्री नामक संकेत भी एक ऐसी सांस्कृतिक बनावट होती है, जिसके मूल में सत्ता की जड़ें व लिंगभेदीय पूर्वग्रहों के निशान विद्यमान हैं ।

भारत में सहस्राब्दियों से रंगमंच की अत्यंत गौरवमयी, दीर्घ, अखंड एवं समृद्ध परंपरा अक्षुण्ण रूप से विकसित होती आयी है, जिसकी तुलना में विश्व के किसी अन्य प्रदेश के रंगमंच खडा नहीं हो सकता । प्राचीन काल से ही भारत में नृत्य, नाट्य प्रभृति प्रदर्शनकारी कलाओं का किसी न किसी रूप में प्रचार अवश्य होता रहा है, जो निरंतर विकास की दशा में अग्रसर होते हुए समय-समय पर अपना परिष्कार करता रहा है । इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत में अति प्राचीन काल से ही स्त्रियाँ रंगमंच एवं रंगकर्म से अवश्य जुडी रही थीं । रंगमंच और स्त्री के संबंध में विभिन्न ज्ञान स्रोतों से प्राप्त सूचनाएँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण है । वेद, पुराण, शास्त्र, साहित्य आदि विभिन्न पहलुओं पर रचे गए ग्रंथों में रंगमंच और स्त्री के बीच के अटूट संबंध को सूचित करने वाले अनेक ऐसे उल्लेख मिलते हैं, जिससे इस बात का पता चलता है कि प्राचीन समय में रंगमंच का क्षेत्र स्त्री-उपस्थिति से वंचित नहीं रहा था तथा रंगमंच के अन्यान्य पहलुओं में प्रशिक्षण प्राप्त स्त्रियाँ उस समय के समाज में अवश्य मौजूद थीं । रंगकर्म के द्वारा अपनी आजीविका चलाने वाली तथा अनुष्ठान के रूप में मंदिरों में कलाओं की प्रस्तुति करने वाली स्त्रियों के विशेष वर्ग भी उस

समय मौजूद था । नाट्यशास्त्रकार आचार्य भरतमुनि ने भी नाट्य में स्त्रियों की उपस्थिति को अपरिहार्य ही माना है ।

पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था की सामाजिक स्थापना के पश्चात्, अभिव्यक्ति के अन्य माध्यमों के समान रंगमंच के क्षेत्र में भी पुरुषों का वर्चस्व जम गया । तब से लेकर रंगमंच में स्त्री की उपस्थिति और स्थान कैसे होना चाहिए इसका निर्णय पुरुष-सत्तात्मक नियंत्रण एवं वर्चस्व के द्वारा निर्धारित होने लगा । भारतीय विद्वानों तथा मनीषियों के पुरुष-प्रधान विचारों से उत्पन्न स्मृतियों व शास्त्र-ग्रंथों ने रंगकर्म से जुड़ने वाली स्त्री की सामाजिक-स्थिति को नीच या हेय समझने वाले नैतिक मूल्यों को पैदा किया । रंगमंच में उपस्थित स्त्री का प्रतिनिधित्व मात्र एक प्रदर्शनीय वस्तु के सीमित रूप में प्रतिष्ठित होने लगा । पितृसत्तात्मक मूल्यों तथा पुरुष-केन्द्रित दृष्टि ने पूरे रंगमंच के सौन्दर्य-तत्वों को गहरे रूप से प्रभावित किया । इससे पुरुष-सत्ता के द्वारा नियंत्रित एवं संचालित रंगमंच में स्त्री के लिए अपने स्वत्व एवं अस्मिता को अभिव्यक्त करना प्रायः असंभव हो गया ।

मध्यकाल तक आते-आते बदलती सांस्कृतिक-नैतिक मान्यताओं ने रंग-कलाओं के सार्वजनिक स्पेस से स्त्रियों को काफी दूर करा दिया । स्त्री-पात्रों की भूमिका भी पुरुष-कलाकारों के द्वारा स्त्री-वेश धारण करते हुए निभाया जाने वाली प्रणाली पैदा हुई । मध्यकाल में भारत के अन्यान्य प्रदेशों में अपनी स्थानीय व सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ प्रचलित सर्वमान्य क्लासिकी व लोक नाट्य-रूपों में स्त्रियों की मौजूदगी मात्र दर्शकों के रूप में ही रही थी । किन्तु इन पुरुष-प्रधान नाट्य-रूपों के समानांतर भारत के विभिन्न प्रदेशों में कुछ ऐसी महिला रंग-कलाएं भी वर्तमान थी, जो पारंपरिक रूप से सुरक्षित व हस्तांतरित है । परन्तु ऐसे महिला रंगमंचीय कला-रूप तो सार्वजनिक स्थानों में प्रस्तुत नहीं हुआ करते थे । वे तो स्त्री-समूहों के निजी स्पेस में या तो धार्मिक अनुष्ठान के रूप में मंदिरों के सीमित परिवेश में ही पनपते हुए दिखाई देते हैं । इनमें से कुछ विशेष नाट्य-रूपों को सूक्ष्मता से

देखा जाय तो उनमें महिला जगत की संवेदनशीलता, सृजनात्मकता, कल्पना शक्ति, हास्यपटुता एवं विद्रोही चेतना का अनगढ़ सहज अभिव्यक्ति कौशल पाए जा सकते हैं । आधुनिक रंगमंच व स्त्रीवादी विचारों के उन्नायन के बहुत पूर्व रूपायित इन रंगमंचीय कलाओं को अपनी सामाजिक व्यवस्था, सत्तात्मक संबंध एवं रूढ़ियों के बंधन के प्रति स्त्रियों की परोक्ष सामूहिक प्रतिक्रिया से उत्पन्न स्वाभाविक प्रतिरोध का द्योतक कहा जा सकता है । प्रत्यक्ष रूप से इन महिला प्रदर्शनधर्मी कलाओं का वर्तमान स्त्रीवादी रंगमंच पर कोई विशेष प्रभाव नहीं देखा जा सकता है, किन्तु इन पारंपरिक महिला रंग-कलाओं की अंतर्वस्तु एवं रूप के स्तरों पर सूक्ष्म रूप में निहित स्त्रैण-अनुभवों का स्वाभाविक विन्यास, स्त्री-स्वत्व की पहचान, आत्माभिव्यक्ति की सृजनात्मकता, नैसर्गिक प्रतिरोध आदि स्त्री-प्रकृतिपरक कलात्मक तत्वों में समकालीन स्त्रीवादी रंगमंच की सांस्कृतिक जड़ें अवश्य पाया जा सकता है ।

आधुनिक भारतीय रंगमंच के प्रारंभिक दौर में रंगमंच के क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति नहीं के बराबर थी । उस ज़माने की विशिष्ट सांस्कृतिक धारणाओं एवं नैतिक मूल्यों के प्रभाव के कारण स्त्रियों का रंगमंच में उपस्थित होना अशोभनीय समझा जाता था । इसलिए 19 वीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रायः सभी प्रादेशिक भाषाओं के रंगमंच में स्त्री-पात्रों की भूमिका पुरुष कलाकारों के द्वारा निभाई जाती थी । सामंती व्यवस्था के सांस्कृतिक अवशेषों तथा औपनिवेशिक आधुनिकता से उठे नैतिक मूल्यों ने ही रंगमंच के सार्वजनिक स्पेस से स्त्रियों को हटाया था । जब भारत में नवजागरण का दौर शुरू हुआ तब स्त्री सशक्तीकरण पर केन्द्रित नवीन विचार भी सामने आया । इस नवीन स्त्री-चेतना का प्रभाव रंगमंच पर भी पडा तथा उस समय से लेकर रंगमंच में स्त्रियों को उपस्थित करने का सक्रिय प्रयास भी होने लगा । धीरे-धीरे नाट्य-प्रस्तुतियों में स्त्री-पात्रों की भूमिका में स्त्रियाँ ही उपस्थित होने लगी । फिर भी रंगमंच से जुड़ने वाली स्त्रियों की सामाजिक हैसियत में कुछ विशेष बदलाव तो नहीं आया । रंगमंच में स्त्रियों की उपस्थिति तो बढ़ गयी, फिर भी अपने

स्वत्व एवं अस्मिता को मंच पर लाना स्त्रियों के लिए असंभव ही रहता गया । इस स्थिति में थोडा परिवर्तन सन् 1940 के बाद में ही हुआ । इस समय के नए आन्दोलनों से उत्पन्न नवीन रंग-परिवेशों में स्त्री की भागीदारी बढ़ गयी तथा रंगमंचीय प्रस्तुतियों की विषय-वस्तु के रूप में विभिन्न स्त्री-मुद्दे प्रयुक्त होने लगे । परन्तु इन प्रगतिशील कार्यव्यापारों में महिलाओं की सजीव मौजूदगी होने पर भी रंगमंचीय प्रस्तुतियों के रूपायन की प्रक्रिया ऐसे मूल्य-बोध से युक्त मानदंडों पर निर्भर थे जो लिंग-भेदीय पूर्वग्रहों से मुक्त नहीं थे । इसलिए स्त्रीत्व की सही पहचान एवं स्त्री-संवेदनाओं की गहरी अभिव्यक्ति का अभाव रंगमंच में रहा ।

सन् 1970 के बाद भारतीय समाज में स्त्री मुक्ति संघर्ष ज़ोर पकड़ने लगा । इसका असर भारतीय रंगमंच पर भी दिखाई देने लगा । इस दौरान परिव्याप्त स्त्री-प्रश्न के वैचारिक पक्ष की गहनता तथा व्यावहारिक तौर पर रंगकर्म पर हो रहे प्रयोगधर्मी कार्यव्यापारों के बहुआयामी धरातल ने रंगमंच के स्तर अपर नवीन अवधारणाओं एवं नए रूप-विधानों को प्रतिष्ठित किया । स्त्री-पक्षीय विचारों से प्रभावित महिला रंगकर्मियों ने व्यावहारिक स्तर पर पुरुष-प्रधान रंगमंच के समानांतर बहुत कुछ उसे चुनौती देते हुए 'स्त्रीवादी रंगमंच' जैसी नवीन परिकल्पना को प्रतिष्ठित करनेवाली रंगमंचीय गतिविधियों का सूत्रपात किया । इससे रंगमंच संबंधी तथाकथित संकल्पनाओं तथा उस पर जम हो गए पुरुष-वर्चस्व को तोड़कर रंग-प्रस्तुति की अंतर्वस्तु, रूप एवं दर्शाकीय अनुभूति के स्तरों को स्त्रीवादी दृष्टि से पुनर्निर्मित करने के नवीन प्रयास भी सामने आया ।

स्त्रीवादी रंगमंच से जुड़ने वाली महिला रंगकर्मियों ने रंगमंचीय प्रस्तुतियों को रूपायित करते समय ऐसी विषय-वस्तुओं को बोधपूर्वक प्रयुक्त करने की कोशिश की है जिनमें स्त्रीवादी विचारों का प्रभाव, स्त्री-स्वत्व का उद्‌घाटन, स्त्री की समस्याओं का चित्रण, स्त्री के निजी अनुभवों की प्रधानता, पुरुष-वर्चस्व के प्रति विद्रोह, दलित स्त्री की अवस्था की अभिव्यक्ति, परिस्थिति एवं स्त्री के बीच गहरे संबंध का बयान,

मिथकों की स्त्री पक्षीय पुनर्व्याख्या स्त्री शोषण के विभिन्न आयामों का अंकन, स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलताओं की आलोचना, पुरुष-निर्मित नैतिक मूल्यों का खंडन आदि विशेषताएं मौजूद हैं ।

मात्र अंतर्वस्तु के स्तर पर स्त्रीपक्षीय विचारों को प्रस्तुत करने से स्त्रीवादी रंगमंच जैसी परिकल्पना की प्रयुक्ति परिपूर्ण नहीं हो जाएगी । इस विशेष परिकल्पना को सही ढ़ंग से आत्मसात करने के लिए नाट्य-प्रस्तुतियों के तथाकथित रूप-विधान और उसमें निहित पुरुष-निर्मित सौन्दर्यशास्त्रीय तत्वों को तोड़कर पूरे रंगमंच के परिप्रेक्ष्य को स्त्रीपक्षीय दृष्टि के साथ समग्र रूप से पुनर्निर्मित करना अनिवार्य है । अतः हिन्दी तथा मलयालम रंगमंच से जुडी महिला निर्देशकों ने रंगमंच पर स्त्री की अस्मिता को स्थापित करने के लिए मंच-व्यवस्था, प्रदर्शनकारी देह, प्रदर्शन-स्थल, रंग-सामग्री, वेश-भूषा, प्रकाश एवं ध्वनि-योजना आदि नाट्य-प्रदर्शन के रूप-विधान से संसक्त अन्यान्य पहलुओं के अंतर्गत प्रारूपित पुरुष-कल्पित स्त्रीत्व की प्रतिछाया का विच्छेद करते हुए एक प्रति-दृश्य-संस्कृति एवं नवीन सौन्दर्यबोध के निर्माण का प्रयास किया है । महिला निर्देशकों के संचालन में रूपायित नाट्य-प्रस्तुतियों को सूक्ष्मता से देखा जाय तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक नाट्य-प्रस्तुति में सुविन्यस्त स्त्रीपक्षीय हस्तक्षेप का अपने अलग आयाम अवश्य मौजूद हैं । साथ ही इन प्रस्तुतियों में निर्देशकों की वैयक्तिक रुचि व पूरे रंगकर्मी दल के वैचारिक एवं कलात्मक दृष्टिकोण भी शामिल हैं ।

उदाहरण के लिए उषा गांगुली, अमाल अल्लाना, सुरभी, आशा देवी जैसे निर्देशाकों के द्वारा रूपायित नाट्य-प्रस्तुतियों में सशक्त स्त्री पात्रों के चित्रण के माध्यम से तथाकथित रंगमंच की पुरुष-केन्द्रित पात्र-चयनों को बदलने के प्रयास दिखाई देते हैं । कुछ अन्य निर्देशक जैसे अनुराधा कपूर, नीलम मानसिंह चौधरी, सी.वी. सुधी आदि ने प्रदर्शन-स्थल, मंच-व्यवस्था, रंग-सामग्री, दृश्य-योजना आदि पहलुओं के स्तर पर अन्यान्य प्रयोग करते हुए मंच के क्षेत्र में नए विकल्प लाने के

प्रयास में जुडी रही हैं, जो अब भी ज़ारी हैं । माया राऊ, मल्लिका तनेजा, के. श्रीलता आदि निर्देशकों की पद्धति थोड़ी अलग है । ये निर्देशक लिंग-वर्चस्व के संकेतों से ग्रस्त स्त्री-देह के पारंपरिक रूढिवादी स्वभाव को तोड़ते हुए मंच पर प्रदर्शनकारी देह को एक अलग व सृजनात्मक तरीके से प्रस्तुत करती आ रही हैं । देह, मात्र एक जीवशास्त्रीय यथार्थ नहीं है, बल्कि वह एक ऐसा विशाल फलक होता है, जिसमें संस्कृति व सत्तात्मक संबंधों के संकेतों का मुद्रण पाया जा सकता है । अतः मंच के वैकल्पिक स्पेस में देह को एक नवीन तरीके से प्रयुक्त करने पर प्रचलित स्त्रीत्व की संकल्पनाएँ एवं सौन्दर्यशास्त्रीय व नैतिक मान्यताएं भी अवश्य परिवर्तित हो जाती है ।

कुछ अन्य निर्देशक जैसे त्रिपुरारी शर्मा, सजिता मठत्तिल, रमनजीत कौर, के.वी. श्रीजा, गीता जोसफ, रसिका अगाशे, रजिता मधु आदि ने नाट्य-प्रस्तुतियों के लिए नवीन विषयवस्तुओं को स्वीकारते हुए स्त्रीवादी विचारों के राजनैतिक पक्ष को उजागर किया है । इनके द्वारा स्त्री की विशेष समस्याओं, स्त्री के निजी अनुभव, उनके संघर्ष आदि को रंगमंच के माध्यम से समाज के सामने अभिव्यक्त करते हुए पुरुष-मानसिकता की जड़ों को कला के माध्यम से तोड़ने की कोशिश की गयी है ।

भारत के स्त्रीवादी रंगमंच को अनन्य बनाने वाली प्रवृत्तियों में सबसे प्रमुख है पारंपरिक रंगमंचीय कलाओं का स्त्रीपक्षीय पुनर्रूपायन । सदियों से पुरुष-सत्ता के दायरे के भीतर तड़पने वाली कुछ रंगमंचीय कलारूप, जिसमें नंङियारकूत्त, पंडवानी तथा कथकलि प्रमुख हैं, वर्तमान समय में अपने में निहित पुरुष-केन्द्रित तत्वों को चुनौती देते हुए सृजनात्मक अभिव्यक्ति के ऐसे सशक्त माध्यम बन गए हैं, जो स्त्री के स्वत्व एवं संवेदनाओं को मार्मिक ढ़ंग से प्रस्तुत करने में काफी सक्षम हैं । कला के मूल में दो प्रकार के अंतर्विरोधी तत्वों का द्वंद्व मौजूद रहता है । अर्थात् कोई कला चाहे जिस काल या समय में पैदा हुई क्यों न हो, अपने समय की सामाजिक-व्यवस्था, सत्तात्मक-संबंध, सांस्कृतिक-मूल्य एवं सौन्दर्यशास्त्रीय-

मान्यताओं को आत्मसात करने वाले तत्वों से सूक्ष्म रूप में आबद्ध रहती हैं । इसके साथ ही कला में ऐसे तत्व भी शामिल होते हैं, जो पूर्व-निर्धारित तत्वों की प्रभुता से निरंतर संघर्ष करने वाले प्रतिरोधी-तत्व हैं । पारंपरिक प्रदर्शंधार्मी कलारूपों के सन्दर्भ में देखा जाय तो सदियों से ये प्रतिरोधी तत्व कलारूप की समग्र संरचना में दबी या छिपी हुई स्थिति में उपस्थित है । समकालीन समय में महिला कलाकारों के सशक्त हस्तक्षेपों के परिणामस्वरूप जब इन प्रदर्शनधर्मी कलारूपों की संपूर्ण-संरचना में छिपी हुई स्थिति में मौजूद प्रतिरोध के तत्व अपने में ग्रस्त वर्चस्वी दबाव को तोड़कर कार्यरत होना शुरू कर दिया तब से लेकर कलारूपों का समस्त परिप्रेक्ष्य समग्र रूप से परिवर्तित होने लगा । पारंपरिक नाट्य-कलाओं में पुरुष-सत्तात्मक तत्वों की उपस्थिति बहुत ही सूक्ष्म एवं जटिल रूप में होती है । इन कलारूपों की व्यावहारिक प्रयुक्ति तो हमेशा ऐसे मूल्य-बोध पर निर्भर रही है, जो सत्ता के द्वारा निर्धारित और परिपालित हैं । वर्तमान समय में महिला कलाकारों ने इन पुरुष-सत्तात्मक तत्वों के वर्चस्व को तोड़कर कला-रूप की संपूर्ण संरचना को स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होने की अनंत संभावनाओं को आत्मसात किया है । इससे ये प्रदर्शंधार्मी कलाएं समकालीन दौर में सृजनात्मक अभिव्यक्ति के ऐसे सशक्त माध्यम बन गयी हैं जो स्त्री की अस्मिता को प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत करने में सक्षम होता दिखाई देता है ।

नाट्य-प्रस्तुति की प्रयुक्ति की पूर्णता प्रयोक्ता व प्रेक्षक के संयुक्त प्रक्रम से संभव होती है । मंचीय प्रस्तुति की अर्थनिर्मिति भी दर्शकों के सहयोग से ही साकार होती है । दूसरे शब्दों में प्रयोक्ताओं के द्वारा मंच पर प्रस्तुत प्रदर्शन जब दर्शकों के सामूहिक अवचेतन से मिलता है तभी जाकर नाट्य-प्रस्तुति की अर्थ-निर्मिति या आस्वादन संभव होता है । दर्शाकीय दृष्टि एवं दर्शन-आदतों के मूल में भी सत्ता के द्वारा निर्धारित सौन्दर्यशास्त्रीय तत्वों का प्रभाव अवश्य मौजूद रहता है, जो महिलाओं की अपनी विशेष संवेदनशीलता एवं अनुभूति-स्तर से सदा भिन्न होते हैं । पुरुष-दृष्टि के प्रभाव से रूपायित रंगमंचीय प्रस्तुतियों की संरचना महिलाओं के विशेष अनुभूति-

स्तर की नैसर्गिकता को अवरोध में डालती है । ऐसी एक स्थिति में स्त्रीवादी रंगमंच से जुडी रंगकर्मियों ने अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों के माध्यम से तथाकथित दर्शन-आदतों को समस्या-ग्रस्त करते हुए ऐसी प्रति-दर्शाकीय-अनुभूति को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है, जो स्त्रियों के विशेष अनुभूति-स्तर एवं उनके निजी अनुभवों की नैसर्गिकता को भी द्योतित करने में समर्थ होती है । चाहे वह पारंपरिक रंगमंच की पुनर्रूपायित प्रस्तुति की हो, या समकालीन रंग-प्रस्तुति की, स्त्री-दर्शकों के लिए अपने स्वत्व या आत्म-तत्व को महसूस करने का अवसर अवश्य मिलता है, और पुरुष-दर्शकों के लिए स्त्री-अनुभवों की विशेषताओं एवं उसकी गहराई को जानने-पहचानने का अलग मौका भी ।

दर्शकीय अनुभूति के स्तर पर नए आयामों को ढूँढने की प्रवृत्ति स्त्रीवादी रंगमंच की अपनी अद्वितीय विशेषता है । रंगमंचीय प्रस्तुति से उपजने वाली दर्शाकीय अनुभूति सामान्यतः दृश्य एवं श्रव्य से उत्पन्न इन्द्रियानुभावों पर निर्भर होती है । महिला रंगकर्मियों ने दर्शाकीय अनुभूति के इस परंपरागत स्वभाव से भिन्न गंध तथा स्वाद से उत्पन्न इन्द्रियानुभवों को भी दर्शकों तक पहुँचाने का प्रयोग किया है । स्त्री के अनुभव-स्तर में गंध और रुचि का महत्वपूर्ण स्थान होता है । उसको भी रंगमंच के हाइब्रिड फॉर्म (hybrid form) में सम्मिलित करने का यह प्रयास अपने में अद्वितीय है । भारतीय रंगमंच के क्षेत्र में इस प्रकार का एक प्रयोग पहले कभी नहीं हुआ है । अतः इसको ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण कार्य माना जा सकता है ।

रंगमंच पर स्त्री की अस्मिता एवं उसकी समस्याओं की सही अभिव्यक्ति के लिए नाट्य-प्रस्तुति को रूपायित करने वाले कर्तृत्व के रूप में, अपने स्वत्व को पहचानने वाली स्त्री का उपस्थित होना अत्यंत अनिवार्य है । साथ ही इसके लिए अलग क़िस्म की रंग शैली और चाक्षुष-संरचना को ढूँढने की ज़रुरत है । इस विशेष विचार ने ही भारत में तथाकथित पुरुष-प्रधान रंगमंच के समानांतर ‘स्त्रीवादी रंगमंच’

जैसी एक महत्वपूर्ण परिकल्पना को परिपुष्ट किया है। स्त्रीवादी रंगमंच जैसी विशेष परिकल्पना की व्यावहारिक प्रयुक्ति के द्वारा महिला रंगकर्मियाँ भारतीय रंगमंच में सदियों से निहित पुरुष-केन्द्रिता को चुनौती देती हुई पूरे भारतीय रंगमंच के परिप्रेक्ष्य को परिवर्तित करने की दिशा में कार्यरत हैं। स्त्रीवादी रंगमंच, चाहे वह हिन्दी का हो या मलयालम का, विकास के सोपानों को पार करता हुआ अग्रसर होता दिखाई देता है। वर्तमान समय में स्त्रीवादी रंगकर्म से जुडी महिला कलाकार सार्वजनिक जगहों तथा रंगमंच के विशेष स्पेस में स्त्रियों के दोयम दर्जा व उनके ऊपर होने वाले दमन को पारस्परिकता के साथ देखने-समझने की कोशिश करती आ रही हैं। स्त्रीवादी रंगमंच तभी सार्थक एवं सफल हो जाएगा जब भारतीय रंगमंच का क्षेत्र लिंग-भेदीय पूर्वग्रहों तथा पुरुष-वर्चस्व से मुक्त होकर स्त्री के पक्ष को भी उजागर करने वाला एक सृजनात्मक उपक्रम बन जाएगा। भारत का स्त्रीवादी रंगमंच अपने इस लक्ष्य को आत्मसात करते हुए सफलता की ओर अग्रसर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हिंदी ग्रन्थ

1. आजकल का हिंदी नाटक : प्रगति और प्रभाव, दशरथ ओझा, राजपाल एंड संस, दिल्ली, 1984
2. आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
3. आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार, डॉ.मीरा द्विवेदी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1996
4. कथकलि : कलात्मक साहित्यिक मूयांकन, डॉ.रामचंद्र देव, कोनार्क पब्लिशर्स, दिल्ली, 1990
5. अन्तरंग बहिरंग, देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 2013
6. दूसरे नाट्यशास्त्र की खोज, देवेन्द्रराज अंकुर, वाणी प्रकाशन, 2010
7. आधुनिक हिंदी नाटक एक यात्रा दशक, नरनारायण राय, भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली, 1987
8. आधुनिक हिंदी नाटक : चरित्र सृष्टि के आयाम, डॉ.लक्ष्मी राय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979
9. आधुनिक हिंदी नाटक, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982
10. उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
11. औरत अस्तित्व और अस्मिता, अरविंद जैन, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2001
12. दर्शन प्रदर्शन, देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 2013
13. औरत केलिए औरत, नासिरा शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003
14. आधुनिक हिंदी नाटक, डॉ.नगेन्द्र, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, 1968
15. औरत के हक़ में, तसलीमा नज़रीन, अनु: मुनमुन सरकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

16. नाटक के रंगमंचीय प्रतिमान, डॉ.वशिष्ट नारायण त्रिपाठी, जगतराम एंड संस, दिल्ली, 1991
17. आधुनिक हिंदी नाटकों में प्रयोगधर्मिकता, डॉ.सत्यवती त्रिपाठी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991
18. पढते सुनते देखते, देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 2008
19. पारसी हिंदी रंगमंच, लक्ष्मीनारायण लाल, राजपाल एंड संस, 1973
20. नारी विद्रोह के भारतीय मंच, आशारानी व्होरा, नॅशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991
21. नारी शोषण : आईने और आयाम, आशारानी व्होरा, नॅशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996
22. नारीवादी विमर्श, राकेश कुमार, आधार प्रकाशन, हरियाणा, 2004
23. नाटक प्रस्तुति एक परिचय, रमेश राजहंस, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987
24. प्रसादोत्तर कालीन नाटक, भूपेन्द्र कलसी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977
25. बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, प्रभा खेतान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
26. पंडवानी : महाभारत की एक लोकनाट्य शैली, निरंजन महावर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
27. बीसवीं शताब्दी के हिंदी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, डॉ.लजपतराय गुप्त, कल्पना प्रकाशन, मेरठ, 1974
28. पारसी थियटर,रणवीर सिंह, राजस्थान संगीत नाट्य अकादमी, जोधपुर, 1990

29. भारतीय नाट्य परंपरा और अभिनयदर्पण, वाचस्पति गैराला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1989

30. भरत और भारतीय नाट्य-कला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य, जयपुर, 2009

31. मोहन राकेश और उनके नाटक, गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976

32. रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 2011

33. समकालीन हिंदी नाटक : चेतना के आयाम, सरला गुप्त भूपेन्द्र, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1987

34. रस सिद्धांत, डॉ.नगेन्द्र, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2001

35. रंगमंच के सिद्धांत,सं. महेश आनंद, देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

36. मात्र देह नहीं है औरत, मृदुला सिन्हा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007

37. समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, 1978

38. साठोत्तर हिंदी नाटक में त्रासद तत्व, मंजुला दास, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1988

39. सातवाँ रंग, देवेन्द्रराज अंकुर, राजकमल प्रकाशन, 2010

40. स्त्री चेतना और मीरा का काव्य, पूनम कुमारी, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्टिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2009

41. स्त्री यौनिकता बनाम आध्यात्मिकता, प्रमिला के.पी, राजकमल प्रकाशन, 2010

42. विद्रोही स्त्री, जमेन ग्रीयर, अनु: मधु.बी.जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001
43. स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, डॉ.के.एम.मालती, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
44. स्त्री केलिए जगह, सं.राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994
45. स्त्री : उपेक्षिता, सीमोन द बोउवार, अनु: प्रभा खेतान, हिन्द पांकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2002
46. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक : समस्या और समाधान, डॉ.दिनेश चन्द्र वर्मा, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, 1987
47. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक, डॉ.रामजन्य शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985
48. स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा, सं.जगदीश चतुर्वेदी, सुधा सिंह, आनंद प्रकाशन, कोलकत्ता, 2004
49. स्त्रीवादी विमर्श समाज और साहित्य, क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
50. समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, 1978
51. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा करलवार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006
52. हिंदी नाटक पुनर्मूल्यांकन, डॉ.सत्येन्द्र तनेजा, ग्रन्थस, कानपुर, 1971
53. हिंदी नाटक के प्रमुख हस्ताक्षर, डॉ.रामकुमार गुप्त, अमर प्रकाशन, मथुरा, 1980
54. हिंदी नाटकों में विद्रोह की परंपरा, डॉ.किरन चन्द्र शर्मा, विचार प्रकाशन, दिल्ली, 1991

55. हिंदी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ.दशरथ ओझा, राजपाल पब्लिशिंग, दिल्ली, 1984

56. हिंदी नाटक और रंगमंच पहचान और परख, इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1975

57. स्त्री विमर्श – कलम और कुदाल के बहाने, रमणिका गुप्ता, शिल्पायन, दिल्ली, 2004

58. हिंदी नाट्य प्रयोग के सन्दर्भ में, डॉ.सुषम बेदी,पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1984

59. स्त्री संघर्ष का इतिहास, राधाकुमार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002

60. हिंदी रंगमंच का इतिहास, पहला भाग, डॉ. चंद्रलाल दुबे, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1974

मलयालम ग्रन्थ

1. अभिनेत्री (नाट्यवेदत्तिले स्त्रीपर्वम्), उषा नंङियार, केलि, मुम्बई, 2003
2. अरङिन्टे अर्थतलङल्, वयला वासुदेव पिल्ला, करंट् बुक्स, तृशूर, 1998
3. अरङिले अनुभवङल्, के.पी.ए.सी.सुलोचना, करंट् बुक्स, तृशूर, 2007
4. कलियरङुम् स्त्रीकलुम, गीता, नाँशनल बुक् स्टाल, कोट्टयम्, 2000
5. अरङिन्टे समरभाषा, राघवन् नम्बियार के.एम, करंट् बुक्स, तृशूर, 1998
6. उरियाट्टम्, सुनिल.पी.इलयिटम्, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 2007
7. चिलप्पतिकारम्, इलंकोवटिकल्, (अनु) विश्वनाथन् नायर, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर, 1975
8. कूटियाट्टत्तिन्टे पुतियामुखम्, के.जी.पाऊलोस (सं), इंटरनेशनल सेंटर फाँर कूटियाट्टम्, तृपूणित्तुरा, 2005
9. कुटुम्बम् स्वकार्यस्वत्त् भरणकूटम् एन्निवयुडे उत्भवम्, अनु: पी.एन.दामोदरपिल्ला, प्रोग्रस पब्लिशर्स, 1975

10. जनकीय समरङ्लिल मलबारिन्टे पेनपातकल्, आनंदी.टी.के, केरल शास्त्र साहित्य परिषद्, मलबार ओफ सेर, कोषिकोड, 2006

11. केरलत्तिले लास्य रचनकल्, लील ओमचेरि, दीप्ती ओमचेरि, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 2001

12. केरलत्तिले स्त्री मुन्नेट्टङ्लुटे चरित्रम्, सी.एस.चन्द्रिका, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर, 1999.

13. नाट्य सिद्धान्तम्, सी.एस.बीजू, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 2002

14. पेन्नरङ : कालान्तरयात्रकल्, डॉ.आर.बी.राजलक्ष्मी, डॉ.प्रिया नायर (सं), समता : ए कलक्टीव फोर जन्टर जस्सिस, तृशूर, 2013

15. जीवितत्तिन्टे स्त्री वायना, सोनिया.इ.प, सेकुलर बुक्स, कोषिकोड, 2000

16. तोषिल केन्द्रत्तिलेक्क, डॉ.एन.आर.ग्रामप्रकाश, मैत्री बुक्स, तिरुवनंतपुरम्, 2014

17. नाटकम् : अन्वेषणवुम अपग्रथनवुम, डॉ.राजा वारियर, केरल भाषा इंस्टिट्यूट, तिरुवनंतपुरम्, 2012

18. पेन्नेषुत्त्, एन.जयकृष्णन् (सं), केरल भाषा इंस्टिट्यूट, तिरुवनंतपुरम्, 2002

19. फेमिनिसम् १,२, जानसी जयिमस् (सं), केरल भाषा इंस्टिट्यूट, तिरुवनन्तपुरम्, 2000

20. भरतमुनियुड़े नाट्य-शास्त्रम्, के.पी.नारायणा पिषारटी, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर, 1971

21. मलयाल नाटक स्त्री चरित्रम्, सजिता मठत्तिल, मात्रभूमि बुक्स, कोषिकोड, 2010

22. प्रत्ययशास्त्रवुम नाटकवुम, डॉ.एन.आर.ग्रामप्रकाश, चिंता पब्लिकेशनस्, तिरुवनंतपुरम्, 2013

23. मोहिनियाट्टम् : चरित्रवुम आट्टप्रकारवुम, कलामंडलम् कल्याणिकुट्टि अम्मा, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 1992

24. फोकलोरिले स्त्री स्वत्व निर्मिति, पी.वसंतकुमारी, फोकलोर फेल्लोस ऑँफ मलबार ट्रस्ट, पय्यन्नूर, 2000

25. मलयाल नाटक साहित्य चरित्रम्, वयलार वासुदेवन् पिल्ला, केरल साहित्य अकादमी, 2005

26. फेमिनिसम् चरित्रपरमाया अन्वेषणम्, डॉ.एम.लीलावति, प्रभात बुक्स, तिरुवनंतपुरम्, 2000

27. मलयाल नाटक साहित्य चरित्रम्, जी.शंकरपिल्ला, केरल साहित्य अकादमी, तृशूर, 1987

28. स्त्रीकलुम समूह्य विप्लवम्, पी.जे.बेबी, जनकीय प्रसिद्धीकरण केंद्रम्, कोषिकोड, 1988

29. स्त्रीवादत्तिन्टे केरल परिसरम्, गीता, मैत्री बुक्, तिरुवनन्तपुरम्, 2005

30. स्त्रीनीति, (सं) वि.एम.राजलक्ष्मि, केरल भाषा इंस्टिट्यूट, तिरुवनंतपुरम्, 1996

31. स्त्रीवादम्, जे.देविका, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 2000

32. स्त्री स्त्रीवादम स्त्री-विमोचनम, शारदामणि, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 1999

33. स्त्री रचनयुड़े सौन्दर्यशास्त्रम्, प्रशान्त कुमार एन, रेयिनबो पब्लिकेशन्स, चेङन्नुर, 2008

34. स्त्री पठनङल्, एन.के.रवीन्द्रन्, बोधि, कोषिकोड्, 1990

35. स्त्री विमोचनम् चरित्रम् सिद्धान्तम् समीपनम्, ए.के.राधाकृष्णन्, के.एस.वेणुगोपालन, नयन बुक्स, पय्यन्नूर, 1989

36. स्त्री, वी.सी.हारिस, डी.सी.बुक्स, कोट्टयम्, 1985

ENGLISH BOOKS

1. Ancient Indian social history some interpretation, romila thaper, orient logman ltd, Hyderabad, 1996
2. A theatre of independence : drama, theory and urban performance in india since 1947, Aparna Bhargava dharwadkar, university of lowa press, 2005
3. Feminist Drama : Defenition and Critical Analysis, Brown, Janet, Sacrecrow Press, 1979
4. Body Work : The Social Construction Of Women's Body image : Sylvia Blood, Routledge. London, 2005
5. Bodies that matter, Judith butler, routledge, USA, 1993
6. A room of one's own, virginia wolf, Cambridge university press, india, 2002
7. Contemporary Feminist Theories : To Each Her own, Goodman, Cizbeth, Roultledge, London.1993
8. Feminist Thearies for Dramatic Criticism, Austine, Gayle, University of Michigan Press,1990
9. Feminist Theatre, Keyser, Helen. Macmillan, 1984
10. Close-Up : Memories of a Life on Stage and Screen, Zohra Segal, Women Unlimited, 2010.
11. Gender, Space and Resistance : Women and Theatre in India (Ed) Anita Singh, Tarun Tapas Mukherjee, DK Print World, New Delhi, 2013
12. Feminism and theatre, sue-ellen case, routledge, new York, 2014

13. Modern Indian Theatre (Ed), Nandi Bhatia, Oxford University Press, 2009

14. Gender trouble, Judith butler, routledge, USA, 1990

15. Muffled Voices : Women in Modern Indian Theatre, Lakshmi Subramanyam, Ha- Anand Publication, 2002

16. Hand gestures of hastalakshanadeepika in mohiniyattam, Nirmala panicker, natanakairali, 2007

17. Improvisations in ancient theatre, k.g.paulose, inter national centre for kutiyattam, 2003

18. On Female Body Experience : "Throwing Like a Girl" and other essays : Iris marion young, Oxford University Press, New York, 2005.

19. Theatre Audience : A Theory Production and Reception, Bennette, Susan Routledge : London, 1991

20. Nangiarkoothu, Nirmala panicker, natanakairali, 1992

21. Performing Artists in Ancient India, Iravati, D.K Print World, New Delhi, 2003

22. The New Feminist Movement, Carden, Maren Lockwood (Eq), Russell Sage Foundation : New York, 1974

23. Routledge Handbook of Asian theatre, (Ed), Siguan Lia, London & New York, Routledge, 2016.

24. The Sanskrit drama, dr.keith, oxford-at-the darendon press, London, 1924

25. The second sex, simon de beauvior, wintage books, usa, 1989

26. Women's Role in Kutiyattam, L.S. Rajagopalan, The Kuppu swami Sastri Research Institute, Chennai, 1997

27. Women in Dramatic Place and Time, Cousin, Geraldine, Routledge, London: 1993

हिन्दी पत्रिकाएँ

1. नटरंग, 1977 अक्तूबर
2. नटरंग, दिसंबर 2002
3. नटरंग, सितंबर, 2003
4. नटरंग, दिसंबर, 2007
5. रंगप्रसंग, जनवरी 2003
6. रंगप्रसंग, जुलाई 2004
7. रंगप्रसंग, अप्रैल 2004
8. रंगप्रसंग, मई, 2017
9. छायानट, अप्रैल 2009

मलयालम पत्रिकाएँ

1. केलि, मई 2006
2. केलि, अक्तूबर 2008
3. केलि, जून-सितम्बर 2005
4. केलि, नवम्बर 2008
5. भाषा पोषिणी, नवम्बर 1999
6. भाषा पोषिणी, मार्च 2009
7. भाषा पोषिणी, वार्षिकपतिप्प 2008
8. भाषा पोषिणी, सितम्बर 2000
9. भाषा पोषिणी, वार्षिकपतिप्प 2003

10. मातृभूमि आषच्चपतिप्प, मई 2005
11. मातृभूमि आषच्चपतिप्प, अक्तूबर 2005
12. मलयालम,फरवरी, 2008
13. माध्यमम आषच्चपतिप्प, मई 2008
14. माध्यमम आषच्चपतिप्प, अगस्त 2005
15. कलाकौमुदी आषच्चपतिप्प, अगस्त 1995
16. देशाभिमानि वारिका, मई 2015
17. देशाभिमानि वारिका, जून 2016

Online References

1. www.samanwayam.com
2. www.streekal.com
3. www.inchowk.in
4. www.hindisamay.com
5. rangvimarsh.blogspot.in
6. iptanama.blogspot.in
7. www.bbc.com
8. www.hilwani.com
9. www.jagaran.com
10. www.gadyakosh.com
11. www.yentha.com
12. www.m.livehindustan.com
13. www.demotest.womeniaworld.com
14. Urimilashukla20.blogspot.com

15. aarambha.blogspot.com
16. www.gaonconnection.in
17. www.ajayshekhar.net
18. www.researchgate.net
19. www.deshabhimani.com
20. Minextlive.jagaran.com
21. www.mumbaitheatreguide.com
22. www.m.dailyhunt.in
23. www.nytimes.com
24. www.amarujala.com

परिशिष्ट-1

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. स्त्रीवादी रंगमंच : विश्व परिदृश्य, नवनिकष, जुलाई 2018, लखनऊ
2. पी. वत्सला की कहानी 'एरण्डकल्' : पारिस्थितिक स्त्रीवाद के परिप्रेक्ष्य में, अनुशीलन, जनवरी 2013, कुसाट, कोच्चिन
3. सार्थकमाया कलासपर्या : मार्गी सतिक्क् प्रणामंङल, किलिप्पाट्ट, जनवरी 2016, तिरुवनंतपुरम्
4. शरीरत्ते चूषुन्ना चरित्रम्, देशाभिमानी वारिका, जून 2016, कोषिक्कोड़

प्रपत्र प्रस्तुति

1. पारंपरिक रंगमंच का स्त्रीवादी परिप्रेक्ष्य : नंङियारकूत्त् के विशेष सन्दर्भ में, एम.पी.एम.एम., एस.एन. कॉलेज, षोरनूर, पालक्काड, मार्च 2014
2. रंगमंच एवं महिला उपस्थिति : समस्याएँ तथा संभावनाएँ, के.के.टी.एम सरकारी कॉलेज, पुल्लूट्ट, तृशूर, नवंबर, 2015.
3. विष्णु प्रभाकर के नाटकों की रंगमंचीयता, सरकारी विक्टोरिया कॉलेज, पालक्काड, नवंबर, 2012.

परिशिष्ट – 2
फोटो गैलरी

ओडीसी

कत्थक

कूटियाट्टम

झिझिया

देवदासी नृत्य

मोहिनियाट्टम

सत्रिय

सामा चकेवा

उषा नंङियार,
अहल्यामोक्षम नंङियारकूत्त से

कपिला वेणु,
चित्रांगदा नंङियारकूत्त से

उषा नंङियार,
द्रौपदी नंङियारकूत्त से

जी.इंदु

गान्धारी नंङियारकूत्त से

मार्गी सती

श्रीरामचरित नंङियारकूत्त से

पद्मश्री तीजन बाई

पंडवानी से

ऋतु वर्मा

पंडवानी से

रंजिनी सुरेश
रावणोद्भवम कथकलि से

चवरा पारुक्कुट्टी
कुंती की भूमिका में (कर्णशपथम कथकलि से)

कथकलि प्रस्तुति
महिला कथकलि संघ

राधिका वर्मा
नलन की भूमिका में (नलचरितम कथकलि से)

हरिप्रिया नम्बूतिरि
पूतनामोक्षम कथकलि से

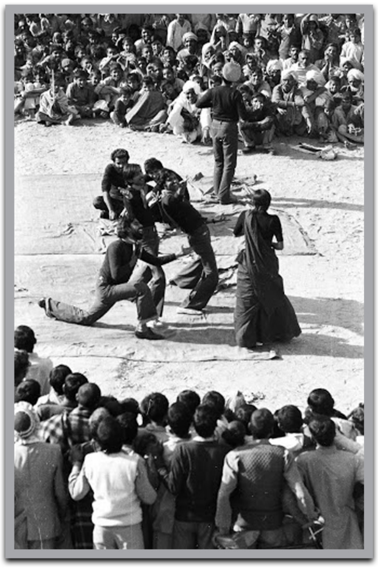

'**औरत**' नाट्यप्रस्तुति से

शास्त्र साहित्य परिषद्
महिला कलाजाथा

तोषिल केंद्रतिलेक्कु नाट्यप्रस्तुति से

'**ओम स्वाहा**' नाट्यप्रस्तुति से

हम मुख्तारा,

निर्देशक - उषा गांगुली

रूप अरूप

निर्देशक - त्रिपुरारी शर्मा

विरासत

निर्देशक - अनुराधा कपूर

खोल दो
निर्देशक - माया राऊ

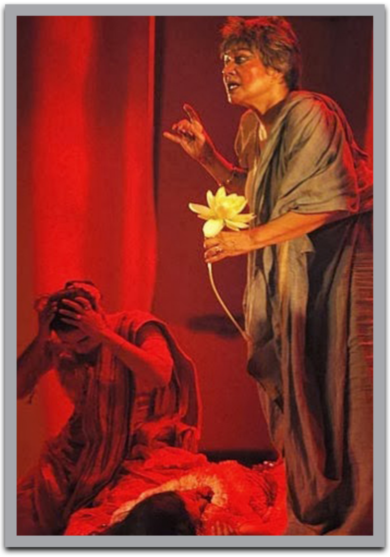

नटी बिनोदिनी
निर्देशक - अमाल अल्लाना

थोड़ा ध्यान से
निर्देशक - मल्लिका तनेजा

द वॉक
निर्देशक - माया राऊ

द लाइसेंस, निर्देशक - नीलम मानसिंह चौधरी

अंतर्यात्रा
निर्देशक - उषा गांगुली

आनुङ्ल इल्लात्ता पेन्नुङ्ल
निर्देशक – सी.वी. सुधी

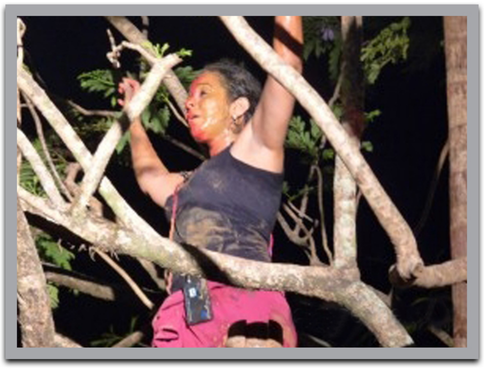

एको आँफ द डे
निर्देशक - श्रीलता

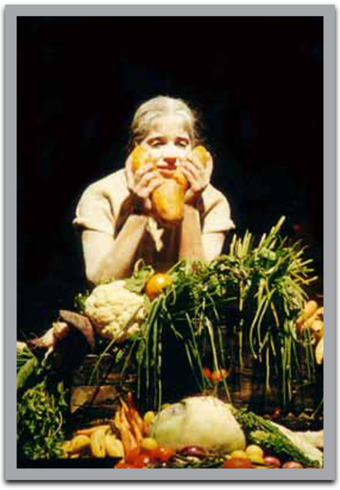

किचन कथा
निर्देशक - नीलम मानसिंह चौधरी

जीवित या मृत
निर्देशक - अनुराधा कपूर

चण्डालिका, निर्देशक - उषा गांगुली

पुनर्जनी,
निर्देशक - सी वी सुधी

रुदाली
निर्देशक - उषा गांगुली

मत्स्यगन्धी
निर्देशक - सजिता मठत्तिल

प्रवाचका, निर्देशक - सी.वी सुधी

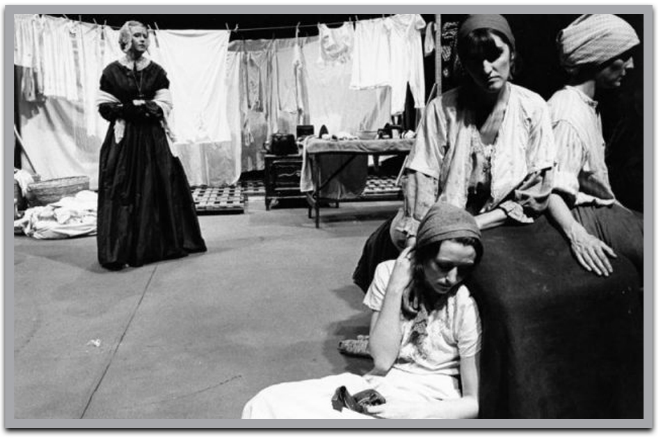

Monstrous Regiment,
Unfinished Histories

Potrait of Dora
by Helene Cixuos

Ready to Order
by The Waitresses

The Vagina Monolouges by Eve Ensler

Three Weeks in May
by Lacy Labowitz